

अनुवादक—रामलाल वर्म्मा ।

स" कलकत्ता ।

* आदर्श-ग्रन्थ-मालाका ३रा ग्रन्थ *

कर्म फल

शिक्षाप्रद सचित्र सामाजिक उपन्यास ।

अनुवादक

रामलाल वर्म्मा ।

प्रकाशक

रामलाल वर्म्मा, प्रोप्राइटर-

"वर्म्मन प्रेस" और "आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०,"

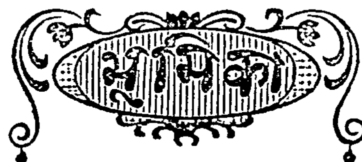
३७१, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता ।

सं० १९७७ वि०

प्रथम संस्करण २००० प्रति] [मूल्य विना जिल्द ३) रु०

सुनहरी रेशमी जिल्द ३।।) रुपया ।

मिलेगा—
आर० एल० बर्मन एण्ड को०,
३७१ अपर चीतपुर रोड,
कलकत्ता।



यह उपन्यास, बँगलाके दूसरे बङ्किमचन्द्र, बाबू दामोदर मुखोपाध्याय-के इसी नामके एक उत्तम शिक्षाप्रद उपन्यासका अनुवाद है। इसमें न तो ऐयारी है, न तिलिस्म है, न जासूसी है, न वह बाज़ारू प्रेम है, जिसके रहने-से उपन्यासमें दिलचस्पी आ जाती है और पढ़नेवाले खाना-पीना भूलकर किताबके ही हो रहते हैं। परन्तु इस पुस्तकमें जो कुछ है, वह हिन्दीके समस्त उपन्यासोंसे निराला है।

यह संसार, एक कर्मक्षेत्र है और प्रत्येक मनुष्य उत्तम कर्म कर—परोपकार, परस्पर सहयोग, दीन-हीनकी सेवा और गृहस्थ-धर्मका पूर्णतया पालन करता हुआ—अपने जीवनको सफल बना और अपने पीछे एक उज्ज्वल आदर्श छोड़ जा सकता है; यही दिखलाना इसका उद्देश्य है। सनातन, यदु और मा-लक्ष्मी इसकी कथाके मुख्य पात्र हैं और उनके चरित्र-चित्रणमें ग्रन्थकारने जो पटुत्व प्रदर्शित किया है और घर-फूटके उपासक, हम भारत-वासियोंको जो परम कल्याण-कारक मार्ग बतलाया है, वह देख मुग्ध हो जाना पड़ता है। सेवा-समितियोंके द्वारा मनुष्य-समाजकी कितनी भलाई हो सकती है और उनके कार्य-कर्त्ताओंके हृदयमें कैसे भाव होने चाहिये, यह इस ग्रन्थके पाठसे भली भाँति विदित हो जाता है। आजकल सेवाका भाव हमारे देशमें कुछ-कुछ पैदा हो गया है। ऐसे समयमें इस ग्रन्थको पढ़कर हम उस भावकी वृद्धि करनेमें अधिक समर्थ होंगे,

ऐसी आशा है। इसमें सेवा-समितिका बड़ा ही अच्छा आदर्श ग्रन्थकारने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया है। उसपर थोड़ी देर विचार करना, हमारा कर्त्तव्य है।

साथही प्रत्येक गृहस्थ पुरुष और स्त्रीको इस ग्रन्थमें दाम्पत्य-प्रेमकी वह महिमा दिखलाई देगी, जिसके अनुसार चलनेसे किसी घरमें कभी कलहका सूत्रपात न होगा। यह पुस्तक निस्सङ्कोच प्रत्येक स्त्री, बालक और युवाको पढ़नेके लिये दी जा सकती है।

आदर्श-ग्रन्थमालामें हमने आदर्श-ग्रन्थोंके ही छापनेका विचार किया है, इसी लिये उपन्यास होते हुए भी, 'कर्म्मक्षेत्र' की अमूल्य और आदर्श शिक्षाओंको हृदयङ्गमकर हमने इसको इसके अन्तर्भुक्त करनेमें कोई क्षति नहीं समझी। इसे पढ़नेके बाद हमारे पाठकों और समालोचकोंकी भी यही सम्मति होगी, इसमें सन्देह नहीं।

आशा है, कि जो लोग उपन्यासोंके प्रेमी हैं, वे भी इसे पढ़ेंगे और जो उनके नामसे कोसों दूर भागते हैं, वे भी इसे एकबार देख जायेंगे।

अन्तमें हम अपने परम मित्र, आरा-निवासी पण्डित ईश्वरीप्रसादजी शर्माको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस पुस्तककी कापीका मनोयोग-पूर्वक संशोधन करनेमें हमारी पूर्ण सहायता की है। हमने यथा-साध्य इसे सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेकी चेष्टा की है। यदि इसपर भी कुछ कसर रह गयी हो, तो मालूम होनेपर हम दूसरे संस्करणमें उसे अवश्य दूर कर देंगे।

कलकत्ता,
१-१-२१

निवेदक—
रामलाल वर्मा।



प्रथम खण्ड ।



यततोह्यपिकौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

अर्थ—हे कुन्तीपुत्र ! इन्द्रियोंके दमनका प्रयत्न करनेवाले 'विद्वान्‌के भी मनको ये प्रवल इन्द्रियाँ वलपूर्व्वक मनमानी राह-पर ले जाती हैं ।

तात्पर्य्य—जिस मनुष्यको स्थितप्रज्ञ होना हो, उसे अपना आहार-विहार नियमित रखना उचित है ; क्योंकि इन्द्रिय-प्रवृत्तिका इतना प्रवल प्रताप है, कि विशेष सावधान और ज्ञानवान् व्यक्तिके लिये भी उसके हाथसे छुटकारा पाना महा कठिन है ।

(श्रीभगवद्‌गीता । २ अध्याय, ६० श्लोक । श्रीकृष्णवाक्य)





माँ लक्ष्मीका सेवा-कार्य्य ।

Burman Press, Calcutta.

॥ श्रीः ॥

कर्म-फल

पहला परिच्छेद।

दो व्यापारी।

कृष्णनगरसे शान्तिपुर जानेके लिये एक सुन्दर और सीधी सड़क चली गयी है। सड़क छः कोस लम्बी है। दो-तीन स्थानोंके अतिरिक्त सड़कके आस-पास कहीं कोई गाँव नहीं है। इस रास्तेपर दिन-रात आदमी और बैलगाड़ियोंका आना-जाना जारी रहता है; पर हाँ, दिनकी अपेक्षा रातको इनकी संख्या बहुत कम हो जाती है। पहले इस मार्गकी अवस्था बहुत ख़राब थी; चोर और डाकू हाथमें मोटे-मोटे लट्ठ लिये रास्तेमें इधर-उधर खाइयों और झाड़ियोंमें छिपे रहते थे एवं असावधान तथा इक्के-दुक्के बटोहियोंको मारकर उनका माल-मता छीन लेते थे। पर अब वह डर जाता रहा; अँगरेज़ी राज्यके ज़बर्दस्त क़ानूनके प्रतापसे चोर-डाकू पलायन कर गये। हाँ, एक और नयी बात पैदा होगयी। 'एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं

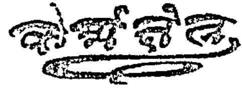
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे'के अनुसार बृटिश-राज्यके सुशासनसे चोर-लुटेरोंका डर तो मिटा, लेकिन रास्तेके किसी-किसी स्थानपर हिंस्र पशुओंका डर बढ़ गया। अँगरेज़ी सरकारकी कृपासे भारतवर्षके मनुष्य तो धीरे-धीरे सभ्य हो चले, पर दुर्भाग्यवश पशुओंकी असभ्यता दिन-दिन बढ़ती जाती है। वे अभागे घोर मूर्ख हैं। वे न तो राज-भक्तिकी परवा करतेहैं, न क़ानूनका सम्मान करते हैं और न पादरी साहबके परम-पवित्र उपदेशोंपर ध्यान देते हैं। अँगरेज़ी पुस्तकोंमें भारतवासियोंको बर्बर, चिर-असभ्य और वज्र-मूर्खके नामसे पुकारा गया है। पर आश्चर्य्य है, कि इतना होनेपर भी वे तो प्रायः अर्द्ध-सभ्य हो गये; लेकिन जङ्गली जानवरोंकी असभ्यता दूर न हुई! न मालूम, परमात्मा इन बेचारोंको कब इस सुखमय अवस्थामें पहुँचायेगा?

आषाढ़का महीना है—अतएव वर्षा-ऋतु है, यह तो मानना ही पड़ेगा; क्योंकि और कोई प्रमाण हो चाहे न हो, पर शिशु-शिक्षाके तीसरे भागमें तो ऐसा ही लिखा है। एक तो रातका समय, दूसरे रास्तेके दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरपर छोटे-बड़े अनेक वृक्ष लगे हैं, तीसरे आकाशमें घनघोर छटा छायी है, अतएव भयानक अन्धकार हो रहा है। जो इसे माननेको तैयार न हों, उन्हें जयदेव कविका—'मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामस्तमालद्रुमैर्नक्तं'—यह श्लोकांश सुना देनेसे तो फिर उन्हें मान ही लेना पड़ेगा।

दो पहर रात बीत गयी है। रिमझिम पानी बरस रहा है।

ऐसे ही समय हम उपरोक्त मार्गसे दो व्यक्तियोंको शान्तिपुरकी ओर जाते देख रहे हैं। दोनों व्यक्तियोंमेंसे एककी अवस्था अनुमानतः पचास वर्षकी है। उसका शरीर काला, कुछ मोटा और नाटा है। सिरपर छत्री ओढ़े है; पाँवमें नहीं, हाथमें, एक फटा हुआ स्लीपर है; पीठपर अँगोछेसे पोटली बँधी है और कमरसे चादर लिपटी हुई है। उसका दूसरा साथी युवा है। उसकी अवस्था प्रायः पचीस सालकी, शरीर दुबला, गोरा और पहलेकी अपेक्षा लम्बा है। उसके भी सिरपर छत्री, हाथमें अच्छासा जूता, कमरसे चादर लिपटी हुई और बदनमें कुर्त्ता है।

हाव-भावको देखनेसे मालूम होता है, कि दोनों मुसाफ़िर इस रास्तेसे रोज़ आया-जाया करते हैं। वे बातें करते हुए चले जा रहे हैं। युवक उस वृद्ध व्यक्तिको 'श्याम चाचा' के नामसे पुकारता है; इसलिये नहीं कह सकते, कि वृद्ध महाशयका नाम श्यामलाल है या श्यामाचरण! और 'श्यामचचा' भतीजेको 'यदु बेटा' कहकर सम्बोधित कर रहे हैं, तदनुसार हम इन महाशयका भी पूरा नाम बतानेमें असमर्थ हैं। संभवतः, यदुनाथ या यदुपति ऐसा ही कोई नाम होगा। ख़ैर, नाम चाहे जो हो, साहसी चचा-भतीजे किसी आवश्यकीय कार्य्यके अनुरोधसे अथवा जानकारीके कारण निडरकी भाँति इस असमयमें भी उपरोक्त भयङ्कर रास्तेपर चले जा रहे हैं। प्रिय पाठको! आओ, ज़रा उनकी बातचीत हम भी सुनें, जिससे उनका कुछ अभिप्राय मालूम हो।



भतीजेने कहा,—"बात चाहे जो हो, चाचा! हमें तो यह विश्वास नहीं था, कि शान्तिपुरके काममें इतनी जल्दी बढ़ौतरी हो जायेगी!"

श्याम चाचा बोले,—"व्यापार इसीका नाम है। जानते नहीं, बेटा! कि शरीरमें आलस्य रहते व्यापारका चलना कठिन है? हमलोग अपने व्यापारमें जैसी मिहनत करते और हड्डी तोड़ते हैं, वैसी मिहनत तो चाहे जिस काममें कर देखो, ज़रूर दस पैसेका फ़ायदा ही होगा।"

यदु बोला,—"ठीक है। हमलोग आठों पहर मिहनत करते हैं। हमारे परिश्रमका कभी अन्त नहीं होता। आँधी हो, पानी हो, साँप हो, बाघ हो—किसी बातकी हम परवा नहीं करते। देखो न, आज भी लाभकी आशासे ही, ऐसे बुरे समयमें भी, घरसे बाहर हो ही गये; अब तो कालीमैया मनसा पूरी करें।"

श्याम चाचाने कहा,—"ज़रूर करेंगी। जैसी ख़बर मिली है, उससे तो यही मालूम होता है, कि अभीतक उस मालका हमारे सिवा कोई दूसरा ख़रीदार नहीं खड़ा हुआ है। एकदम बयाना दे देनेसे ही मामला पक्का हो जायेगा। कमरमें नोट तो ठीक तौरसे बँधे रहे हैं न? एकबार हाथ लगाकर देख तो लो!"

यदु, कमरमें बँधे नोटोंको हाथसे टटोलकर, बोला,—"हाँ, ठीक हैं। लेकिन चाचा! सौदा बड़े लाभका है, हमें डर है, कि कहीं मालका मालिक बात न पलट दे।"

श्यामने कहा,—“अभीतक तो ऐसी कोई बात नहीं मालूम होती। आगे हमारे भाग्य! इसकी मुझे पक्की ख़बर मिल चुकी है, कि दोपहरतक मालका कोई ख़रीदार नहीं आया था और जैसे ही हमने यह ख़बर पायी, वैसे ही रुपया लेकर चल पड़े। शेर, चीते, साँप, बिच्छू, मेह, वर्षा, भूत, प्रेत किसीकी भी परवा नहीं की। इसपर भी अगर वह बात पलट जाये, तो अपना क्या वश है? पर पलट जानेका कोई कारण तो नहीं दीखता। तुम धर्म्मात्मा, सत्यवादी और व्यवसायके लिये बड़ी मिहनत करते हो। इसलिये डरो मत; भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे।”

यदुने कहा,—“तुम्हारी असीस ही मेरा भरोसा है। मेरा व्यापार, मेरा धर्म्म-कर्म्म, सब बातें एक तुम्हारे ही भरोसेपर चलती हैं। मैं बिना तुम्हारी सहायता और उपदेशोंके एक काम भी नहीं कर सकता। जबतक तुममें मेरी भक्ति रहेगी, जबतक तुम्हारे उपदेशोंको मैं सब धर्म्मोंका सार समझता रहूँगा, तबतक मुझे कभी सङ्कटोंका सामना नहीं करना पड़ेगा, यही मेरा पक्का विश्वास है।”

श्याम चाचा कुछ अन्यमनस्क भावसे बोले,—“पानी अधिक पड़ने लगा, अन्धेरा भी बढ़ता ही जाता है। ख़ैर, रास्ता साफ़ है, डरकी कोई बात नहीं। कभी-कभी अंटी टटोलते रहना। अगर एकदम हज़ार रुपयेके नोट लाते तो अच्छा होता। जो हो, तनिक सावधान रहना।”

यदुने कहा,—"कुछ डर नहीं है, चाचा! ऐसे समयमें अधिक रुपया लाना ही ठीक होता है। न मालूम, कब क्या ज़रूरत आ पड़े! उस समय किसके पास जाकर हाथ फैलावेंगे? भय काहेका है? रास्ता साफ़ है। और रास्ता साफ़ हो या न हो, हम तो दो आदमी हैं? यमराजको भी दे पटकेंगे। डर काहेका है?"

श्याम चाचाने कहा,—"डर काहेका जी? रामका नाम लो। चोर, डकैत, शेर, भालू, भूत और प्रेतोंको हम समझते ही क्या हैं? हम क्या किसी बातसे पिछड़नेवाले जीव हैं?"

ठीक इसी समय रास्तेसे सटे हुए एक पेड़के नीचेसे किसीने पूछा,—"बाबा! शान्तिपुर कितनी दूर है?"

इस प्रश्नको सबसे पहले हमारे साहसी-सम्राट् श्याम चाचाने ही सुना। वे इस शब्दको सुनकर एकदम चिल्ला उठे और बोले,—"अरे बाप रे! प्रेतनी आ गयी क्या? अरे यार! कोई है? मुझे बचाओ, दादा!"

साथ-ही-साथ अतिसाहसी भतीजेराम भी चिल्ला उठे,—"चाचा! जान बचाओ! मुझे खा डाला। चुड़ैल है, चुड़ैल!"

फिर उसी पेड़के नीचेसे कातर कण्ठ द्वारा शब्द हुआ,—"अरे भैया! मुझे छोड़ न जाना, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।"

यह सुन श्याम चाचाने कहा,—"यह लो, अब आयी! पकड़ लिया! पकड़ लिया!! देखना, नाम न लेना। भैया! रातको आदमीका नाम नहीं लेते।"

साथही यदुने भी कहा,—"मुझे पकड़ लिया, रे बाप ! छुड़ाओ ! बड़ी जल्दी है !"

इसके बाद उसी कीचड़से भरे रास्तेपर अति शीघ्रतासे छपछप-थपथप शब्द होने लगा। बजरङ्ग-बली श्याम चाचा और उनके वीरवर भतीजा यदु, दम साधे हुए भागने लगे। हाथसे जूता गिर पड़ा, सिरसे छत्री खिसक गयी, धड़से प्राण-पखेरू उड़ जानेकी धमकी देने लगे। इसलिये कहाँका जूता और किसकी छत्री ? कौन ख़बर रखे ? इस प्रकार अन्धकारमें भागते-भागते एक दफ़ा श्यामके शरीरसे यदुका शरीर छू गया। श्यामचाचा चिल्ला पड़े, बोले,—"अरे यदु ! छुड़ाइयो, मुझे पकड़ लिया है ! दोहाई मा प्रेतनीकी ! तुम्हारे पैरों पड़ूँ, मुझे छोड़ दो।"

यदुने कहा,—"चाचा, इतना मत डरो। मैं हूँ, मैं।"

हाँफते-हाँफते श्यामने कहा,—"अरे, तुम हो ? तब तो ख़ैर है ! अब डर क्या है, बेटा ? दूर निकल आये। राम-राम !"

अबतक हमारे ये चचा-भतीजे अपनी इस घुड़दौड़में लगभग आध कोसके रास्ता तै कर आये थे। यह जानकर, कि अब प्रेतनीने पीछा करना छोड़ दिया, उन दोनोंकी जानमें जान आयी। उन्होंने अपने सुपटु चरण-चतुष्टयका वेग कुछ कम कर दिया। श्याम-चाचा यदुसे तिरस्कार-भरे शब्दोंमें बोले—'छिः बेटा ! तुम इतने बड़े होगये, दुनियाँ देख डाली ; फिर भी इतना डर गये ?"

यदुने कहा—'बड़े तुम हो या मैं हूँ ? दुनियाँ तो तुम्हारी देखी-भाली पड़ी है ? मैं क्यों डरता ? तुम्हीं तो डर गये ?"

अब तो चाचा साहब चुप होगये। तदनन्तर ये पसीनेसे सराबोर, कीचड़से सने हुए, रुद्ध-श्वास वीर-द्वय, बारम्बार चारों ओर भय-भरी दृष्टिसे देख, कहीं थोड़ी देर बैठकर विश्राम करनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगे। पासमेंही एक पुलिया थी, वे हाँफते-हाँफते उसीपर जा बैठे। इसी समय एक गीदड़ वहाँसे होकर जारहा था। दोनों वीर उस गीदड़के पैरोंकी चाप सुनकर डरके मारे एक साथ चिल्ला उठे :—

"भैया, भागो ! अभी हरामज़ादीने पीछा नहीं छोड़ा !"

लेकिन दोनोंही बेतरह थके हुए थे, उनमें एक पैर चलनेकी भी शक्ति नहीं थी और प्रेतनीके पंजेसे छुटकारा पाना असम्भव समझकर वे अतिशय आशा-शून्य हो रहे थे। क्या करें ? नितान्त निरुपाय होकर दोनोंनेही काँपते-काँपते एक दूसरेको जकड़कर पकड़ लिया और दोनोंही शरीरकी भय-जनित अस्थिरताके कारण, उसी अवस्थामें पुलियाके नीचे गिर पड़े। पुलियाके नीचे मेढ़कोंसे भरा हुआ थोड़ा-थोड़ा पानी था। दोनों वीर उसी पानीमें गिरकर सिरसे पैरतक पानी और कीचड़से लथपथ हो गये। कुशल इतनी ही हुई, कि शरीरमें किसी प्रकारकी चोट नहीं आयी। सारे अङ्ग शिथिल थे, इससे वे थोड़ी देर वहीं चुपचाप प्रेतनीके आनेकी प्रतीक्षा करते रहे। इसके बाद भतीजेने नितान्त धीमे स्वरसे चाचासे पूछा—"चाचा ! प्रेतनी कहाँ है ?"

चाचा बोले—"रामका नाम लो, बेटा! अब उसका ज़िक्र न करो। आजकी यात्रा बड़ीही बुरी हुई।"

इसके बाद चाचा और उनके सुयोग्य भतीजे, अपरिसीम साहससे छाती ठोंक, फिर सड़कपर आये और पुलियापर बैठे। श्रम और परिश्रमसे उनकी देह बेहद थक गयी थी, अतएव वे तत्काल निद्राके वशीभूत होकर थोड़ी देरके लिये तो समस्त यन्त्रणाओंसे छुटकारा ही पा गये।

कहना व्यर्थ है, कि ये दोनों व्यक्ति कृष्णनगरके दूकानदार हैं। उन्नति-शील कृष्णनगरके एक उन्नति-शील बालकने देश-हितैषी वालण्टियर बननेकी आवश्यकताके बारेमें बहुतसी वक्तृताएँ दी थीं। हाट-बाट और घाटोंपर उसकी ज्वलन्त, उन्मादकारी वक्तृता सुनकर कृष्णनगरके बालक, बूढ़े सभी वालण्टियर बनने लिये उत्सुक होरहे थे। उसी समय अन्यान्य बहुतसे दूकानदारोंके साथ श्याम और यदुने भी वालण्टियरोंमें नाम लिखाये थे। हमारी यह बात निष्प्रमाण नहीं—प्रमाण-सहित है। यदि महामति टालसटाय ह्वीलर साहब या उन जैसे अन्य दूसरे कोई ऐतिहासिक पण्डित अपने ग्रन्थोंमें इस चिर-स्मरणीय घटनाको स्थान देना चाहें, तो वे हमारे पास एक प्रार्थना-पत्र लिखकर भेजें। हम इसके सम्बन्धमें समस्त प्रमाण देकर उन्हें चिरकृतज्ञता-पाशमें बाँधनेके लिये तैयार हैं। यह कह देना बहुत आवश्यक है, कि ऐसी घटनाएँ ऐतिहासिकोंकी लेखनीसे अवश्य लिखी जाने योग्य हैं।

दूसरा परिच्छेद

धोखेसे पिटे।

जिस समय चाचा और भतीजे दोनों पुलियाके ऊपर सो रहे थे, उस समय सवेरा नहीं हुआ था। कविकी भाषामें कहना चाहिये, कि उस समयतक सूर्य्यदेवने रँगीली टोपी सिरपर दे, आकाशके पूर्व्वीय द्वारसे झाँकना आरम्भ नहीं किया था। लेकिन अभाग्य, कि दुनियाके सारे आदमी कवि नहीं!

हमारे दोनों व्यवसायी सोते हुए भी प्रेतनीकाही स्वप्न देख रहे थे या नहीं, स्वप्नमें उसकी रूप-कल्पना कर आशङ्कित होरहे थे या नहीं, इसकी हमें कुछ ख़बर नहीं। अतएव इस स्थानपर भारतके इतिहासका एक परिच्छेद अङ्ग-हीन रहा जाता है, पर क्या करें? हम जैसे क्षुद्र-बुद्धि व्यक्तिके द्वारा यह अपूर्णता पूर्ण होती नहीं दीखती, लाचारी है। आशा है, कि जिन यूरोपीय पण्डितोंने अद्भुत गवेषणाके साथ भारतके इतिहासके अन्यान्य अभावोंको दूर किया है, वे ही कृपाकर इस अङ्ग-हीनताको भी दूर करेंगे; क्योंकि इस प्रकारके असंख्य गुरुतर विषयोंकी मीमांसा उनके लिखे ग्रन्थोंके पन्ने-पन्नेमें मणि-मुक्ताकी भाँति शोभा पा रही है।

इसी समय माल-असबाबसे लदी, तिपालसे ढकी हुई एक बैल-गाड़ी क्यों-क्यों च्यों-च्यों शब्दसे दशों दिशाओंको शब्दाय-

मान करती हुई कृष्णनगरकी तरफ़ जाती दिखाई पड़ी। उसका गाड़ीवान निद्धू बड़ा ही मूर्ख था; नहीं तो इस निशा-समाप्तिके समय, वह प्रकृतिकी अकथनीय शोभाका सम्भोग न कर, गाड़ीके जुएपर बैठा हुआ ऊँघता क्यों रहता ?

प्रेतनीकी चिन्तामें चूर और इस समय निद्राके वशवर्ती उन दोनों व्यक्तियोंके कानोंमें सहसा उस गाड़ीकी विकट ध्वनिने प्रवेश किया। मालूम हुआ, मानों अबकी बार दल बाँधकर, आत्मीय-कुटुम्बादिको साथ लेकर, वह भूतनी उन दोनोंको पकड़ने आरही है, इसलिये अबके छुटकारा नहीं! यह सोच भतीजेने कहा,—"यह लो। अबकी बार तो बचना कठिन है। भूतनियोंका झुण्ड है, रे बाप! बचाओ।"

चाचा बोले—"अरे पकड़ लिया, रे बाप! दौड़ियो, दौड़ियो!"

उस समय चचा-भतीजे एक दूसरेकी गर्दनमें हाथ डाले हुए भागनेकी चेष्टा करने लगे।

इस गोलमालसे निद्धू गाड़ीवानकी नींद खुल गयी। यह तमाशा देखकर उसने समझा, कि हो न हो, कोई चोर किसी मुसाफ़िरको लूटनेकी चेष्टा कर रहा है, इसीसे दोनोंमें हाथापाई हो रही है। उसने श्याम-चाचाको चोर और यदुको मुसाफ़िर समझ लिया। मालूम होता है, कि अभागे गाड़ीवानने, जगत्‌के परित्राण-कर्त्ता प्रभु ईसा-मसीहकी नीति-कथाकी कभी आलोचना नहीं की, दार्शनिक-श्रेष्ठ जान स्टुअर्ट मिलके 'यूटिलिटेरियनिज़म्-

शास्त्रका कभी अध्ययन नहीं किया, इसीसे तो उसके हृदयकी संकीर्णता तनिक भी दूर नहीं हुई थी ? उसे Survival of the fittest (जिसकी लाठी उसकी भैंस) का सिद्धान्त मालूम होता, तो वह उसका इस अवसरपर प्रयोग कर सकता था ; और फिर किसी प्रकारका श्रम उठानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वह मूर्ख, गोलमाल देखते ही, क्रोधसे बलबला उठा और गाड़ीसे कूदकर जल्दीसे घटना-स्थलपर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर यदि वह चुपचाप खड़ा हो जाता तो सम्भव था, कि पण्डित लोग उसके चरित्र-गत साम्य-भावका समर्थन करते; पर ऐसा न हुआ। मन्द-मति निद्धूने विना कुछ कहे-सुने हाथके बैल हाँकनेके डंडेसे चाचा महाशयकी खूब मरम्मत की और अत्यन्त क्रोधके साथ चिल्लाकर कहने लगा—"रह वे साले, डकैत! आज तेरी हड्डी-पसली दुरुस्त कर दूँगा, मांसका लोथड़ा बनाकर छोड़ूँगा। जानता नहीं, हरामज़ादे! यह कम्पनीका राज्य है ?"

इतना कहकर गाड़ीवान महाशयने दुगुने ज़ोरसे फिर श्याम-चाचाको पीठमें दो-चार पैने जड़ दिये। इस स्थानपर इतना कह देना आवश्यक है, कि निद्धू गाड़ीवान कम्पनीके राज्यके किसी इलाक़ेका 'जस्टिस आव दी पीस' या आनरेरी मजि-स्ट्रेट नहीं है और न वह डिपुटी कलेक्टर या 'दारोग़ा' ही है। इसलिये इस प्रकार अनधिकार-चर्चा कर, क़ानूनका अपमान करना उसके लिये महा अन्यायका काम है, इसमें कोई सन्देह

नहीं। ख़ैर, जो कुछ भी हो, निद्धू है बड़ा भारी राज-भक्त ! उसने शब्दों द्वारा जैसी राज-भक्तिका परिचय दिया, ज़िलेके मजिस्ट्रेट साहब यदि उसे कृपाकर गवर्नमेण्टके रूबरू कर दें, तो निश्चयही निद्धू गाड़ीवान रायबहादुर अथवा सी० आई० ई० की उपाधिसे विभूषित हो जाये। वास्तवमें ऐसे राज-भक्त ही राज-सम्मानके उपयुक्त पात्र हैं।

अकसर लोग कहा करते है, कि मारमें बड़ा गुण है, उसके आगे भूत भागता है। फिर भूतनी किस खेतकी मूली है? इस समय प्रेतनीके ऊपर मार न पड़नेपर भी प्रेतनीके सताये हुएपर बेहद मार पड़ी है। उस मारकी चोटसे, सम्भवतः प्रेतनी उसके सिरसे उतर गयी। यदुने प्रहारका शब्द और चाचाका आर्त्त-नाद सुनकर डरके मारे चाचाके हाथोंके बीचसे अपनेको छुड़ा लिया और थोड़ी दूर जाकर खड़ा होगया। इधर यातना-क्लिष्ट श्याम चाचा काँपते-काँपते गाड़ीवानके पाँव पकड़कर बोले—"दुहाई बाबा ! मैं चोर-डाकू नहीं हूँ। मेरे बाप-दादोंमेंसे भी कोई चोर नहीं था। यह यदु रिश्तेमें मेरा भतीजा लगता है। कृष्णनगरके सब आदमी हमें जानते हैं, वहाँ हमारी दूकान है।"

गाड़ीवानने विस्मयके साथ एकबार यदु और श्यामचाचाके मुँहकी तरफ़ देखकर कहा,—"हैं ! यह क्या माजरा है ? ये तो श्याम चाचा मालूम होते हैं ! और वह ?—यह लो, वह तो यदु भैया हैं ! राम ! राम ! बड़ी भूल हुई।"

अब श्याम चाचाने आँखोंका आँसू पोंछकर गाड़ीवानके मुँहकी तरफ़ देखा और उसे पहचानकर क्रोध सहित बोले—"कौन है रे ? निद्धू ? हरामज़ादे ! एकदम मारकर ढेर कर दिया ?"

अबके बड़े गुस्सेसे भरकर यदुने कहा,—"निद्धू ? अबे ! तूने किस बिरतेपर मेरे चाचाके ऊपर हाथ उठाया ? बता तो सही ? अच्छा, ठहर। तेरा सत्यानाश करके ही छोड़ूँगा। क्या तू मुझे नहीं जानता ?"

यह सुन निद्धू, उर्फ़ निधिराम घोष, बड़ाही दुःखित हुआ और घबरा गया। उसने जैसी घटना देखी और जिस विश्वासके वशमें होकर ऐसा दुष्कर्म्म किया, उसे विनयके साथ समझा दिया और बड़ा आन्तरिक दुःख प्रकाशित करने लगा। इस दुःख-प्रकाशनको सभ्य भाषामें 'ऐपोलोजी' कहते हैं। दो-चार गु.स्सेसे भरी गालियों, अभिमान और शासन भरे वाक्योंके बाद चचा-भतीजोंने एक साथ उसकी क्षमा-प्रार्थना स्वीकार—अर्थात् ऐपोलोजी ऐकसेप्ट—कर ली।"

इस स्थानपर तत्त्वदर्शी पुरुषोंने निधिराम ग्वालेके चरित्रकी समालोचना करके कितनेही प्रयोजनीय सिद्धान्त निकाले हैं। भविष्यत्‌में इतिहास-लेखकोंके लिये वे बड़े कामके साबित होंगे; इसीसे हम उनको यहाँपर लिखे देते हैं! निधिराम घोष मूर्ख है, वह बैलोंकी पीठपर पैनी धारवाले पैनोंका प्रयोग करता है, उनकी पूँछ मरोड़कर मज़ाक़ करता है, उनको मा-बहिनको बुरी-बुरी गालियाँ देता है, उन्हें गाड़ीमें जोतकर मारता है, उनपर

भाड़ेका माल लादता है और घर जाकर गाड़ीको एक किनारे रख देता है। बस, उसे इतने ही काम मालूम हैं। 'ऐपोलोजी' माँगना वह बिल्कुलही नहीं जानता। हमारे एक सम्मानित अँगरेज़ मित्रने बहुत विवेचनाके बाद स्थिर किया है, कि 'ऐपोलोजी' (क्षमा) माँगना सभ्यताका एक अङ्ग है। भारतवर्ष असभ्य देश है, इसमें पहले कभी ऐपोलोजीका प्रचार नहीं था। जिस प्रकार आजकल विलायतसे विलायती कपड़े आनेसेही क्षुद्र हिन्दुस्तानियोंकी नग्नताका निवारण होता है, उसी प्रकार सभ्यताकी गाँठकी गाँठ आजानेसे ही जड़भरत निधिराम भी ऐपोलोजी माँगना सीख गया है। अतएव बृटिश-राज्यकी जय हो—उसका अधिकार वसुन्धराके कोने-कोनेमें फैल जाये। इन विचार-निपुण पण्डित महाशयने और भी एक मीमांसा की है। वह यह, कि जिन लोगोंने इस प्रकार 'ऐपोलोजी' आदि सभ्यताके प्रधान अङ्गोंको सीख लिया है, वे ही इस देशमें समाजके सिरमौर समझे जायेंगे। ऐसे लोगही 'नेशनल कांग्रेस' में डेलीगेट होकर जाने योग्य हैं। श्रीयुक्त निधिराम घोष गाड़ीवान महाशय शायद उक्त महासभाके एक मेम्बर हैं। यदि अभीतक उनको यह सम्मान न मिला हो, तो वे शीघ्रही किसी न किसी उन्नति-शील स्थानसे डेलीगेट होकर 'नेशनल कांग्रेस' नामक महासभामें जायेंगे और मेघ-गम्भीर स्वरसे स्पीच देकर भारतका उद्धार कर डालेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अस्तु, अब निद्धू सारा हाल जाननेके लिये बड़ा व्याकुल हुआ। दोनों चाचा-भतीजे उसकी व्याकुलता दूर करने लगे। यदि एक कोई बात कहनेसे छोड़ जाता, तो दूसरा तत्काल उसकी पूर्त्ति कर देता। उन्होंने प्रेतनी देखी थी। अतएव उसका वर्णन करते हुए वे कहने लगे—"उसके लम्बे-लम्बे फावड़े जैसे दाँत थे, पाँव उलटे थे, देहमें सैकड़ों कीड़े थे, नाकसे बोलती थी।" उन्होंने और भी तरह-तरहकी बातें नोन-मिर्च लगाकर कहीं। साथही यह भी कहा, कि हमने जो कुछ कहा है, वह अविश्वसनीय नहीं ; कारण, आँखों देखी बात है। बातें सुनकर निद्धू डरा। उसने प्रतिज्ञा की, कि आजसे वह कभी इस रास्तेसे नहीं जायेगा। देखो तो, हमारा निद्धू, सुस्वस्थ होनेपर भी कुसंस्कारोंका कितना बड़ा दास है!

सारी बातें सुनकर निधिराम बोला—"श्याम चाचा! इस रास्तेमें जब इतने ख़तरे हैं, तब शान्तिपुर जानेकी कुछ ज़रूरत नहीं। चलो, मकान लौट चलें।"

चाचाने सिर नीचा कर लिया। उन्होंने सोचा, "सलाह कुछ बुरी नहीं है।" पर भतीजेराम उसे माननेके लिये तैयार न हुए। वे उद्योगी और व्यापारी थे, बोले—"भई! बड़ा ज़रूरी काम है, लौटनेसे नहीं चलेगा। खासकर अब तो शान्तिपुरके बिल्कुल पास आचुके हैं—बहुत होगा तो दो कोस! इतनी दूर आकर लौट जायेंगे तो लोग क्या कहेंगे? उठो, चाचा! काली

मैयाका नाम लेकर चल पड़ो। थोड़ा सा तो रास्ता रह गया है, अभी बातकी बातमें पहुँच जायेंगे।"

अब भी अच्छी तरहसे पौ नहीं फटी थी। निद्धू बोला,—"अच्छा, जब जानाही है तब धूप निकलते-निकलते वहाँ पहुँच जाना चाहिये। चलो, काली मैया भला करेंगी।"

यह सुनकर चाचा साहब हाथसे पीठ सहलाते हुए एक लम्बी साँस लेकर उठ बैठे और बड़े कष्टसे चलने लगे। भतीजे-राम भी उन्हींके पीछे-पीछे चले। निद्धू अपनी गाड़ीपर जा बैठा और उसने भी बैलोंकी पूँछ मरोड़कर गाड़ी हाँक दी।

श्यामाचरण हालदार और यदुनाथ हालदार दूरके रिश्तेसे चाचा-भतीजे होते थे। कृष्णनगरमें यदु हालदारकी एक बड़ी भारी दूकान है; उसमें लाखोंका कारबार होता है। पहले यदुके पिता उसका काम चलाते थे; उनकी मृत्यु होजानेके बादसे यदु ही दूकानको सिरपर धरे हुए है। पिताकी अवस्था पहले सामान्य ही थी। इसी दूकानकी बदौलत उनकी हैसियत बहुत अच्छी हो गयी; उन्होंने घरद्वार बनवाये तथा तीज-त्यौहार भी बड़ी धूमधामसे करने लगे थे। बेटेने पिताकी मर्यादा बनाये ही नहीं रखी, बल्कि बढ़ा भी दी। यदु अच्छा लड़का है, उसे व्यर्थका ठाट-बाट पसन्द नहीं। अपव्ययसे वह घृणा करता है। वह थोड़ा कृपण है; पर देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति रखता है, परलोकका डर मानता है। उसमें इन्द्रिय-दमन और परोपकारकी लालसा भी है। वह मैला कपड़ा पहनता है,

काँधेपर अँगोछा डाल इधर-उधर घूमता है, ज़मीनपर बैठ रहता है, चबेना फाँकता है, अपनी चिलम आप भर लेता है—और भी न जाने कितने ओछे काम करता है। वह उतार-चढ़ावके बाल कटवाना बुरा समझता है, मुँहमें सिगरेट दबा-कर अँगरेज़ी नहीं बोलता और मद्यसे घृणा करता है। सारांश यह, कि सभ्यलोग जिन्हें सुकर्म्म कहते हैं, उनमेंसे एक भी यदुको नहीं आता! आजकलके समयमें जिसे लिखना-पढ़ना कहते हैं, उसे भी वह नहीं जानता; क्योंकि वह स्कूल-कालिजमें कभी नहीं पढ़ा। वह बही-खाता लिखता है, जमाखर्च करता है, हर तरहके हिसाब ज़बानी ही कर लेता है, परन्तु इसके सिवा और कुछ नहीं जानता।

यह उपन्यास किसी कामका नहीं, फेंको इसे। भूमिकामें तो मारे तारीफ़ोंके मग़ज़ ख़ाली कर दिया, पर अन्दर देखा तो ख़ाक-धूल! कहीं ऐसे भी उपन्यास हुआ करते हैं? उपन्यास है, चन्द्रकान्ता, पुतलीमहल, चक्करदार चोरी! जिस उपन्यासमें यदुसे नाचीज़ आदमीका प्रसङ्ग है, वह क्या मार्ज्जित-रुचि सभ्य पाठकोंका मनोरञ्जन कर सकता है? यदि यदुनाथ कमसे कम किसी हिन्दी-पत्रका सम्पादकही होता, तो हम उसकी कथा और उसके चरित्रको आँख-कान बन्द कर पढ़ लेते। छिः! यदु मामूली दूकानदार है, उसके द्वारा भारतोद्धारमें किसी प्रकारकी सहायता नहीं पहुँच सकती। इसलिए इस उपन्यासको दूर करो। इसीलिये तो उच्चशिक्षासे सुशिक्षित

सुरुचि-सम्पन्न लोग हिन्दीके उपन्यासोंको छूतेतक नहीं! क्योंकि न तो ये पात्र-निर्व्वाचन करना जानें, न यह समझें, कि कौनसी बात कहनी चाहिये और कौनसी नहीं। न इनके उपन्यासोंमें अद्भुत घटनाएँ ही होतीं, न कोई शिक्षा या उपदेश ही मिलता। अतएव जिन उच्चशिक्षा पाये हुए सुरुचि-सम्पन्न देशभक्तोंने यहाँतक हमारा उपन्यास पढ़ा है, उनसे हम कहते हैं, कि बस आगे न पढ़िये, किताब रख दीजिये।

लेकिन जो पाठक यदुनाथके नामसे नहीं डरते, वे हमारे साथ आ जायें और यदुनाथके भारको सहनेमें अक्षम पाठक महोदय अभीसे हमारा साथ छोड़ दें, क्योंकि हमने यहाँतक यदुनाथकी ही कहानी कही है, इस समय भी कह रहे हैं और आगे भी कहेंगे। अस्तु।

श्यामाचरण, यदुके पिताके दाहिने हाथ थे। यदु भी उनका यथेष्ट आदर और सम्मान करता है। श्यामाचरण यद्यपि यदुकी दूकानके प्रधान कर्म्मचारी हैं, तथापि यदु उन्हें अपना चाचाही समझता है और उन्हें अपना संरक्षक समझकर उनकी भक्ति और श्रद्धा करता है। उसने अभीतक उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं किया। श्याम भी स्वार्थ-त्यागी हैं, वे प्रायः हर समय यदुकी ही वृद्धि-चिन्तामें रहते हैं।

आज ये दोनों सीधे-सादे व्यवसायी, किसी विशेष लाभजनक सौदेकी आशासे, रुपया-पैसा साथ लेकर इस असमयमें शान्तिपुर जारहे हैं—यह पाठकोंको मालूम ही है।

तीसरा परिच्छेद।

विराजमोहिनी।

क्रमशः प्रातःकाल हुआ। यदि आपलोग सरल चित्तसे अनुमति दें तो हम इस समय प्रभात-वर्णन करनेकी चेष्टा करे! यह काम तो कवियोंका है, और हम कवि नहीं हैं, इसलिये हमारी यह अनधिकार-चर्चा होगी, लेकिन क्या कभी बौना आदमी चाँद पकड़नेकी इच्छा नहीं करता? क्या कभी लँगड़ा पहाड़ लाँघनेकी वासना नहीं करता? फिर हमीं क्यों न कवियोंका काम करें? हम कवि नहीं हैं, तो क्या हुआ? भाग्यवश कवियोंके हृदय-सागरसे निकली हुई काव्य-सुधाका तो थोड़ा-बहुत पान किया है?

आजकलके नामके भूखे ग्रन्थकारोंकी तरह हम भी उन कवियोंके भाव चुराकर उनके दिखाये हुए रास्तेपर चलनेकी चेष्टा अवश्य करेंगे। सोच चुके हैं, मानेंगे नहीं। इसमें किसीका कुछ हर्ज थोड़े है? यदि किसीको यह वर्णन रुचे, तो 'वाहवाही' पानेका अधिकार हमारा है और बुरा मालूम पड़े, तो उन कवियोंको गालियाँ दो, क्योंकि दोष उनका है। हमने तो केवल उनकी बातें चुराकर लिखी हैं, अतएव क्षमाके पात्र हैं। अच्छा, सुनिये,—हमारा प्रभात-वर्णन अब आरम्भ होता है।

सप्ताश्व-संयोजित सुरम्य स्यन्दनपर समारूढ़ हो सूर्य्यदेव पूर्वाकाश-प्रदेशमें प्रकट हुए। उनके आगमनको देखकर सरोवरमें कमलिनी-कुल उल्लाससे भरकर विकसित हो गया। मार्त्तण्ड-देवके प्रचण्ड प्रतापसे अन्धकारने पलायन-परायण होकर गिरि-गुहा और दुर्गम देशोंमें आश्रय लिया। मयूखमाला एवं किरणावलीसे मण्डित हो दिङ्मण्डलने तमोमुक्त होकर रम्य मूर्त्ति धारण की। निशानाथ नितान्त निरुपाय होकर नीरवताके साथ अदृश्य होने लगे! नीर-शोभिनी नायिका नलिनी निज पतिके विच्छेदसे वियोग-विधुरा बालिकाके समान मलिना, श्री-हीना और कातरा होने लगी। पक्षी-गण अपने पर्ण-कुटीरोंका परित्यागकर आकाश-प्रदेशमें विचरण करनेका प्रयत्न करने और सप्तस्वर-लहरीके साथ समस्त प्रदेशको प्रकम्पित करने लगे। कुसुम-कुल विकसित होकर स्व-सौरभसे सकल स्थानोंको आमोदित करने लगा। मधु-लोलुप भौंरे गुन-गुन शब्द करते हुए प्रसून-पुञ्जोंके समीप फिरने लगे। इसी समय हम लोगोंने भी जवाकुसुम-सङ्काश सर्व्व-पाप-विनाशक सूर्य्य-देवको प्रणाम कर अपना अपूर्व प्रभात-वर्णन समाप्त कर दिया।

श्यामाचरण और यदुनाथ धीरे-धीरे और चुपचाप शान्ति-पुरकी तरफ़ जा रहे थे। एकाएक रास्तेके पास ही कहींसे एक यन्त्रणा-भरी अस्फुटध्वनिने उनके कानोंमें प्रवेश किया। सुनकर दोनों चौंक उठे। फिर उन्हें रातवाली प्रेतनीकी बात

याद आगयी। जिधरसे आवाज़ आयी थी, उधरकोही कान खड़े करके देखा। मालूम हुआ, कि रास्तेके पास ही लता-गुल्मोंके झुरमुटमें कपड़ेसे ढकी एक मनुष्य-मूर्त्ति पड़ी हुई है! देखकर वे डरे, तथापि विना उसके पास गये उनसे न रहा गया। पास जाकर देखा, कि एक स्त्री, उस ओससे भीगी घासपर महाशोचनीय दशामें पड़ी हुई है। अपरिचित पुरुषोंको पास आते देखकर स्त्रीको सङ्कोच हुआ। वह शरीरको ढंकनेका यत्न करने लगी। श्यामाचरणने कहा,—"मा! डरो मत—हम तुम्हारे बालक हैं।"

रमणीके जीमें जी आया। यदु बोला,—"बहन! तुम यहाँपर क्यों पड़ी हो? रातमें तुम कहाँ थीं? इस असमयमें तुम कहाँसे आयी हो? कहाँ जाओगी?"

रमणी चुप रही। यह देखकर यदु फिर कहने लगा,—"मा, विश्वास रखो, हम तुम्हारे हितेच्छु हैं। बोलो, तुम क्या चाहती हो?"

स्त्री उठकर बैठनेका प्रयत्न करने लगी। बड़े कष्टसे उठकर बैठी। उसकी सूरतही देखनेसे मालूम होता था, कि उसे बड़ा भारी दुःख है। रमणीने धीरे-धीरे अपनी अवस्था कह डाली। यदुके समस्त प्रश्नोंका उसने यथासम्भव उत्तर दे दिया। जो कुछ कहना था, सब कह सुनाया। उसकी बातें सुनकर यदु चकित हो गया। स्त्रीका कण्ठ-स्वर मधुर था। रूप-राशि भी अलौकिक थी। यद्यपि इस समय वह धूलसे

लिपटी, रूक्ष-केशा, निराभरणा और फटे वस्त्र पहने हुई थी, तथापि उसका सौन्दर्य्य अनिर्वचनीय था।

उपरोक्त प्रतिबन्धकोंको अतिक्रमकर शरीरके प्रत्येक अङ्गसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी ; मानों वह सौन्दर्य्य अपने आप हँस रहा था। अङ्गोंकी मलिनतामें इतनी शक्ति नहीं थी, जो उसके गोरे रङ्गकी छटाको छिपा दे। दारिद्र्य और दुःख उसके सर्व्वांगीण सौन्दर्य्य तथा सौकुमार्य्यको ढक रखनेमें असमर्थ थे। हृदयकी कातरता उसके विस्तृत युगल लोचनोंकी उज्ज्वलताको छिपा नहीं सकती थी और लज्जा एवं विषादसे उसकी शोभामें तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा था।

यदुके कौशलमय प्रश्नोंके उत्तरमें उपरोक्त सुन्दरीने अपना जो कुछ परिचय दिया था, उसके आवश्यकीय अंशोंको अपनी जानी हुई और-और बातोंके साथ-साथ हम पाठकोंके अवलोकनार्थ यहाँपर लिखे देते हैं।

इस सुन्दरी ब्राह्मण-कन्याका नाम विराजमोहिनी है। निवास, कृष्णनगरके उत्तर, नदीके उस पार किसी ग्राममें है। युवतीकी अवस्था अनुमानतः बीस वर्ष होगी। अति शैशवमें ही मातृहीना हो जानेके कारण पिताके सिवा उसके लिये अन्यत्र आश्रय नहीं था। लेकिन अभाग्यकी बात है, कि तीन मास हुए, उनका भी परलोकवास हो गया। पिता बड़े दुःखी थे। ज्यों-त्यों करके, महाकष्टोंका सामना कर वे अपना और कन्याका पालन किया करते थे। पिताकी परलोक-प्राप्तिके

बादसे विराजमोहिनीके कष्टोंकी सीमा न रही। विराजको पेटके लिये अन्न नहीं, पहननेके लिये कपड़ा नहीं और न वह कहीं भीख माँग या दासीवृत्ति करके ही अपना गुज़ारा कर सकती थी। भगवान्‌ने रूप-यौवन देकर दुःखिनीका सर्वनाश कर दिया था! वह दुःखोंका सामना करके भी अपना निर्वाह नहीं कर सकती थी। वह जिधर जाती, उधर ही उसके शत्रु पैदा हो जाते। हृदय-हीन नर-पिशाच उसका सर्वनाश करनेके लिये सदा उद्यत रहते। वह सबकी छेड़छाड़ और बुरे मतलबका शिकार हो गयी। परन्तु उस साध्वीने अनेक यत्न, और सावधानीसे सैकड़ों कष्ट सहकर भी अबतक अपना धर्म्म बचाया और मरण-पर्य्यन्त उसे ज्योंका त्यों बनाये रखनेका सङ्कल्प किया है।

पर यह क्या? विराजमोहिनी तो सधवा मालूम होती है! उसके हाथोंकी चूड़ियाँ, माथेमें सिन्दूरकी लीक, उसके पतिकी विद्यमानताका परिचय देती हैं। फिर उसे इतने कष्ट क्यों? फिर किसलिये वह दर-दर मारी फिरती है? इसका भी एक कारण है। वह यह, कि विराजको उसके स्वामीने त्याग दिया है। इसीसे यह रूप-लता इस प्रकार मर्म्म-पीड़िता, मलिना और आदर-हीना हो रही है। उसने क्यों त्याग दिया? इसमें उसका कुछ अपराध नहीं; क्योंकि उसका स्वामी बहुत दिनों पहलेसे ही एक कुलटा कामिनीके प्रेममें आसक्त है। किन्तु विराज, ऐसे दुश्चरित्र स्वामीपर भी किसी तरह नाराज़ नहीं। वह

जबतक अपने पूज्य स्वामीके चरणोंका स्मरणकर उनके नामकी पूजा नहीं कर लेती, तबतक अन्न-जल उसके लिये हराम है। सैकड़ों दुःखोंसे दुःखित होकर भी तत्काल मनोहर दिखाई देनेवाले अत्युज्ज्वल सुख-समूहोंके प्राप्त करनेके शत-सहस्र उपायोंके उपस्थित होते भी, उसने कभी स्वामीके अतिरिक्त अन्य किसीकी चिन्ता नहीं की। किन्तु स्वामी भूले-भटके भी कभी उसे याद नहीं करता, उसके खाने-पहरनेकी चिन्ता नहीं करता। यहाँ-तक, कि विराज है या मर गयी, इसकी भी परवा नहीं करता। अपने ससुरके मर जानेपर भी उस अभागेने विराजकी ख़बर नहीं ली।

बड़ी चतुराईसे श्यामाचरण और यदुपतिने मालूम कर लिया, कि विराजके स्वामीका नाम कालिदास चक्रवर्त्ती है। शान्तिपुरमें उसकी आढ़त है। आमदनी भी खूब है। श्यामाचरण और यदुनाथ उसे जानते हैं। उसकी सम्पन्नता और एक वेश्याको लेकर स्वच्छन्द विहार करनेकी बात भी उनसे छिपी नहीं। सुन्दरी उसी कालिदासकी स्त्री है, यह जानकर दोनोंको बड़ा कष्ट हुआ। अनन्तर उन्होंने युवतीको अनेक आश्वासन दिये; कहा,—"हमलोग कालिदाससे इस बारेमें ज़ोर देकर अनुरोध करेंगे, कि अबसे वह तुमको इस प्रकार कष्ट न दे।" कालिदास कई तरहसे उन लोगोंके दबावमें था, अतएव उन्होंने सोचा, कि यदि हमलोग चेष्टा करेंगे तो विराजका कुछ ठीक-ठिकाना कर सकेंगे।

लोग कहते हैं, कि शेर बड़ा भयानक जानवर है! लेकिन आश्चर्य्य है, कि मनुष्योंकी अपरिमित भयङ्करताकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। शेर और आदमीमें खाद्य-खादकका सम्बन्ध है और सुयोगानुसार वैसा हो भी जाता है। लेकिन मनुष्य विना प्रयास, सामान्य लाभके लिये, भाईको भिखारी वना देता है, थोड़ेसे 'रजत'-नामक पदार्थके लोभसे निरीह व्यक्तिको जानसे मार डालता है, असंख्य प्रकारके जाल, फ़रेब और झंझटोंमें फाँसकर लोगोंका सर्वनाश कर देता है; अकारण ही क्रुद्ध होकर कितने ही लोगोंको अपनी क्रोधाग्निमें भस्म कर डालता है, सामान्य इन्द्रियोंके वशमें होकर छल, वल और कौशलसे अनेक अनिष्ट कर डालता है, तनिकसे सुखके लोभमें समाजको हाहाकार और आर्त्तनादसे भर देता है और कारण-अकारण वसुन्धराको शोक-पुरी वना डालता है। प्रमाणके लिये दूर जानेका काम नहीं, इसी कातरा, दुःखिनी कामिनीकी वात सोच देखिये। उसपर विचार करते ही सारे तर्क नष्ट हो जायेंगे। एक आदमी अति घृणित पाशव-प्रवृत्तियोंको चरितार्थ कर सुखका संभोग करता है और एक निरपराधा स्त्री उसके उसी अनुचित व्यवहारके कारण दुर्वह दुःख-भार वहनकर मृत्यु-पथकी पथिका होना चाहती है। अव इन सव वातोंकी विवेचना करके वताइये, कि मनुष्य जैसे श्रेष्ठ जीव और शेर जैसे निकृष्ट पशु, इन दोनोंमें कौन अधिक अपराधी है? विराजमोहिनीने इस थोड़ीसी अवस्थामें जो कुछ देखा है, उससे

वह भले प्रकार समझ गयी है, कि मनुष्य-पशु ही सब पशुओंकी अपेक्षा अधिक भयानक है! इसीसे बेचारी दुःखिनी, मनुष्य-पशुओंकी दृष्टिमें न पड़नेकी आशासे, शेरके पञ्जेमें फँस जानेको अच्छा समझकर दिनमें रास्ता नहीं चलती; वरन् अन्धकारके परदेमें मुँह छिपाकर गन्तव्य-पथको तै करती है।

छः साल बीते, जब कि वह पिताके साथ एकबार पतिके पास शान्तिपुर गयी थी। परन्तु शोक, कि उसके गुणमय स्वामीने उसकी उस नवविकाशोन्मुख अनुपम रूप-राशि, उसके कोमल स्वभाव और उसकी अतुलनीय मधुरताको देखकर भी उस अभागिनीको अपने चरणोंमें स्थान नहीं दिया, मीठी-मीठी बातें कहकर भी सन्तुष्ट नहीं किया; उसके जले पेटको किसी तरह शान्ति पहुँचे, इसकी भी कोई व्यवस्था न की। दुःखिनी बालिकाने उस दुर्व्यवहार-रूप दारुण शक्ति-शेलको छाती फैलाकर सह लिया और अभीतक सहती चली आती है। अवस्थाकी परिपक्वताके साथ उसकी सहिष्णुता भी खूब पक गयी है, साथही आत्म-त्याग भी बढ़ता जाता है। किन्तु क्रोध या कष्ट, अभिमान या यातनासे उसके मनमें एक दिनके लिये भी विकारका उदय नहीं हुआ। स्वामी उसे देखकर घृणा करते हैं, उन्हें उसकी छायाका स्पर्श भी अच्छा नहीं लगता, विराज इस बातको भूली नहीं है और इसीसे अब उसने सङ्कल्प कर लिया है; कि वह कभी उनके पास जाकर

उन्हें नाराज़ न करेगी। लेकिन जब ईश्वरकी मार पड़ती है, तब किसीकी सामर्थ्य नहीं, जो उसकी रक्षा कर सके! आपत्तियाँ चारों ओरसे ही आती हैं। न मालूम, यह विधाताका कैसा विधान है! विश्व-नियन्ताने ऐसे-ऐसे अवसर उसके सामने उपस्थित कर दिये, कि अब बिना पति-देवकी सहायताके उनसे छुटकारा पाना महाकठिन हो गया। अब अगर वह किसी भाँति स्वामीकी दासी बनकर भी अपना पेट पाल सके, तो वह अपनेको धन्य मानेगी। लोग खाना खाकर, बचा-खुचा अन्न कुत्तेको डाल दिया करते हैं। हमारी विराज, वही अन्न खानेके लिये तैयार है! और अगर इतना भी न हो—उसके सहृदय स्वामी यदि इतना भी अनुग्रह न करना चाहें, तब? तब क्या? तब संसारमें प्रलय हुआ ही समझो! हमारी समझमें तो ऐसा अन्याय कभी नहीं हो सकता। स्वामी कितना ही हृदय-हीन क्यों न हो, पर विवाहिता पत्नीके प्रति ऐसा व्यवहार कभी न करेगा। भगवान् न करे, पर यदि अभाग्यवश विराजमोहिनी स्वामीका इतना भी अनुग्रह न पाये, तो वह सीधी गङ्गामें जाकर डूब मरेगी। यही उसका स्थिर मन्तव्य है।

इतना रास्ता चलनेका विराजको अभ्यास न था; इसलिये उसे महाकष्ट हुआ है। गत रात्रिसे पाँवोंको पीड़ा और शरीरकी शिथिलताके कारण वह नितान्त कातर होकर इस स्थानमें पड़ी थी। रातमें अकेली पेड़के नीचे पड़ी रहनेसे

वह बेहद डरी हुई थी। दो मुसाफ़िर बातें करते हुए शान्ति-पुरकी तरफ़ जा रहे थे। रातका समय था, पहचान तो सकी नहीं ; लेकिन बातचीतसे ऐसा अवश्य मालूम होता था, कि वे दोनों सज्जन हैं। इसीसे मनमें आया, कि उनसे वह थोड़ी सी अनुग्रह-प्रार्थना करे। प्रार्थना और कुछ नहीं, केवल साथ जानेका सहारा ढूँढ़ती थी ; पर अभागिनीके अभाग्यसे प्रार्थनाका स्वीकार होना तो एक तरफ़—वे पथिक डरके मारे वहाँसे पीछेकी तरफ़ भाग गये।

इतना सुनते ही यदुने एकबार श्यामके मुँहकी ओर देखा, श्यामने भी यदुकी तरफ़ देखा। रातकी चुड़ैल यही सजीव, सुन्दरी ब्राह्मणी थी, प्रेतिनी नहीं,—यह अब भले प्रकार समझमें आगया। गत रात्रिके मामलेकी इतनी देर बाद मीमांसा हुई। श्यामने एक दीर्घ श्वास छोड़कर कहा,—"वे मुसाफ़िर हमींलोग हैं, बुद्धिके दोषसे हमने अपने आप भी कष्ट पाया और तुम्हें भी तकलीफ़ दी। अच्छा, अब बहुत देर हो गई ; शान्तिपुरमें हमें एक बड़ा ज़रूरी काम है ; देर होनेसे नुक़सान होगा। बोलो, तुम हमसे क्या चाहती हो ?"

यदुने कहा,—"चाचा ! काम बड़ा ज़रूरी हैं, विलम्ब करनेसे नुक़सान हो जायेगा ; लेकिन कितना ही नुक़सान क्यों न हो, कितनी ही देर क्यों न हो जाये, इस ब्राह्मण-कन्याको इस अवस्थामें छोड़ जाना मुझसे किसी तरह न हो सकेगा !"

भयङ्कर व्यवसायी, घोर विषयी, नितान्त कृपण, महा

असभ्य, और अशिक्षित यदु, जिस व्यवसायके लिये जीवनको विपन्न करके भी शान्तिपुर जारहा था, उसकी बात भूल गया और विपद्ग्रस्ता, कुल-कामिनीकी यथासाध्य सहायता करना ही उस समय उसके जीवनका एकमात्र लक्ष्य बन बैठा। वह अब कमरसे लिपटी चादरको खोल और उसे भिगोकर पानी ले आया और विराजको पीनेके लिये कहा। अनन्तर अनेक प्रकारसे उसे कुछ सुस्थ और आश्वस्तकर बोला,—"क्या अब थोड़ासा और चल सकती हो? बहुत दूर नहीं है।"

विराजमोहिनीने कहा,—"मुझमें खड़े होनेतककी भी शक्ति नहीं है। किस तरह चल सकूँगी? तुम्हें ज़रूरी काम है, तुमलोग जाओ। बेकार देर हो रही है। तुमलोगोंके पास रहनेसे थोड़ा साहस था। अब न मालूम, विधाता कौनसी विपद्में डालेगा!"

यदुने कहा,—"ना, ना, हम तुम्हें यहाँ अकेली छोड़कर नहीं जा सकते। बेशक, इस समय तुम्हारी हालत बहुत ख़राब है। अच्छा, साथ ले चलनेका और कोई उपाय ढूँढ़ते हैं।"

इसी समय दूरपर बैल-गाड़ीकी सुललित 'चर्र क्यूँ-चर्र क्यूँ' ध्वनि सुनकर यदु बोला,—"मालूम होता है, कि कोई गाड़ी आ रही है। देखें, उसमें तुम्हारे जानेका बन्दोबस्त हो सकता है या नहीं।"

विराजमोहिनीने कहा,—"लेकिन गाड़ीमें बैठनेपर तो भाड़ा लगेगा, और मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है।"

कर्मफल



विराजमोहिनी और यदु ।

"विराज सावधानीके साथ गाड़ीमें बिठा दी गयी ।"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—३२]

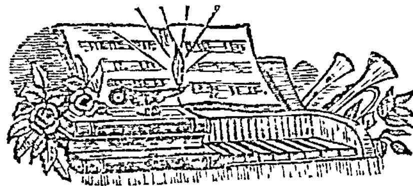
यदुने हँसकर कहा,—"भाड़ेके लिये कुछ सोच मत करो। गाड़ीका भाड़ा हम तुम्हारे स्वामीसे वसूल कर लेंगे।"

विराजमोहिनीने कहा,—"माफ़ करो। मैं अपने लिये मुट्ठी-भर अन्नका बन्दोबस्त करने जा रही हूँ, भाड़ा माँगनेपर तो वे ऐसे नाराज़ हो जायेंगे, कि जिसका हिसाब नहीं।"

यदुने कहा,—"विश्वास रखो, सब कुछ हो जायेगा। मैं ऐसी चतुराईसे उनसे पैसे वसूल करूँगा, कि वे नाराज़ न हो सकेंगे।"

गाड़ी पास आ गयी। वह कृष्णनगरको सवारी उतारने गयी थी। उसमें ऊपर छत्री और नीचे पुआल बिछी हुई थी। इसलिये यदु जो कुछ सोच रहा था, सौभाग्यसे वही हुआ। श्यामचरणने भाड़ा तै किया। विराज सावधानीके साथ उसमें बिठा दी गयी। गाड़ी चलने लगी। श्याम और यदु उसके पीछे-पीछे जाने लगे।

यहाँपर मूर्ख यदुने भी एक अच्छा काम कर डाला। हाय री मूर्खता! कभी-कभी तो तू पण्डिताईसे भी अधिक प्रशंसाका काम कर जाती है!



चौथा परिच्छेद।

तरंगिणी।

कालिदास चक्रवर्त्ती बड़ा कुरूप मनुष्य है। उसकी अवस्था लगभग चालीस वर्षके है। आदमी एकदम लम्बा, काला और बदसूरत है। उसके दाँत निकले हुए, मुँहपर चेचकके दाग़, सूअरके बालोंकीसी छितरी मूँछें, सिर गंजा, शरीर नीली नसोंसे भरा, लाल—पर छोटी-छोटी आँखें आदि अनेक लक्षणोंने उसको बेढब ख़ूबसूरत बना डाला है! वह जातिमें भी ऊँचा नहीं था, इसी लिए बहुत दिनोंतक उसका व्याह नहीं हुआ। पाठक जानते ही हैं, कि विराजमोहिनीके पिता नितान्त दरिद्र थे। बड़े घरमें कन्यादान करनेके लिये बहुत व्यय और भारी-भारी भूषणोंकी आवश्यकता हुआ करती है; यह उनके साध्यसे बाहर था; इसलिये निरुपाय होकर उन्होंने दुहिता-रत्नको इस सत्पात्रके ही कर-कमलोंमें समर्पित कर दिया!

कालिदास, कुमार-सम्भवकर्त्ता कवि-कुल-मुकुट-कलानिधि कालिदासकी पूर्व्वावस्थाकी भाँति, पढ़ने-लिखनेके नाम कोरा निरक्षर भट्ट है। पर उसकी अवस्था अच्छी है, कारोबार ख़ूब जमा हुआ है। इस स्थानपर कर्म्माभिमानी, विद्याभिमानी, क्षमताभिमानी और ज्ञानाभिमानी पाठक महाशय क्रुद्ध

होशियार, सम्भव है, हमारी गर्दन दबाकर जान मार डालेंगे ; क्योंकि वे कह सकते हैं, कि जिसके पास विद्या नहीं, बुद्धि नहीं, जो व्यवहारमें पूरा उल्लूबसन्त है, इस जगत्‌में वह कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। जब कालिदासका कारोबार अच्छी तरहसे चल रहा है, तब ज़रूर ही उसमें कार्य्य-दक्षता है। बात सुननेमें अच्छी है, पर है, बड़ी थोथी! नव्य, सभ्य, उन्नत व्यक्तियोंके मुखसे ही इस दलीलकी शोभा है ; हम जैसे मूर्ख तो उसे कभी अपने दिमाग़में न घुसने देंगे। एक साधारण दृष्टान्त देते हैं, सुनिये—आध घण्टेके भीतरही हैज़ा हुआ और लीला समाप्त हो गयी—यह बात जिन्हें नहीं मालूम, अथवा जिन्हें हैज़ा हो जानेपर उसके दूर करनेका उपाय भी नहीं मालूम, उनकी विद्या, बुद्धि, क्षमता और कृतित्वका अहंकार बड़ाही हास्यजनक है। मनुष्य दौड़-भाग करते हैं, होड़ाहोड़ी करते हैं और घमण्डसे देह फुलाये हुए सोचते हैं, कि हम सब कुछ कर लेते हैं, लेकिन यथार्थमें जो काम करनेवाला है, वह कारीगर जिधर आदमीको घुमा देता है, उससे कोई रत्ती-भर इधर-उधर नहीं कर सकता। इतनेपर भी मनुष्यका मिथ्या अभिमान नहीं जाता। ख़ैर, जो कुछ हो, हम कहते हैं, कि मूर्ख, अकर्मण्य कालिदासके कारोबारकी इस समय ख़ूब उन्नति हो रही है।

कालिदासने जो मकान बनवाया है, वह बढ़िया, पक्का और विस्तृत है। उसके सरोसामान भी कुछ बुरे

नहीं। लेकिन कालिदासकी उपपत्नी तरंगिणी सबको अपना ही बतलाती है। कालिदासके पास नक़द जमा-जथा बहुत नहीं है। लेकिन उसकी उपपत्नीकी देहपर गहने लदे हैं। कालिदास उन्हें अपना समझता है। उसके कामकाजमें खूब रुपया पैदा होता है, उसकी आढ़तका चारों तरफ़ नाम है और इसीलिये वह भी खूब मशहूर है। जिसके पास धन है, वह यदि समाजका कलंक और नरपिशाच भी हो तो उसके सम्मानमें किसी प्रकारका आघात नहीं पहुँचता। इसी न्यायसे कालिदास जैसे व्यक्तिके लिये भी मान और गौरवकी कमी नहीं। हाय, चाँदीके टुकड़े! इस संसारमें तुम्हीं अतुलनीय हो। अयि अघटन-घटन-पटीयसी मुद्रे! तुमने जिस किसीकी ओर एकबार नज़र भरकर देख लिया, वह मूर्ख होनेपर भी महा पण्डित है, अल्पज्ञ होनेपर भी बहुज्ञ है, दारुण कुकर्मासक्त होनेपर भी परम साधु है।

दो पहर दिन चढ़ आया है। कालिदास भोजनादि समाप्त कर लम्बेसे कमरेमें पलंगके ऊपर बैठकर हुक्केका सेवन कर रहा है। हुक्का पूरा कलुआका बाप, तिसपर सटक शैतानकी आँत! कालिदासको तम्बाकूके धुँएके साथ-साथ ताम्बूल-चर्वणका भी खूब आनन्द आ रहा है। फिर आनन्द भी किसी प्रकारसे काना, खुतरा, लूला, लङ्गड़ा नहीं है। कारण, कि सामनेही उसके समस्त आनन्दोंकी केन्द्र-स्वरूपा श्रीमती तरङ्गिणी खड़ी-खड़ी कुछ कह रही हैं। हाय! पापीयसीका प्रसङ्ग उठाकर

हमें लेखनीको कलङ्कित करना पड़ रहा है। समाजने जिसको घृणाके साथ त्याग दिया है, जिसके नामका केवल लज्जा और निन्दाके साथ सम्बन्ध है, जिसका परिचय केवल अपरिहार्य्य कलङ्कको ही घोषित करता है, जिसका चरित्र केवल अपरिसीम पापका परिचायक है, उसका प्रसङ्ग लिखनेमें भी कष्ट मालूम होता है। लेकिन संसारमें व्यर्थ कुछ भी नहीं है—पापकी भी सार्थकता है; क्योंकि विना पापके पुण्यकी महिमाका प्रचारही नहीं होता। अन्धकारके बिना प्रकाशका गौरव नहीं प्रकट होता। विना दुःखके सुखकी मर्य्यादा नहीं मालूम होती। संसारमें परस्पर-विरोधी व्यापार पास-ही-पास चलते हैं और एक दूसरेके संघर्षणमें जो दुर्बल, निन्दित, घृणार्ह, अनादृत और त्याज्य ठहरता है, वह उसी समय नष्ट हो जाता है अथवा अपनी लघुता समझकर मस्तक नीचा करके प्रतिपक्षकी महिमा और गौरवको ज्वलन्त भावसे व्यक्त कर देता है। अतएव जिस क्षेत्रमें विराजमोहिनीकी उपस्थिति है, उसी क्षेत्रमें तरङ्गिणीका आविर्भाव असम्भव, असङ्गत या अनर्थक नहीं है। इसलिये जब तरङ्गिणीके दर्शन हुए हैं, तब उसका प्रसङ्ग छोड़ देनेसे क्योंकर काम चलेगा?

तरङ्गिणी अपने जीवनका तीसवाँ वर्ष बिता चुकी है। उसका शरीर ख़ूब मोटा और रङ्ग साँवला है। नेत्र बड़े, कटाक्ष चञ्चल और मुसकराहट-भरा है। वह देखनेसे ही बुद्धिमती मालूम होती है। यदि बुद्धिहीन कालिदास ऐसी विलासिनीके हाथ-

का खिलौना या ख़रीदा हुआ ग़ुलाम बन गया तो इसमें विचित्रताही क्या है? कालिदास जानता है, कि तरङ्गिणी जैसी रूपसी, वुद्धिमती, साधु-स्वभावा, उदार-हृदया, गुण-समन्विता और नवयौवना नारी संसारभरमें और कहीं नहीं है। कहना वृथा है, कि कालिदास तरङ्गिणीका पूरा भक्त है। तरङ्गिणी, चाहे तब कालिदासको नचा सकती है, हँसा सकती है और रुला भी सकती है। कालिदास तरङ्गिणीका पालतू बन्दर है। कालिदास तरङ्गिणीके मनबहलावकी कठपुतली है। तरङ्गिणी जिस बातको धर्म्म बतलाती है, उसे कालिदास वेदव्यासकी वाणीकी अपेक्षा अधिक सारवान् समझकर उसीका अनुकरण करता है। तरङ्गिणी जब हँसती है, तब कालिदास बिना कारण समझेही हो-हो करके हँस पड़ता है। सारांश यह, कि प्रायः सभी विषयोंमें सौभाग्यवान् कालिदास इस सीता, सावित्री, दमयन्ती आदिकी अपेक्षा अधिक धर्म्मशीला कामिनीका मुखापेक्षी होकर चलता है। किन्तु वास्तवमें तरङ्गिणी कैसी स्त्री है, यदि इस बारेमें पाठक हमारा मत सुनना चाहें, तो हम, कालिदासके क्रोध और दूसरे किसीके कुछ कहने-सुननेकी कुछ परवा न कर स्पष्ट शब्दोंमें कह डालेंगे, कि तरङ्गिणी महापिशाचिनी है। इसके प्रमाणमें हमें जो कुछ विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ है, वह आपके सामने रखे देते हैं।

जिस समय कालिदास मकानसे निकलकर दूकान चला

जाता है, उस समय धनुआ तेली तरङ्गिणीके पास प्रायः प्रति-दिन आया-जाया करता है और तरङ्गिणी उसके साथ तीन-चार घण्टेतक न मालूम क्या करती है। कालिदास इस व्यक्तिके आवागमनकी बात जानता है। लोगोंका विश्वास है, कि वह धर्म्मशीला तरङ्गिणीका प्रेमिक है। लेकिन कालिदास तरङ्गिणीके कथनानुसार उसे अपनी प्रेयसीका 'धर्म्मका भाई' समझता है। इसीसे कालिदासकी नज़रोंमें धनुआकी इज़्ज़त और दोनोंका गाढ़ा दोस्ताना है। धनुआका कालिदासके घरमें प्रवेश और आहार-व्यवहार खुले ख़ज़ाने चलता है। वह तरङ्गिणीका धर्म्म-भ्राता और कालिदासका परम आत्मीय है। तरङ्गिणी बहुतसे छल कर नये वर्त्तन, नयी सेज और बहुतेरे नये सामान ख़रीदती है; लेकिन व्यवहारके समय कालिदासको पुराने सामानही मिलते हैं। लोग कहते हैं, कि तरङ्गिणी हमेशा ही अपनी मौसीका घर भरा करती है। मालूम नहीं, यह बात कालिदास भी जानता है या नहीं। कालिदासको गत कार्त्तिकके महीनेमें भयङ्कर ज्वर होगया था। उठनेतककी सामर्थ्य न रही थी, इसीसे खाना और पायख़ाना दोनों एकही स्थानपर होते थे। उस समय तरङ्गिणी लापता रहती थी। अथवा कभी धोखेसे आ भी जाती, तो मुँहमें कपड़ा दबाये तत्काल ही लौट जाती थी। कहती, कि इनका कष्ट देखकर मेरी छाती फटती है, इसीसे इस घरमें नहीं आया जाता। धनुआके उन दिनों पौबारह थे! वह नित्य उसके पास पड़ा

रहता था। वह कहती, "विपत्तिके दिनोंमें अपना कोई आदमी पास न रहनेसे कैसे चल सकता है?"

कालिदास दोपहरके बारह बजे स्नान-भोजन करता है। लेकिन तरङ्गिणी नौ बजेही नहाकर भरपेट ताज़ी इमरतियाँ उड़ा जाती है और जब कालिदास आता तो कहती है, कि—नहानेके बाद जलपान न करनेसे पित्त उभरने लगता है, लेकिन न मालूम क्यों, मेरा मन तुम्हारे घर आकर स्नान-भोजन करनेके पहले अन्नका एक किनका भी मुँहमें डालनेकी गवाही नहीं देता।" तरङ्गिणी पाँच भरका गहना गढ़वाकर कालिदाससे ग्यारह भरके दाम वसूल करती है, नये-नये धोतियोंके जोड़े ख़रीदवाकर पतिदेवके अनजानतेमें उन्हें बेंचकर अण्टीमें पैसे रखती है—इत्यादि तरह-तरहकी बातें लोग उसके विषयमें कहा करते हैं। बस, इसीसे आप लोगोंको जो कुछ समझना हो, समझ जायें। हम अधिक कुछ न कहेंगे; क्योंकि तरङ्गिणी बड़ी झगड़ालू है, उससे झगड़ा करनेमें कौन पार पायेगा?

कालिदासके इस विलास-मन्दिरमें—तरङ्गिणीके लीला-निकेतनमें—आज चार दिन हुए, कि विराजमोहिनीने आश्रय लिया है। यदु और श्याम उसे साथ लाकर यहाँ पहुँचा गये हैं एवं कालिदासने अनेक विवेचनाओंके बाद अर्थात् तरङ्गिणीकी अनुमति लेकर, उसे मकानमें रहनेकी आज्ञा दे दी है। यदु और श्याम समझते हैं, कि उनके ही आग्रहसे चक्रवर्ती महाशयने स्त्रीको घरमें रखना स्वीकार किया है; इसलिये उनकी

प्रसन्नताकी सीमा नहीं है। उधर कालिदासने सोचा, "काम बुरा नहीं है। दस आदमी केवल इसी बारेमें मुझे बुरा कहते थे। क्या डर है? दो रोटियाँ वह भी पड़ी-पड़ी खालेगी।" लेकिन वास्तवमें पूछो, तो विराजमोहिनीको चक्रवर्त्तीके घरमें स्थान दिलवानेका मूल कारण तरङ्गिणीही थी। उसने इस बारेमें खूब नाम पाया। जिस समय विराजमोहिनी आयी, उस समय कुलटा-भक्त कालिदास अपनी प्रेयसीसे उचितानुचित पूछनेके लिये उसके पास गया। तरङ्गिणीने कहा—"आयी है तो कुछ डर नहीं, दुविधा मत करो—उसे आदरसे गाड़ीसे उतार लाओ।" तरङ्गिणीने प्रसन्नमनसे आज्ञा दे दी। कालिदास सुनकर अवाक् होगया। लेकिन कुछ कहा नहीं; सोचा,—"जब स्वयं तरङ्गिणीने आज्ञा दे दी है, तब उसे लानाही ठीक है।" विराज-मोहिनीको लानेके लिये कालिदासको नहीं जाना पड़ा। तर-ङ्गिणीकी दासीने जाकर कहा—"आ री भलेमानसकी लड़की! घरके भीतर आ।" विराजमोहिनीको तो मानों स्वर्ग मिल गया। उसे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी, कि वह इतने सहजमें पतिके घरमें आश्रय पाजायेगी। उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उसने स्वामीको एकबार देखनेके लिये मुँह ऊपर उठाया, लेकिन वे दीख न पड़े,—दीखा तरङ्गिणीका मुस्कराहट-भरा मुँह और उसके हिंसा-व्यञ्जक विशाल नेत्र! विराजने डरसे सिर नीचा कर लिया। वह मनहीमन पतिदेवके चरणोंमें प्रणाम कर घरमें चली गयी।

हमारे प्रिय पाठकोंको मालूम है, कि अनन्तदुःखिनी विराज-मोहिनी, एक दफ़ा पहले भी बड़ी-बड़ी आशाएँ करके स्वामीके घर आयी थी और लाञ्छित होकर चली गयी थी। वह घटना उसे विस्मृत नहीं हुई है। इसीलिये इसबार इतनी आसानीसे अभिलाषा पूर्ण होजानेके कारण उसने अपनेको असामान्या भाग्यवती एवं वर्त्तमान घटनाको अपने भाग्योदयकी पूर्व्व सूचना समझा। विधातः! दुःखिनीके इतने कष्टोंके बाद मिले हुए इस मनोरथ-दुर्गको अब कहीं मत ढा देना!

इस समय तरङ्गिणीने इतनी उदारताका परिचय क्यों दिया; जानते हो? एक कुटिल-हृदय क्या कभी कोई महत् कार्य्य कर सकता है? तरङ्गिणी बड़ी चालाक है; अपने बहुतसे लाभ देखकर ही उसने यह काम किया है। असल बात तो यह है, कि दस-पन्द्रह दिनोंसे उसकी रसोईदारिन लड़-झगड़कर कहीं चली गयी है। इन दिनों स्वयं अपने हाथों रसोई पकानेके कारण उसका मक्खन जैसा शरीर गला जाता है। उसने सोचा,—"चलो, अभी कुछ दिन रसोई तो पकाये, बादको जैसा होगा, देखा जायेगा। अच्छा हुआ, तनख्वाह बची। दोनों बेला खालेगी, बस! फिर कालिदास तो हाथका पुतला है, फन्दा तोड़कर भागना उसके बापकी ताक़तसे भी बाहर है। जब कभी ऐसा लक्षण दिखाई देगा, तभी मैं सर्व्वनाश कर डालूँगी।" यही सब सोच-विचार कर उसने स्थिर किया, कि भलमनसाहत दिखाने और कालिदासके पैरोंमें बँधी रस्सीको खूब मज़बूत कर देनेके

लिये ऐसा अच्छा सुयोग कभी हाथ न आयेगा। इसलिये विराजमोहिनीको आश्रय मिल गया। तरङ्गिणीने एक ढेलेसे दो पंछी मारे।

विराजमोहिनी बड़े आनन्दसे रसोईदारिन बनी। दरिद्रकी कन्या होनेके कारण वह घरके काम-धन्धोंमें ख़ूब होशियार थी। अतएव वह स्वच्छन्दताके साथ रन्धन आदि कार्य्य करती है। स्वामीके घरमें स्थान और अन्न पाकर उसे बड़ा आनन्द मिला। उसे रात बितानेके लिये नीचेके घरकी एक कोठरी मिली। पतिदेवके दर्शन भी होने लगे, क्योंकि भोजनका थाल उसे स्वयं पहुँचाना पड़ता है। उसके लिये इतनाही स्वर्ग-सुख है! वह इसीमें हमेशा रहना चाहती है। लेकिन हम इस चाहपर विश्वास नहीं करते; क्योंकि मनुष्यका चित्त उत्तरोत्तर अधिक सुखके लिये दिनपर दिन व्याकुल हुआ करता है। बैठनेकी जगह पा जानेपर सभीका जी सोनेको चाहता है। विराज-मोहिनीको भी ऐसे ही एक लोभने आ घेरा। लोभ और कुछ नहीं, केवल स्वामीसे दो-दो बातें करनेका। किस समय, किस तरह स्वामीसे बातचीत हो, वह इसीकी उपाय-चिन्ता करने लगी। लेकिन तरङ्गिणी यमदूतोंसे भी अधिक भयङ्कर है। हालाँ कि, अभीतक तरङ्गिणीने किसी प्रकारका दुर्व्यवहार नहीं किया, किसी तरहके खोटे वचन नहीं कहे, तोभी हमारी विराज उसकी सूरत देखतेही डरसे पत्थर बन जाती है—जिधर तरङ्गिणी होती है, उधर पैर रखते उसे भय मालूम होता है।

तरङ्गिणी बाघ नहीं, भालू नहीं, तो फिर क्यों इतना डर लगता है? मालूम होता है, भय और भक्ति, स्नेह और विरक्ति—ये सब भाव सदा बाहरी व्यवहारपर ही निर्भर नहीं। हृदयका भाव प्रायः इन समस्त आकर्षण-विकर्षणोंको उत्पन्न करनेका कारण है। यह तरङ्गिणी-रूपिणी बाघिनी हर समय उसके स्वामीके पास रहती है, इसलिये बातें करना तो एक ओर, डरके मारे उसके सामने उसका सिर चकराने लगता है। फिर ऐसी अवस्थामें पतिके साथ वार्त्तालाप किस तरह सम्भव है?

आज अकस्मात् विराजको सौभाग्यसे बात करनेका एक अवसर मिला था। जब वह स्वामीको भोजन देने गयी थी, उस समय तरङ्गिणी वहाँपर मौजूद न थी। वह घी लेनेके लिये भाण्डारमें गयी थी, इसलिये सुविश्वासी कालिदास उस समय पहरेसे शून्य था। इससे बढ़कर अच्छा अवसर और कौनसा हो सकता था? विराज भोजनकी थाली हाथपर लिये हुई स्वामीके पास गयी। थाली रखकर उसने हाथ धोये। पाँव थर-थर काँपने लगे। पतिदेवसे क्या कहे? उसे तो कभी बातें करनेका काम नहीं पड़ा। दुःखिनी गलेमें कपड़ा डालकर काँपती-काँपती चुपकेसे प्रणाम कर बोली,—"मैं आपको प्रणाम करती हूँ, मुझे भी चरणोंकी धूलि देकर कृतार्थ कीजिये।"

अभागे कालिदासने कुछ जवाब नहीं दिया। निर्बोध होनेपर भी वह समझ गया, कि उसकी स्त्रीका कण्ठ-स्वर कम्पित

हो रहा है। तो क्या उस कम्पित स्वरने उसके हृदयपर आघात किया ? इस बातको भगवान् ही जानें, पर उसने मुँह उठाकर विराजकी तरफ़ एकबार देखा अवश्य। देखा, कि अश्रुभारावनत-नयना देव-सुन्दरी उसके सामने खड़ी है। उसने मुँहसे कुछ नहीं कहा—मालूम होता है, कि कहनेकी उसे सामर्थ्यही न थी ; लेकिन उसने पाँव बढ़ा दिया। विराजने हाथमें आँचल लेकर चरण पोंछे और आँचल मस्तकसे लगा लिया। उसी समय वहाँपर तरङ्गिणी आगयी। विराज डरके मारे काँपती-काँपती चोरकी भाँति दूसरे दरवाज़ेसे भाग गयी। हाय! आज वह अपने धनकी आप ही चोर है! कालिदास भी भयसे पत्थर हो गया। सच है, चरित्र-हीनमें कभी साहस नहीं होता।

इस क्षुद्र घटनाका बाल बराबर हाल भी तरङ्गिणीसे छिपा नहीं था ; उसने किवाड़ोंकी सन्धसे सब कुछ देख लिया था और विराजमोहिनीके इस दुष्कर्म्मका महाभयङ्कर दण्ड देनेका उसने तत्काल निश्चय कर लिया था। विराज! आजन्म-दुःखिनी! क्यों तुम इस दुराशा-सागरमें कूदीं ? क्यों तुमने अपने पाँवोंमें आप कुल्हाड़ी मारी ?

तरङ्गिणी घरके अन्दर आ गयी ; पर उसने बड़ी गहराईसे काम लिया, मानो इस बारेमें वह कुछ भी नहीं जानती! वह पहलेकी तरह हँस-हँसकर बातें करने लगी। कालिदासको यह चीज़, वह चीज़, खिलानेके लिये ज़िद करने लगी। ओछे लोगोंकी भाँति वह एक भी ओछी चाल नहीं चली।

कालिदास महासङ्कोचके साथ चोरोंकी भाँति झटपट खाना समाप्तकर पलङ्गपर जा बैठा। तरङ्गिणीने उसे पान दिया, दासी तम्बाकू भर लायी। कालिदास तम्बाकू पीते-पीते बोला, "आज तो मैं अभी दूकानपर चला जाऊँगा, दो-चार व्यापारी आये हुए हैं।"

व्यापारियोंके आनेकी बात कहाँतक ठीक है, सो कह नहीं सकते। लेकिन आज उसने जो भयानक दुष्कर्म्म कर डाला है—सम्भव है, कि उसके कारण कोई विशेष काण्ड हो जाये—यही सोचकर वह बेढब घबरा रहा था। इसीलिये तरङ्गिणीके सामनेसे चले जानेके लिये वह बहुत व्याकुल है। जो लोग अपराधी हुआ करते हैं, वे नितान्त जनहीन स्थानमें भी चोरी करके यही सोचते रहते हैं, कि "अब पकड़ा गया, अब जेल गया।" आज कालिदासकी भी वही हालत है। कालिदासने छिपे-चोरीसे अपनी विवाहिता वधूको पद-धूलि देकर महा दुष्कर्म्म किया है, इसीसे वह डर रहा है।

तरङ्गिणी मुँह कुछ भारी करके बोली,—"यह तो नहीं होगा। कल ही तुम्हारे सिरमें दर्द हुआ था; आज बाहर जानेकी कुछ ज़रूरत नहीं। दो-चार नहीं, अगर सौ व्यौपारी भी आये हों, तोभी मैं नहीं जाने दूँगी। क्यों इतना लालच करते हो? आढ़त न चले, मत चलने दो। दो पेट हैं; भीख माँगकर, पेड़के नीचे रहकर दिन काट देंगे।"

रे क्षुद्र कालिदास-पतङ्ग! इस उज्ज्वल सम्मोहनकारी

आलोकमें यदि तू ही न पड़ेगा तो और कौन पड़ने आयेगा ? लेकिन जब आगमें गिरा है, तब जलकर भस्म हो जाना ही तेरे भाग्यमें लिखा है। क्योंकि पतङ्गगण, आगके पास जानेसे मर जायेंगे, यह जानकर भी उसके चारों ओर घूमना नहीं छोड़ते। जब पूरे तौरसे जल-भुन जाते हैं, तभी उनकी वह्नि-तृष्णा बुझती है। अतएव हे तरङ्गिणी-रूपी आगमें कूदनेवाले कालिदास-रूपी पतङ्ग! जबतक तुम जलकर कबाब न बन जाओ, तबतक तरङ्गिणीरूपी पावक-शिखाके चारों ओर घूम-फिरकर मनकी इच्छा पूरी कर लो। लेकिन याद रखो, अधिक दिन नहीं जिओगे, क्योंकि इस लोभका अवश्यम्भावी पुरस्कार मृत्यु है! कालिदास! तुम तो मूर्ख हो, कितने ही सुपण्डित, सुविज्ञ, सुबोध, सुविचारक पतङ्ग भी इस तृष्णाका संवरण नहीं कर सके; तब तुम अकेलेको क्यों दोष दें? घूमो-फिरो, कालिदास! इस उज्ज्वल आलोकके चारो तरफ़ घूमो-फिरो, इस प्रिय-दर्शन पावकके चारों ओर भुनभुनाते हुए भ्रमण करो—इस उन्मादकारी यमराजको परम सुखका निकेतन समझकर उसमें कूदनेके निमित्त दौड़ो!

तरङ्गिणीकी बात सुनकर कालिदासके मानों दममें दम आगया। उसने समझा, कि उसके अक्षम्य अपराधकी बात तरङ्गिणीको नहीं मालूम हो सकी है। यदि मालूम हो जाती, तो ऐसी सुख-पूर्ण, प्रेमपूर्ण और आदर-भरी बातें उसके मुँहसे न निकलतीं; उसका स्वर बदल जाता। कालिदास

बाल-बाल बच गया। उसे यह बात तो भली भाँति विदित थी, कि आजकी कारस्वाई अगर किसी तरह तरङ्गिणीको मालूम हो जाती, तो अभी डिगरी धरी थी। अदालतमें कुसूर-माफ़ी-की सुनवाई भी बड़ी मुश्किलोंसे होती; क्योंकि प्रेममयी, आनन्दमयी, धर्म्मशीला और उदारहृदया तरङ्गिणीके हृदयमें किसी प्रकारकी वेदना हो जाना बड़ा भारी पाप है। इसमें क्या सन्देह है? मूरख कालिदासने उलटा समझा। परन्तु कितने बुद्धिमान् भी ऐसा ही उलटा समझ लेते हैं। कालिदास सिड़ियोंकी तरह बोला,—"अच्छा, अगर तुम नाराज़ होती हो तो लो, मैं कहीं नहीं जाता। कई व्यापारियोंको विदा करना है, पर जब तुम दूकान जाने दोगी तभी करूँगा।"

तरङ्गिणीके अव्यर्थ निशानेमें फँसकर चौकड़ी भरनेवाला हिरन भाग न सका। तरङ्गिणी मन ही मन खूब हँसी। प्रकाश्यमें भी तनिक हँसती हुई बोली,—"थोड़ी देर सो रहो, मैं तुम्हें पङ्खा करूँगी। कहीं ऐसा न हो, कि कलकी तरह सिरमें फिर दर्द होने लगे। थोड़ी देर आराम करनेके बाद, जहाँ जी चाहे, चले जाना।"

कालिदास हुक्का रखकर सो गया। तरङ्गिणी धीरे-धीरे पङ्खा झलती हुई कहने लगी,—"तुम्हारी बहू बनकर जो लुगाई आयी हुई है, उसके लिये तुमने क्या बन्दोबस्त सोचा है?"

बाप रे! बहूकी बात क्यों उठाती है? कालिदासका कलेजा धक्-धक् करने लगा। बोला,—"बन्दोबस्त—बन्दोबस्त—

जैसा कहोगी, वैसाही कर दिया जायेगा। तुमने ही तो उसे मकानमें टिकाया है?"

तरङ्गिणी बोली,—"टिकाया तो कुछ बुरा थोड़े ही किया? मुनासिब भी तो यही था? लेकिन जो कुछ सोचा था, वह हुआ नहीं। उसे खाने-पीनेका ख़र्च तो तुम्हें देना ही पड़ेगा, यहाँ बैठा-कर दो, चाहे उसके बापके घर भेजकर दो; एक ही बात है।"

यह कहकर उसने कालिदासपर एक रस-पूर्ण कटाक्ष-बाण छोड़ा। मूढ़ कालिदास डरता-डरता बोला,—"तुम्हारी क्या राय है?"

तरङ्गिणी बोली,—"मेरी राय क्या होगी? वह तुम्हारी स्त्री है—मैं हज़ार हूँ तोभी परायी हूँ। मैं इस बारेमें क्या कहूँ? जैसा तुम्हारे मन भाये, वैसा करो।"

कालिदास बड़ी विपद्में पड़ा। तरङ्गिणी क्या चाहती है, इसे वह स्थिर न कर सका। बोला,—"तो अगर तुम कहो, तो मैं आज ही उसे यहाँसे रवानः कर दूँ?"

तरङ्गिणी यही चाहती थी; लेकिन ऊपरी भलमनसाहत दिखानेमें कोई कसर थोड़े रखता है? बोली,—"राम-राम! यह कौन कहता है? लेकिन वह बात तुम्हारे सामने कहनेकी नहीं, पर अगर नहीं कहती हूँ, तो पाप होता है। उसका चालचलन जैसा सोचा था, वैसा नहीं निकला।"

कालिदास उठकर बैठ गया। बोला,—"क्या कहा? जैसा सोचा था, वैसा नहीं निकला?"

४

तरङ्गिणी बोली,—"तुम्हें उन बातोंके जाननेकी कुछ ज़रूरत नहीं। उसकी आदत अच्छी नहीं है। मैं नीच कुलमें पैदा ज़रूर हुई हूँ, पर भगवान्‌की दयासे अभीतक मेरी कुमति नहीं हुई। तुम्हीं मेरे ज्ञान-ध्यान हो; इसलिये बुरी बात देखते ही मेरा जी जलने लगता है। मैं बुरे आदमियोंके पास एक छिनको भी नहीं रहना चाहती। इसीसे कहती—"

कालिदासने पूछा,—"बात क्या है? क्या इतने दिनोंमें ही तुमने उसकी कोई खुटाई देख ली? तब तो वह बड़ी बदमाश औरत है! मैं उसे कभी अपने घरमें नहीं रहने दूँगा।"

तरङ्गिणी बोली,—"ना-ना—इतना गुस्सा मत करो। मुझे बुरे लोगोंके साथ रहना एकबारगी पसन्द नहीं, इसलिये केवल इतना बन्दोबस्त ज़रूर कर दो, कि वह और मैं एक जगह न रहूँ। वह यहाँ आयी है तो खुशीसे रहे। मुझे किसी और मकानमें भेज दो। अगर उसे खाना-पीना न दोगे तो लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे। यह भी तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा?"

कालिदास बोला,—"वाह! खूब कहा! लोगोंकी निन्दाके डरसे क्या मैं घरमें काला साँप पालूंगा? अभी हरामज़ादीको जूते मारकर निकाले देता हूँ।"

पाठकोंको याद रखना आवश्यक है, कि विराजमोहिनीके ऊपर तरङ्गिणी द्वारा कैसा कलङ्क लगाया गया है! कालिदास नहीं जानता; जाननेकी कुछ ज़रूरत भी नहीं है, क्योंकि तरङ्गिणीके वचन ब्रह्मवाक्यसे कम नहीं हैं। इसीलिये वह

हाथमें जूता लेकर स्त्रीको पीटने और घरसे निकालनेके लिये तैयार हो गया। तरङ्गिणीने रोककर कहा,—"छिः छिः! इतने उतावले क्यों हुए जाते हो? पहले सब बातें सुन लो, उसके बाद जो जीमें आवे, वह करना।"

कालिदास सिर नीचा करके बैठ गया। तरङ्गिणी बोली, "तुमने कभी धनूके साथ आनेवाले कलुआ तेलीको भी देखा है? मैं कभी उसके सामने नहीं जाती, वह बहुत ख़राब आदमी है। जब वह आता है तब धनुआकी बाटमें बाहर ही खड़ा रहता है। हमारे घरमें नहीं आने पाता। तुम्हारी बहू उसी कलुआके साथ आज फुसफुस करके बातें कर रही थी। उन्हें यह नहीं मालूम था, कि मैं पासहीके घरमें खड़ी हुई उनकी बातें सुन रही हूँ। बात बड़ी लज्जाकी थी, उसे याद करते ही मेरा सारा बदन जलने लगता है। उसे मैं तुम्हें न बताऊँगी। कल सन्ध्याके बाद वह फिर आयेगा। तुम्हारी बहू उसे दरवाज़ा खोलकर घरमें बुलायेगी। उस समय आपही मालूम हो जायेगा।"

कालिदास बोला,—"यह क्या कह रही हो? अगर ऐसा है, तब तो उसे दिनभरके लिये भी घरमें रहने देना ठीक नहीं। मैं उसे अभी निकालता हूँ; दूसरा काम तभी करूँगा, जब वह यहाँसे चली जायेगी।"

तरङ्गिणी बोली,—"अभी ऐसा मत कहो। मैं औरत हूँ, मेरे सुनने और समझनेमें ग़लती हो सकती है। तुम मर्द हो,

अपनी आँखोंसे बिना देखे कोई काम न कर बैठो। कल रातका हाल देखकर जो जीमें आये, सो करना।"

कालिदास चुपचाप सिर नीचा किये बैठा रहा। तरङ्गिणी उसको धीरे-धीरे हवा करने लगी।

पांचवां परिच्छेद।

सतीका अपमान।

चतुरा तरङ्गिणी चारों ओरसे बन्दोबस्त किये बिना कोई काम नहीं करती। इस समय वह जो काम करने चली है, उसे बिना सब तरहसे दुरुस्त किये छोड़नेवाली नहीं है।

विराजमोहिनीने साहस कर बौनी होते हुए भी चाँद छूना चाहा है, तरङ्गिणीकी लाख़िराज ज़मीनपर अपना अधिकार जमानेकी इच्छा की है, इसलिये कदापि क्षमा नहीं की जा सकती। मुँहसे तरङ्गिणी भलेही अपनी भलमनसाहत दिखाये, लेकिन भीतर तो उसने विराजमोहिनीका सर्व्वनाश करनेका सङ्कल्प सा कर लिया है। दश दिन बाद स्वामी उसको उचित आश्रय दे देता अथवा उसके अपराधपर सन्देह न कर उसपर प्रसन्न होता और दूसरे मकानमें रख उसके भोजनाच्छादनकी व्यवस्था कर देता। लेकिन अब तरङ्गिणी यह सब कुछ भी नहीं होने देगी। विराजके तिलभर अपराधके (उसके मतानुसार तो अपराध ही है) बदलेमें तरङ्गिणी, बिना

अपरिमित दण्ड दिये कभी न मानेगी। यही उसका सिर कहूल्य है।

आजन्म-सुख-विहीना विराज! तुम सदा निरपराध हो, यह बात मनुष्य भले ही न जानते हों, पर स्वर्गके देवता अवश्य जानते हैं। धर्म्मकी पुस्तकोंमें यह बात स्वर्णाक्षरोंमें लिखी हुई है। वत्से! दुःखके प्रबल पीड़नसे घबराना मत; इस जगत्में छातीके ऊपर दुःख-दारिद्र्यका आक्रमण सहनाही महत्व है; यह सहिष्णुता कभी निष्फल नहीं जाती। पुण्य-पवित्रे! तुमने जिस हृदय-बलसे अबतक असहनीय क्लेशोंसे पीड़ित होकर भी अपने धर्म्म और सत्यताको अक्षुण्ण रखा है, उस धर्म्मको कभी न छोड़ना, उस बलके सहायक रहनेसे जगत्की समस्त विपत्तियोंको चींटीके काटनेकी भाँति कुछ न समझकर तुम अवहेलाके साथ उन सबको उपेक्षा कर सकती हो। दुःखिनी मुग्धे! सावधान! एक महाविकट विपत्ति मुँह फैलाकर तुम्हें निगल जानेके लिये दौड़ी आ रही है। तुम धैर्य्य और सहिष्णुता, धर्म्म और सत्यताको अपने सामने रखकर साहसके साथ डटी रहना। डरना मत। अनाथ-नाथ, विपन्न-बान्धव, नारायण सदासे धार्म्मिकोंके सहायक रहे हैं। धर्म्मकी पवित्र ज्योति तुम्हारी चारों ओरसे रक्षा करेगी। फिर तो यमराजकी भी सामर्थ्य नहीं, जो तुम्हारे पास आयें।

कालिदास थोड़ी देर विश्राम कर दूकान चला गया। उधर घसू बाबूने आकर घरके मालिकका अभाव पूरा किया।

धन्नू बाबू उर्फ़ धनुआ तेली बड़ा चिलल्ला, विकट देहका आदमी था। उसके सिरपर अङ्गरेज़ी उतार-चढ़ावके बाल और बदनमें एक बेल-लगी सुन्दर कमीज़ थी। कमीज़के छातीके ऊपरवाले हिस्सेमें सुनहरी चेन शोभा दे रही थी। काले किनारेकी धोती और वार्निशके जूते तो और भी भले मालूम होते थे। चेहरेसे शरारत टपक रही थी। धन्नूबाबू कामकाज कुछ नहीं करते, केवल छैल-चिकनिया बने आवारागर्दी किया करते हैं। लेकिन तरङ्गिणी-के धर्म्म-भाई होनेके कारण उन्हें खाने-पहनने या बाबूगिरीमें कुछ कष्ट नहीं मालूम होता। हीरेकी परख जौहरीही जानता है। इस कहावतके अनुसार धन्नू बाबूके ऊपर तरङ्गिणीकी इतनी कृपा होनेमें कुछ आश्चर्य्य नहीं।

तरङ्गिणी और धनुआमें क्या-क्या बातें हुईं, यह हम न बता सकेंगे; क्योंकि उन्हें लिखकर हम अपने पाठकोंका मन बिगाड़ना नहीं चाहते। उन भ्रष्ट बातोंके समाप्त हो जानेपर तरङ्गिणीने कहा,—"मैं बड़ी असमञ्जसमें पड़ी हुई हूँ। तुम्हें उसके मिटानेकी चेष्टा अवश्य करनी पड़ेगी। अगर न करोगे तो तुम और मैं, दोनों ही दर-दर मारे फिरेंगे। सारे सुख और सब गुलछर्रे धूलमें मिल जायँगे। समझे?"

इतना कहकर तरङ्गिणीने एक-एक करके सारी बातें उससे कह सुनायीं। इसके बाद उसने अपने रचे हुए षड्यन्त्रको भी सुना दिया। सारी बातें सुनकर धनुआने उसकी बुद्धिकी बड़ी बड़ाई की और कहा,—"इतनीसी बातके लिये अधीर क्यों होती

हो ? मैं कलुआको सारी बातें समझाकर ठीक कर दूँगा। ठीक समयपर काम हो जायेगा, कुछ सोच मत करो।"

यह कह धन्नूबाबू चले गये। तरङ्गिणी थोड़ी हलकी हुई। विराजमोहिनीके सर्व्वनाश-साधनके लिये जाल विछा दिया गया।

अगले दिन, तीसरे पहर, तरङ्गिणीने कुछ सवेरे ही भोजन तैयार करनेका हुक्म जारी किया। कहा गया, कि मालिकका शरीर अच्छा नहीं है। वे साँझ होतेही घर चले आवेंगे और जल्दीही भोजन कर लेंगे। हुक्मकी तामील हुई।

विराज, मालिकके लिये भोजनकी सामग्री ठीक कर ऊपर रख आयी और तरङ्गिणीसे 'कुछ चाहिये तो नहीं ?' यह पूछकर अपने सोनेके घरमें चली गयी। रातके नौ वजे कालिदास दूकान वन्द कर घर लौटा। तरङ्गिणीने घरके किवाड़ खोल दिये। किवाड़ खोलनेका काम तरङ्गिणीने अपने हिस्सेमेंही रखा था। सवेरे अन्नके केवल दोही गस्से खाकर बाबू दूकान गये हैं, अबतक नहीं आये—अतएव तरङ्गिणी वेहद घवरा रही थी। बाबू साहबके घरमें आ जानेपर तरङ्गिणीने दरवाज़ा वन्द करते समय जैसा शब्द होता है, वैसा ही शब्द किया। लेकिन वास्तवमें वह वन्द हुआ या नहीं, यह हम नहीं कह सकते।

तरङ्गिणी कालिदासका हाथ पकड़े हँसती इतराती हुई ऊपर आयी। कालिदासने पूछा,—"क्या ख़बर है ?"

तरङ्गिणी अनजानसी बनकर बोली,—"कैसी ख़बर ?"

कालिदासने कहा,—"उसी पापिनीकी।"

तरङ्गिणी मानो चौंक उठी, बोली,—"हाँ, बहूजीके बारेमें पूछते हो? उनकी ख़बर मैं क्या जानूँ? अभीतक तो कुछ नयी बात नहीं देखी। इसीलिये तो भाई! मैंने तुम्हें बुलाया था, कि मैं स्त्रीकी जाति ठहरी, मेरे सोचने-समझनेमें भूल हो सकती है। तुम मर्द-मानुस हो, अच्छी तरह देख-भालकर कोई काम करोगे। यही बात मैंने पहले भी कही थी, अब भी कहती हूँ।"

बलिहारी है! मानो दूधका दूध, पानीका पानी कर दिखाया! कालिदास बोला,—"अब कितने बजे हैं?"

"कोई दस बजे होंगे। अच्छा, पहले खा-पी लो। ये बातें तो फिर भी देखी जा सकती हैं। भली बात कही! तुम तो उसीके सोचके मारे आधे हो चले। भाड़में जायें ऐसी बातें? पहले खा लो, तो तुम्हारी कोई बात सुनूँगी, नहीं तो किसी बातका जवाब न दूँगी।"

कालिदास भोजन करने बैठ गये। उनकी भोजन-समाप्तिके साथही साथ बाहरके दरवाज़ेको किसीने धीरेसे खटखटाया। कालिदास उत्साह सहित बोल उठे,—"तरङ्गिणी! यह देखो, किसीने दर्वाज़ा खोला!"

तरङ्गिणी मानो कुछ नहीं जानती-सुनती, ऐसा मुँह बनाये बोली,—"दरवाज़ा तो मैं तुम्हारे सामने ही बन्द कर आयी थी। इतनी रातको किवाड़ कौन खोलेगा?"

कालिदास बोला,—"मालूम होता है, कलुआ तेली आ गया। शायद तुम्हारी बड़े आदरकी रसोई-दारिनने दरवाज़ा खोलकर अपने रसिक नागरको घरमें बुला लिया।"

तरङ्गिणीने विस्मयके साथ कहा,—"हाँ, मालूम तो ऐसाही होता है। पर क्या वह इतनी थोड़ी रात गये आयेगा? अभी तो तुम खाकर भी नहीं निबटे, सोना तो दरकिनार! पर आदमीके मनको कौन जाने? लेकिन अभी थोड़े कुछ हो सकता है?"

कालिदास बोला,—"बस यही बात है, और कोई बात हो नहीं सकती। मुझे आदमीके पैरोंकी धमक मालूम पड़ती है। तुम यहीं रहना, मैं जाता हूँ।"

तरङ्गिण सती-प्रधान है। वह विस्मितसी होकर बोली,—"छिः छिः! कैसी घिनौनी बात है? कहीं तुम्हें भ्रम तो नहीं हुआ? ऐसा हो नहीं सकता। अच्छा, तुम यहीं रहो, मैं जाकर देखती हूँ। यह लो, तुम सच ही कह रहे थे। ज़रूर कोई घरमें आया! मुझे भी पाँवोंकी आहट सुनाई देती है।"

उस समय कालिदास भले-बुरेके ज्ञानसे शून्य होकर आसनसे उठ बैठा और शेरकी तरह दहाड़ता हुआ जल्दी-जल्दी सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगा। ऐसे समयमें अति सावधानी और धीरेसे जाकर कान-आँखोंका विवाद-भञ्जन कर देनाही बुद्धिमानोंकी दी हुई व्यवस्था है। लेकिन निर्बोध कालिदास जिसकी अक़्लके बूतेपर काम चलाता है, यदि वह यहाँपर मौजूद

न होती तो हम अवश्य उसे इस सम्बन्धमें सावधान कर देते, लेकिन क्या करें? असमर्थ हैं।

कालिदास विना सोचे-समझे अपनी चिल्लाहटसे आसमान सिरपर उठाता हुआ दौड़ा। साथमें तरङ्गिणी भी लालटेन लिये चली। कालिदासकी चिल्लाहट और पैरोंकी धमकके साथ तरङ्गिणीके गहनोंकी ध्वनि मिलकर अश्रुत-पूर्व झङ्कार पैदा कर रही थी।

तरङ्गिणी चक्रवर्त्तीका हाथ पकड़कर बोली,—"तुम्हें मैं वहाँ कदापि न जाने दूँगी। जो आदमी किसी कामको पूरा करनेकी इच्छासे आया हो, उसकी इच्छामें वाधा पड़नेसे वह सब कुछ कर सकता है।"

जिसमें चरित्र-बल नहीं, उसमें हृदय-बल भी नहीं होता। ऐसे आदमी मुश्किलसे दुश्मनका सामना करते हैं। कालिदास भी तरङ्गिणीकी बात सुनकर ठिठक गया। उसने देखा, कि विराजमोहिनीके घरका दरवाज़ा खुला हुआ है; इसलिये निश्चय ही घरमें कोई आदमी है। उधर विराजमोहिनी हमेशा घरके किवाड़ खुले छोड़कर सोया करती थी; लेकिन कालिदास इस बातको नहीं जानता था। उसने और भी देखा, कि कुर्त्ता पहने, मुँहपर कपड़ा डाले एक आदमी उसके घरसे निकलकर कालिदासके सामनेसे होकर भागा और सदर-दरवाज़ेसे जाकर सड़कपर जा पहुँचा। कालिदास उसी समय पागलोंकी भाँति अस्थिर हो उठा। विराजमोहिनीकी नींद

उचट गयी और न मालूम घरमें क्या नयी घटना हो गयी—यह सोचकर कोठरीसे बाहर निकल आयी। जिसको लक्ष्यकर यह तुमुल काण्ड हुआ था, वह उसके बारेमें सोलहो आने अज्ञात है! लेकिन इस बातको उसके, हमारे और दो-चार पाठकोंके सिवा और कौन जानता है?

कालिदासके चक्षु-कर्णोंका विवाद मिट गया। उसने कल विराजके विरुद्ध भयानक अफ़वाह सुनी थी, इस समय उस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। तरङ्गिणी क्या झूठ बोलने-वाली औरत है? राधा-कृष्ण! राधा-कृष्ण!!

विराजमोहिनीके बाहर जातेही पतिदेवने उसकी छातीमें ज़ोरसे एक लात मारी।

रे मूर्ख! अभागे कालिदास! रे हृदय-हीन भ्रान्त पशु! आज इस सती सावित्रीकी तूने जो अवमाननाकी है, इस पापके लिये तुझे निश्चयही महा भयानक प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। तेरा यह कुकर्म्म रात्रिके आवरणमें छिपा न रहेगा; सत्यकी मिथ्यामें परणिति न हो सकेगी; करोड़ करोड़ तरंगिणियोंके एकत्रित होनेपर भी तेरी रक्षा नहीं हो सकेगी। तू काच और काञ्चनका विचार नहीं करता, धर्म्म-अधर्म्मकी आलोचना नहीं करता; अनन्य-गति, आश्रय-हीना, सरल-प्रतिमा, धर्म्म-स्वरूपा सहधर्म्मिणीके शरीरमें पदाघात करनेकी तूने धृष्टता की है, एवं जिस पाप-पूर्ण, अश्राव्य, अनालोच्य, अचिन्तनीय अपराधका कलङ्क उसपर लगाया है, तेरे इस क्षमाके अयोग्य अपराधने

विश्व-नियन्ता न्याय-पुरुषके हृदयमें आघात किया है। तेरी यह लात धर्म्मके ही हृदयपर पड़ी है। रे मूढ़ ! तेरा अब कहीं ठिकाना नहीं है। अब तो तू तरंगिणीके चटुल चाटु-वाक्योंसे इस घटनाको भूल जायेगा, उसके विलोल कटाक्षोंसे तेरी अन्तर्ज्वाला नष्ट हो जायेगी, किन्तु रे अभागे कायर पुरुष ! धर्म्मरूपी भगवान् इस अपराधका एक अक्षर भी न भूलेगा। वहाँके जमा-खर्चमें कभी भूल नहीं होती। अतएव यथासमय तेरे इस अपराधके बदलेमें योग्य दण्ड-विधान होगा। उस समय तेरी क्या दशा होगी, जानता है ? मूढ़, भ्रान्त, दुर्भाग्य कालिदास ! अब भी सोच-समझकर काम कर। इस साध्वी, धर्म्ममयी, सुन्दरीको आदरके साथ हाथ पकड़कर घर ले जा। भाग्यहीन ! अब भी समय है, ऐसा सुयोग फिर कभी न पा सकेगा।

विराज, दारुण आघातसे गिर पड़ी ; किन्तु रोयी चिल्लायी नहीं। उसी समय उठकर दुःखिनीने क्रुद्ध स्वामीके सामनेसे दूर होकर कमरेमें जानेकी चेष्टा की, लेकिन कालिदास उसी समय बोल उठा, "मेरे छातीपर मौजूद रहते हुए भी ऐसा काम ! चाण्डालिनी कहींकी ! निकल मेरे घरसे।" यह कहकर वह लात, घूँसे, थप्पड़ और जूते मारता-मारता उस निष्पापा सुन्दरीको घरसे बाहर निकाल लाया। विराजके बड़ी चोट आयी, पर उसने चूँ भी नहीं की।

दरवाज़ेके पास आनेपर विराजने एक किवाड़का पल्ला

पकड़ लिया। उसका संकल्प था, कि मैं मर भलेही जाऊँ, पर बाहर न जाऊँगी। उसके लिये और आश्रयही कहाँ है? उसके लिये जगत्‌में सर्वत्र शून्य है। यह देखकर कालिदासने उसके बाल पकड़ लिये और ज़ोरसे खींचकर बाहर ले गया। अभागिनीके शरीरमें घाव होगये—अनेक स्थानोंसे खून निकलने लगा। वह रास्तेके ऊपर धूलि-शय्यापर पड़ी रही। किन्तु अब भी उसके मुँहसे बोल नहीं निकला। कालिदास महा क्रोधके साथ बोला,—"तू किस बिरतेपर मेरे मकानमें रहना चाहती है? जानती नहीं, अभागिनी! तेरे यारका आना-जाना, तेरे खेल-तमाशे मुझसे छिपे हुए नहीं हैं? भला मना, कि मैंने तेरे खूनसे हाथोंको रँगा नहीं, नहीं तो अभी यहींपर ढेर कर देता। जा, चली जा, अब कभी यहाँपर अपना काला मुँह न दिखाना। जाकर गङ्गामें डूब मर।"

इतनी देरमें विराजको अपने अपराधका थोड़ासा आभास मिला। लेकिन उसने सफ़ाई पेश न की, न आँखोंसे आँसूकी एक बूँदही गिरने दी। कालिदास फिर कहने लगा—"मुझे कलही यह मालूम होजाना चाहिये, कि तू अब इस दुनियामें नहीं है, जिसमें तेरा यह पापी मुँह फिर न दिखाई दे।"

यह कह कालिदास जल्दीसे चला गया। तरङ्गिणी विराजके पास जाकर कानमें कहने लगी—"स्वामीकी ज़रासी पैरकी धूल लेनेके लिये व्याकुल हो उठी थीं, अब तो पेट भरकर पैरकी

धूल लेली ? कूवड़ी होकर पीठके बल सोना चाहती है ? जानती नहीं मुझे, राँड़ ?"

हाय, हाय, पापीयसी ? तरङ्गिणी ! यह परम ज्ञान एक क्षणके लिये भी तेरे हृदयमें न उपजा, कि इस जीवनमें ही कर्म्मोंकी समाप्ति नहीं हो जाती ? कुलटे ! यदि ऐसा होता तो इस धूलि-धूसरिता, रुधिराक्त-कलेवरा, सतीके विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर तू उसका ऐसा सत्यानाश न करती—उसके न्याय और धर्म्म-सङ्गत अधिकारसे उसे वञ्चित कर इस प्रकार आनन्द-सम्भोग न करती और इस समय उसके कटे घावपर कठोर वाक्यरूपी नमक न छिड़कने लगती। तरङ्गिणी ! यह बात अच्छी तरहसे समझ रख, कि तूने अपने मनमें जो कुछ सोच रखा है, वह कभी न होगा। प्रकाशके बाद अन्धकारका नम्बर आता है, दिनके बाद रातकी बारी आती है। तेरा यह विश्वास, कि मेरे सब दिन आनन्दसे ही बीतेंगे, एक दिन चूर-चूर हो जायेगा, तेरे इस अहङ्कारपर धूल पड़ जायेगी, सौभाग्य-सूर्य्य अस्त होजायेगा और पाप-लीलाएँ समाप्त हो जायेंगी। जिस अहङ्कारसे तूने अपने हिताहित-ज्ञानको भी धूलमें मिला दिया है, कर्त्तव्याकर्त्तव्यको भुला दिया है, उसी अहङ्कारके कारण तुझे धूलमें पड़े-पड़े खूब रोना पड़ेगा। जिस साध्वीको तूने पैरोंसे कुचलवाया है, उसके ही युगल चरण तुझे अपनी आँखोंके जलसे धोने पड़ेंगे। एकदिन पिताकी गोदमें बैठनेकी इच्छा रखनेवाले ध्रुवको उसकी सौतेली मा,

अहङ्कारोन्मत्ता सुरुचिने महा मर्म्म-वेदना पहुँचायी थी, वाक्य बाणसे बालकका कोमल हृदय विद्ध कर दिया था। मर्म्म-पीड़ित, दुःखित शिशु उस समय अपनी इच्छाको इस प्रकार दलित होते देखकर अन्तमें दुर्बलोंके बल, अनाथोंके नाथ, भगवान् विष्णुकी शरणमें चला गया। श्रीहरिकी कृपासे आज उसी ध्रुवके गौरव-गीत सारी दुनिया गारही है और गायेगी। वह ध्रुव समय देवता है और वही गर्विता विमाता सुरुचि उस तिरस्कृता बालककी क्षमा और अनुकम्पाको पाकर सबसे ऊँचे आसनपर बैठी हुई है। अयि दुर्बल-हृदये पापिनी! छोटेसे भी छोटे, तिनकेसे भी हलके, नीचसे भी नीच कालिदासके अनुग्रहसे ही तू आज गर्विता और उन्मत्ता हो रही है। लेकिन तू यह नहीं जानती, कि इस मलिना, कातरा, कामिनीका सहायक कौन है? क्षुद्र कालिदास, जिसका ध्यान करनेका भी अधिकारी नहीं और तुझ जैसी कुलटा स्त्री, जिसका नाम लेनेतककी अधिकारिणी नहीं, वही नरकान्तकारी नारायण इस नारीका सहायक है। तुझ जैसे, तेरे कालिदास जैसे, क्षुद्र कीट इस देवीके, पद-विदलिता देव-सुन्दरीके चरण भी नहीं छू सकते।

तरङ्गिणी द्वारा किये हुए तीव्र तिरस्कारका विराजने कुछ भी प्रतिवाद न किया—एक बात भी मुँहसे न निकाली। उसका सिर घूमने लगा—उसे चारों ओर अँधेरा देख पड़ने लगा। वह सहसा मूर्च्छित हो गयी।

कितनी देरतक विराज इस प्रकार पड़ी रही, यह उसे नहीं

मालूम। जब उसे होश हुआ, तब वह उठकर बैठ गयी। अङ्गोंमें बड़ी शिथिलता थी। उसने सोचा, कि सोकर उठी हूँ, इसीसे ऐसा हो रहा है। ख़ूनसे कपड़े भीगे थे, उन्हें देख उसने सोचा, कि कहींसे मेरी देहपर पानी गिर पड़ा होगा, इसीसे कपड़े भीगे हैं। सामने मुँह उठाकर देखा, स्वामीके घरका दरवाज़ा बन्द है। अब क्या करना चाहिए? आजन्म-दुःखिनी विराजने थोड़ी देरतक कुछ सोचा। सोचकर बोली,—"पिताके मुखसे सुना था, कि इस संसारमें स्त्रियोंके लिये स्वामीकी अपेक्षा और कोई गुरु नहीं हैं। लेकिन मेरे स्वामीने आजतक मुझे किसी प्रकार-की आज्ञा नहीं दी थी, आज सौभाग्यकी बात है, जो एक आज्ञा तो मिली! उन्होंने मुझे गङ्गामें डूब मरनेकी आज्ञा दी है, अतः उसका पालन करनाही मेरा परम धर्म्म है।"

विराजमोहिनीने अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। अबके वह स्वामीके घरकी ओर देख, उन्हें याद करते हुए भूमिपर पड़ गयी और उनका नाम ले साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद बड़े कष्टसे उठकर वह धीरे-धीरे चलने लगी।

कहाँ जाती हो, विराजमोहिनी? सुशीले! इस गम्भीर रात्रिमें अकेली कहाँ जाती हो? देखो, आकाशमें चन्द्र हँस रहा है, चन्द्रके चारों ओर तारे हँस रहे हैं, चाँदनीमें नहाकर संसार हँस रहा है; कुसुम-कुल हँसता-हँसता झूम रहा है, उसकी सुगन्ध हँसती-हँसती दौड़ रही है। लेकिन तुम सुन्दरी, युवती और साध्वी होकर भी क्यों नहीं हँसतीं? क्या भगवान्‌ने केवल

तुम्हें ही हँसी नहीं दी? नहीं दी, तो न देने दो, तुम उनकी निन्दा मत करना; उन परम दयालुने एक बड़े भारी मतलबसे ही तुम्हें हँसीका दान नहीं दिया। स्थिर हो, वत्से! वह दिन अवश्य आयेगा, जिस दिन तुम्हारी हँसीसे ही वसुन्धरा हँसेगी। दुःख और सुखका वैषम्य देखनेमें भयानक मालूम पड़नेपर भी वास्तवमें कुछ नहीं है। स्थिर होकर दोनोंके लिये हृदयको समान भावसे तय्यार रखो। पति-पदाहता, ताड़िता और कुलटा द्वारा तिरस्कृता विराजमोहिनी! इस संसारमें एकमात्र तुम्हीं धन्य हो। इसीसे कहते हैं, कि तुम कहाँ जा रही हो? शुभे! स्थिर हो। कभी किसीके एकसे दिन नहीं जाते।

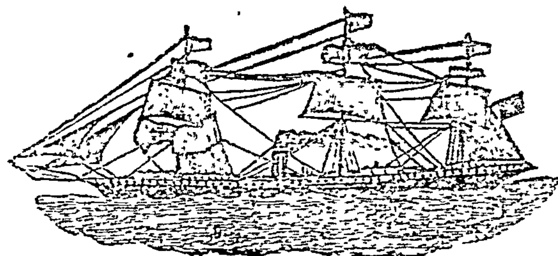
टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ और बड़े-बड़े कूचे पारकर विराजमोहिनी धीरे-धीरे बहुत दूर निकल गयी। यह साँय-साँय शब्द किसका हो रहा है? यह कल-कल-ध्वनि काहेकी हो रही है? विराजको सहसा कल-भाषिणी, पवित्र जलवाली भगवती भागीरथीके दर्शन हुए। एकाकिनी विराज उस गम्भीर रात्रिमें भागीरथीकी रेतपर आकर खड़ी हो गयी। देखा, कि सारी पृथ्वी हँस रही है। आकाश भी अपने कुटुम्बियोंके साथ हँस रहा है। सामने गङ्गा भी अपनी तरङ्गोंके साथ हँस रही है। नहीं हँस रही है, तो केवल दुःखिनी अथच पवित्र-हृदया साध्वी विराज! उसके मुँहके किसी स्थानपर हँसीकी रेखा नहीं। बाह्य-जगत्के हास्य और आनन्दका उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं। उसकी

दृष्टि केवल शशाङ्क-शेखर-शिरः-शोभिनी गङ्गाकेही ऊपर है। संसार निस्तब्ध है, मनुष्य सो रहे हैं, केवल दुःखिनी, आश्रय-हीना, विराजमोहिनी अकेली इस गङ्गाके किनारे खड़ी है।

यहाँपर विराजने फिर एकबार पति-देवके चरणोंको स्मरण कर प्रणाम किया। इसके बाद हाथ जोड़कर बोली,—"मा! इस अभागिनीको कहीं आश्रय न मिला। क्या तुम इसे अपने चरणोंमें स्थान दे कृतार्थ करोगी?" साथही साथ वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी, प्रफुल्ल कमलिनीकीसी युवती धीरे-धीरे गङ्गाके जलमें उतरी और शीघ्रही उस विशाल जलराशिमें अदृश्य होगयी।

उसी समय पासके एक बड़के पेड़से एक सुन्दर-शरीर युवा भी गङ्गामें कूद पड़ा। यह कौन है? क्या कोई देवता है? ऐसे असमयमें कहाँसे इसका आविर्भाव होगया?

सच पूछिये, तो यहाँतक हमारे उपन्यासकी भूमिका-मात्र हुई। ग्रन्थका वास्तविक आरम्भ अब होता है।





विराजमोहिनीका गङ्गामें कूदना।

"मा ! क्या तुम इसे चरणोंमें स्थान दे कृतार्थ करोगी ?"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—६६]

द्वितीय खण्ड ।



"येत्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञान-विमूढां स्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥"

अर्थ—किन्तु जो व्यक्ति दोषदृष्टिसे शङ्काएँ करके मेरे इस मतके अनुसार नहीं चलते, उन विवेक-विहीन, सर्वज्ञान-विमूढ़ अर्थात् पक्के मूर्खोंको नष्ट हुआ समझो ।

तात्पर्य्य—जो मोहाच्छन्न मनुष्य स्पर्द्धाके साथ भगवान्के बनाये सुसङ्गत नियमोंके अनुसार सत्पथपर विचरण न कर अवैध कर्म्म किया करते हैं, उन अधःपतित, हिताहित-ज्ञान-शून्य व्यक्तियोंको नष्ट हुआ समझना चाहिए ।

(श्रीमद्भगवद्गीता ३ अध्याय ३२ श्लोक । श्रीकृष्ण-वाक्य)



कर्मफल

पहला परिच्छेद।

सुरेन्द्रनाथ।

पाठकोंको कल्पना करनी होगी, कि शान्तिपुरसे कुछ कोस दूर, पश्चिमोत्तरके कोनेपर राजीवपुर नामका एक छोटासा गाँव है। इस गाँवके आखिरी सिरेपर एक दरिद्रका घर है। उस तेलीके परिवारमें एक विधवा स्त्री, एक विधवा कन्या, एक सधवा बहू और छोटे-छोटे दो बच्चोंके सिवा और कोई नहीं है। तरंगिणीके हृदय-सखा श्रीयुत धन्नू तेली इस घरके मालिक हैं। धन्नू बाबू शान्तिपुरमें दूकान करते हैं, यही सारे गाँवमें मशहूर है और इसीसे वे बारहों मास शान्तिपुरमें टिके रहते हैं। वास्तवमें शान्तिपुरमें उनकी एक दूकान है, लेकिन उसका उद्‌घाटन मुश्किलसे कभी-कदाच होता है। वे वहाँ जो कुछ करते हैं, वह हमारे पाठकोंसे छिपा नहीं है। तरंगिणीकी कृपासे मज़ेसे उनका खाना-पीना और बाबूगिरी

चलती है। कभी-कभी वे घरपर भी थोड़ा-बहुत ख़र्च भेज देते हैं। इससे परिवारका भरण-पोषण बड़ी कठिनाईसे होता है। दूकानकी झंझटें उन्हें इस तरह घेरे रहती हैं, कि रामजीके तीस दिन मरनेतककी फ़ुर्सत नहीं होती! इसीसे वे घर आनेसे लाचार हैं। यदि प्रारब्धवश कभी आ जाते हैं, तो उनकी नवाबी चाल और ठाटबाटको देखकर गाँवके लोग दंग रह जाते हैं एवं उन्हें एक बहुत बड़ा आदमी समझते हैं। लेकिन उनके प्रस्थान कर जानेपर उनका परिवार फिर उसी पुरानी हालतपर आ जाता है, अर्थात् उन्हें धान कूटकर गुज़र करनी पड़ती है। धन्नू बाबूको यदि कोई 'बाबू साहब' कहकर नहीं पुकारता, तो वे सिरसे पैरतक जल उठते हैं। परन्तु सौभाग्यसे नवाब साहबका घर आना ही बड़ी मुश्किलसे होता है; क्योंकि तरङ्गिणी उन्हें एक दिनके लिये भी छोड़ना नहीं चाहती।

हमारे धन्नू बाबूके परिवारमें जो विधवा थीं, वह उनकी मा थीं। विधवा कन्या धन्नूकी बहिन थी; उसका नाम गिरिबाला था। जो बहू है, वह धन्नूकी पत्नी है। दोनों बालक धन्नूके बेटा-बेटी हैं। गिरिबाला बाल-विधवा है। इस समय उसकी अवस्था सत्रह वर्षकी होगी। गिरिबाला परमा सुन्दरी है। उसकी रूप-राशि निर्दोष और उज्ज्वल है। इतना दुःख, दारिद्र्य और मनस्ताप होनेपर भी गिरिबालाका लावण्य-समुद्र मानो उथला पड़ता है। मलिन-वसना, निराभरणा, भोज्य-विहीना गिरिबाला यदि सुखसेविता,

रत्नालंकार-भूषिता होती, तो उसकी शोभा बढ़कर कहाँतक जा पहुँचती—यह विचारनेकी बात है। वृद्धा माताकी परिचर्य्या और अबोध भतीजोंका लालन-पालन ही गिरिबालाके जीवनका प्रधान कार्य्य है। वह दिन-रात प्रायः इसी काममें व्यस्त रहती है; गृहस्थीके अन्यान्य कार्य्य धन्नूकी स्त्री करती है। गिरिबालाका चरित्र अभीतक निष्कलङ्क है। इस बारेमें प्रायः सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

इस गाँवके दूसरे सिरेपर गाँवके ज़मींदार महाशय रहते हैं। वे जातिके कायस्थ हैं। उन्हें बड़ी आमदनी है—कमसे कम पच्चीस हज़ार रुपये सालकी उन्हें बचत होती है। गाँव गोटके ज़मीन्दार ठहरे; इसलिये रोब-दाब और शान-शौक़तका ठिकाना नहीं है। जो ज़मीन्दार ऐसे प्रतापवान् अर्थात् महा अत्याचारी और परपीड़क होते हैं, उनकी भी सर्वत्र प्रशंसा ही सुनी जाती है। यहाँतक, कि उनसे सताये हुए लोग भी, प्रसंग उठनेपर उनकी राजकार्य्य-निपुणताकी ढेरों प्रशंसा कर डालते हैं और ज़मीन्दारके प्रबल प्रतापसे बाघ और बकरी दोनों एक घाट पानी पीते हैं, ऐसा कहकर गौरवसे प्रसन्न होते हैं। राजीवपुरके ज़मीन्दार बाबू भी इसी श्रेणीके एक प्रबल प्रतापान्वित ज़मीन्दार हैं। सुना जाता है, कि गाँवके वर्त्तमान ज़मीन्दार श्रीयुक्त बाबू सुरेन्द्रनाथ मित्र एक अद्वितीय विद्वान् हैं। भगवान् जाने, यह बात कहाँतक सच है; लेकिन इस प्रवादमेंसे बढ़ाकर कहा गया अंश निकाल

देनेपर भी सुरेन्द्रबाबूको बिना पण्डित कहे रहा नहीं जाता। सुरेन्द्र बाबू धारा-प्रवाह अङ्गरेज़ी बोल सकते हैं। तारीफ़ यह, कि उनसे किसी स्थानपर एक भी व्याकरण या मुहाविरेकी भूल नहीं होती। अङ्गरेज़ीकी चिट्ठी लिखनेके लिये उन्हें पहले किसी दूसरे कागज़पर मसविदा तय्यार नहीं करना पड़ता। अङ्गरेज़ी काव्योंकी आलोचना भी वे बड़ी खूबीके साथ करते हैं। वे थोड़ी-बहुत संस्कृत भी जानते हैं; क्योंकि उसके अनेक शास्त्रोंके प्रकरण उनकी जिह्वापर ही रहते हैं। कहींपर शास्त्रोंका विचार उठनेपर वे तत्काल कह देते हैं, कि अमुक बात अमुक शास्त्रमें इस प्रकार लिखी हुई है। बंगभाषामें तो उनकी गति विलक्षण है। उन्होंने मासिक पत्रोंमें कई बार लेख भी लिखे हैं। उनके लेखोंकी सब लोगोंने प्रशंसा की थी। परन्तु उनका विश्वास है, कि बंगला-भाषा अधूरी है, उसमें सब तरहके भाव प्रकट करनेकी शक्ति नहीं है, अतएव बँगला लिखना-पढ़ना केवल झक मारना है। जो हो, सब बातोंका विचार करनेसे तो सुरेन्द्र बाबूको सुशिक्षित ही कहना ठीक जान पड़ता है।

सुरेन्द्र बाबूको साहबी चालढाल पसन्द है। यह तो आधुनिक सुशिक्षाका अवश्यम्भावी फल ही ठहरा! वे अधिकतर अङ्गरेज़ीमें ही बातचीत करना पसन्द करते हैं! कहीं जानेकी ज़रूरत पढ़नेपर वे हाफ़ बूट, हाफ़ होज़, ट्राउज़र, पैन्टलून, शर्ट, वेस्टकोट, कालर और हैट इत्यादि पूरी साहबी पोशाकसे सजे बिना कहीं नहीं जाते। तम्बाकू पीनेका उन्हें शौक़ है—

लेकिन देशी हुक्का उनको फूटी आँखों नहीं सुहाता। वे बेस्ट क्वालिटीका सिगार पीनाही पसन्द करते हैं। वे स्नान ज़रूर करते हैं—लेकिन तेल मलकर नहाना लज्जास्पद समझते हैं। हाँ, पीयर्स सोपका मलना वे स्वास्थ्य और सुख देनेवाला मानते हैं। खान-पानके बारेमें अक्सर उनके मुँहसे सामाजिक बन्धनकी निन्दा सुनी जाती है। इसीलिए वे मुसलमान बावर्चीके हाथका पकाया, प्याज़ मिला हुआ मुर्गीका मांस, बड़े शौक़से खाते हैं। और भी आगे बढ़े हैं, कि नहीं सो मालूम। देशी इत्रसे उन्हें सख्त नफ़रत है। इसके बदलेमें वे क्राउन परफ़्यूमरी कम्पनीका लैवेण्डर और 'दि फ्रेञ्च यूडीकलोन' आदि सामग्रियोंका व्यवहार करते हैं। स्वास्थ्यके अनुरोधसे उन्हें कभी-कभी विलायती ह्विस्कीका भी सेवन करना पड़ता है, इतना तो हमें मालूम है।

सुरेन्द्र बाबू किस मतके अनुयायी हैं, यह बात ठीक किसीकी समझमें नहीं आती। वे देवमन्दिरमें आकर ठाकुरजीको प्रणाम नहीं करते। घरपर श्राद्ध होते हैं, दुर्गापूजा होती है, पर वे स्वयं उनमें भाग नहीं लेते। ये काम स्त्रियाँ किसी दूसरे आदमीसे करा लेती हैं। ब्राह्मण-सज्जनको पालागन करना उनके मतमें पाप है। रामायण-महाभारतको वे चण्डूख़ानेकी गप बताते हैं। श्रीकृष्ण, रामचन्द्र और देवी-दुर्गाको वे मूर्खोंकी मिथ्या कल्पना समझते हैं और उनकी बात छिड़नेपर उनकी दिल्लगी उड़ाते हैं। वेद उनकी समझसे ग्वालोंके गीत

हैं। दर्शन और शास्त्र युक्ति-शून्य गढन्त हैं। वे, दूसरे मतवालोंकी दृष्टिमें आस्थावान् मालूम पड़नेपर भी, हिन्दुओंकी नज़रोंमें तो पूरे नास्तिक हैं। लेकिन अङ्गरेज़ीमें नास्तिकताका अर्थ और ही प्रकारसे किया जाता है। जो आदमी ईश्वरको नहीं मानता, अङ्गरेज़ीमें वही नास्तिकके नामसे पुकारा जाता है। और जो उसके अस्तित्वमें सन्देह करता है, वह 'स्केपटिक' कहा जाता है; वह नास्तिक नहीं कहलाता। अङ्गरेज़ी-दर्शनमें ऐसा भी देखा जाता है, कि कोई-कोई दार्शनिक ईश्वरका होना तो मानते हैं, पर वह सर्वशक्तिमान् है—इस बातको नहीं मानते। उनके दर्शनोंमें ज्ञेय और अज्ञेयका (Knowable and Unknowable) विचार भी पाया जाता है। अच्छा, तो जाने दो इन बातोंको। अङ्गरेज़ी दार्शनिकोंके मतकी आलोचना करना हमारा काम नहीं। सुरेन्द्रको कभी किसीने गिरजेमें जाते नहीं देखा। इसका भी कोई प्रमाण नहीं, कि वे ब्रह्म-समाजमें जाकर ध्यान लगाते हैं। अतएव उन्हें पूर्ण नास्तिक कहनेमें दोष नहीं।

लेकिन और-और मतोंके बारेमें प्रकट किये गये उनके विचार सुनकर ही उनका मत प्रकट हो जाता है। सुरेन्द्र बाबू दान-ध्यानको फ़िज़ूल समझते हैं। पीड़ितों और ग़रीबोंकी सहायता करनेकी बात उठानेपर वे कहते हैं, "हमारा क्या दोष? वे ऐसे बने ही क्यों?" कम आमदनीवाले आदमीको विवाह करते देख उन्हें "मैलथसकी थियोरी" याद आ जाती है और श्रीमती

ऐनीबीसेन्टके मतकी प्रशंसा किया करते हैं। हज़ार ग़रीब आयें और सुबहसे शामतक सिर पटक-पटककर मर जायें, पर उनकी गाँठसे एक पाई भी नहीं निकलती। वे क्यों फ़िज़ूल-ख़र्ची करें? इस फ़िज़ूल-ख़र्चीसे ही तो आज भारतमें कई लाख फ़क़ीर मुफ्तका माल उड़ा रहे हैं! किसी लूले या अपाहिजको भूखों मरता देखकर वे कह देते हैं, कि जगत्में अनन्त, अप्रतिविधेय और अपरिहार्य्य दुःख हैं। एक आदमीके दुःखको दूर करना, एक कलसी पानी लेकर समुद्र सोखनेकी चेष्टा करना है। वे अपने आपको बहुत अच्छा आदमी समझते हैं। सेल्फ़ यानी आत्मा नामक पदार्थ उन्हें बड़ा प्रिय है। वे आत्म-सन्तोष, आत्म-तृप्ति और आत्म-भोगकोही सर्वापेक्षा श्रेयस्कर बताते हैं। वे कहते हैं, कि संसारकी संस्थिति केवल इस 'मैं' शब्दके ऊपरही अवलम्बित है। बाह्य-जगत्का अस्तित्व बाह्य-जगत्में नहीं—वरन् हमारे मनमें है। मैं भोग करता हूँ, भोग करनेकी आशा करता हूँ और भोग करता आता हूँ—इस ज्ञानसेही प्रत्येक पदार्थ हमारी आँखोंके सामने विराजमान एवं विद्यमान है। 'मैं'के न रहनेपर ये पदार्थ इस प्रकार रहेंगे या नहीं, कौन जाने? संसारमें भोगही यथार्थ है, इसके सिवा सब अयथार्थ। इसीलिए सुरेन्द्र बाबू वासनानुरूप आत्म-भोगमें कभी पश्चात्पद नहीं होते।

सुरेन्द्रबाबूका यह अद्भुत मत एकदम नया, मनःकल्पित और भित्तिहीन नहीं है। बर्कले नामक यूरोपीय दार्शनिकके

जड़वाद और एपिक्यूरियन नामक ग्रीक-सम्प्रदायके अत्या-श्चर्य्य सुखवादके संमिश्रणसेही उनके इस अत्यद्भुत मतकी सृष्टि हुई है। उसके साथ संसारका और भी कोई मत मेल खाता है या नहीं—इस बातको आप नीचे लिखी बातोंसे मिलाकर देख लें। जान स्टुअर्ट मिलके धर्म्ममत अर्थात् 'यूटि-लिटेरियनिज़्म' नामक हितवादसे उनके मतकी बहुतसी बातें मिलती हैं। फलतः सुरेन्द्रबाबूका धर्म्म-मत 'गरमागरम मसालेदार' है। उसमें घी है, मिश्री है, सूजी है और मिर्च है—पर जल नहीं है। नाना स्थानोंसे संगृहीत, अनेक प्रकारके मतोंको काट-कूटकर और उनके साथ अपने मतका भी थोड़ासा हिस्सा मिलाकर उनका यह मत एक विचित्र खिचड़ी बन गया है। सुरेन्द्र बाबूकी साहबीमें कोई सन्देह नहीं।

सुरेन्द्र बाबू विवाहित हैं। उनको एक सन्तान भी है। बालक दो वर्षका और स्त्री बीस वर्षकी है। सुरेन्द्र बाबू अधिक-तर कलकत्तेमें रहते हैं, कभी-कदाच घरपर आ जाते हैं। स्त्री-पुत्रके सम्बन्धमें भी सुरेन्द्र बाबूका मत अद्भुत है। वे कहते हैं—"स्त्री और पुत्र, सुख-साधक वस्तुके सिवा और कुछ नहीं हैं; इसलिए जब कभी आवश्यकता पड़े, तब उनके पास जाना चाहिये, अधिक घनिष्ठता कर लेनी ठीक नहीं। उन्हें हरदम साथ लिये फिरना या गोदीमें चढ़ाये रखना भी ठीक नहीं; क्योंकि वे जहाँ कहीं भी रहेंगे, हमारे सिवा किसी दूसरेके न कहलायेंगे। संसारमें हमारी जितनी वस्तुएँ होंगी, उतनेही

हम सन्तुष्ट होंगे।" सुरेन्द्र बाबूके दाम्पत्य-प्रेम और अपत्य-स्नेहका परिचय उनके इसी मतसे प्रकाशित है। सुरेन्द्र बाबूकी उच्च-शिक्षा सार्थक होगयी है।

जहाँ अधिकार होता है, वहीं समस्त शक्तियाँ निवास करती हैं। यह बात सुरेन्द्र बाबू अक्सर अनेक स्थानोंपर प्रयुक्त करते हैं। उनका कहना है, कि यदि मैं इन्द्रियासक्त स्वेच्छाचारी हूँ, तो उसमें मेरी स्त्रीको किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं करनी चाहिये; क्योंकि शक्ति, सामर्थ्य, पद और मानमें मैं उसकी अपेक्षा बड़ा हूँ। वह दुर्बल है, मैं सबल हूँ—वह अधीन है, मैं प्रभु हूँ। ईश्वर न करे, पर यदि वह व्यभिचारिणी हो जाये, तो मैं उसको यथोचित दण्ड देसकता हूँ; क्योंकि उसके वैसे व्यवहारसे उसके शरीरके ऊपर मेरा जो आधिपत्य था, वह नष्ट होता है। वह मेरी सम्पत्ति है; मैं अपनी सम्पत्तिको किसलिये दूसरेके हाथमें जाने दूँ? मैं उसकी जायदाद नहीं—मेरे जो जीमें आये करूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ, मुझे रोकनेका उसे कुछ अधिकार नहीं। निर्बलोंका बलीके अधिकारमें रहनाही संसारका नियम है। हमारा भारतवर्ष—हमारा देश—सदा हमारा रहा। बादको कहींसे अलैकज़ेन्डर दि ग्रेट आया और उसने इसे अपने अधिकारमें कर लिया। क्यों? तलवारके ज़ोरसे। इसके बाद पठान मालिक बने। क्यों? उसी भुज-बलसे। अनन्तर मुग़लोंने इस देशपर अपना अधिकार जमाया। क्यों? अपराध? वही बल। और अब अँग्रेज़ोंने इस देशको जीतकर

सुखका राज्य बना डाला है। कारण? सिवा बाहुबलके और कुछ नहीं। इतिहास तो कभी किसीकी निन्दा नहीं करता, वरन् वह तो ऐसे परवित्तापहारी लोगोंके वीरत्वकी पूजा करता हैं। इसलिये दैहिक शक्ति या बलके प्रभावसे दुर्वलको अधीन करनाही साधु-सम्मत सुव्यवस्था है। अतएव कहना चाहिये, कि बड़े शुभ मुहूर्त्तमें सुरेन्द्र बाबूने हक्सले, हैमिल्टन, बेन, मिल और गेबिन्स आदि पण्डितोंके तर्क-शास्त्रकी आलोचना की थी।

सुरेन्द्र बाबू विज्ञानके बड़े भक्त हैं। पदार्थ-विद्या, रसायन, चिकित्सा, शारीर-विद्या, ताप-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र और अनेक एतद्विषक ग्रन्थ उनके देखे हुए हैं। यूरोपीय विज्ञान-शास्त्रको वे संसारकी सार-सम्पत्ति और ज्ञान-राज्यका परम धन समझते हैं। केवल मनोविज्ञान-शास्त्र—अर्थात् मेटा-फ़ीज़िक्स, साइकौलोजी आदि मान-सशास्त्रके भेदोंको वे भ्रान्त बताते हैं। इसलिये केवल इसी विषयमें पाश्चात्य पण्डित उनकी नज़रोंमें हीन हैं; किन्तु मनोविज्ञानका अङ्गीभूत तर्क-शास्त्र उन्हें प्रयोजनीय ज्ञात होता है। आप कहते हैं, कि तर्कके गोरखधंधेमें डालकर 'है' को 'नहीं' करनेकी बड़ी भारी सुविधा है, अतएव तर्क एक अवश्य आलोच्य और अति प्रयोजनीय शास्त्र है।

सुरेन्द्रबाबू कहते हैं, कि विज्ञानकी उन्नतिके साथ संसारकी भी अपरिमेय उन्नति होगी। विज्ञानके बलसे जगत्में मौत और बुढ़ापेका डर न रहेगा, यौवन सदा एकसा रहनेवाला

होजायेगा, बाल कभी सफ़ेद न होंगे, दाँत न गिरेंगे, मृत्यु नहीं होगी और होगी भी तो इच्छा-मृत्यु ! मनके मुताबिक़ चलनेवाली सवारियाँ बनेंगी, तत्काल पेड़ पैदा होकर उनमें फूल-फल लग जाया करेंगे, स्त्री-पुरुषोंके संयोगकी कुछ ज़रूरत न रहेगी, कलके ज़रियेसे सन्तान पैदा हुआ करेगी। ऐलिमेन्ट्सके संयोग-वियोगसे इस प्रकारका खाद्य पैदा हुआ करेगा, कि जिसमें खेती-बारीकी कुछ ज़रूरत न रहेगी। कहनेका तात्पर्य्य यह, कि, आश्चर्यजनक बातें समय पाकर होने लगेंगी। ऐसा उनका विश्वास है। अगर उनकी इन बातोंको कोई हँसीमें उड़ा देता है, तो वे कहते हैं, कि मनुष्य सदा अविश्वासी है। जबतक कोई बात आँखों नहीं देखता, तबतक नहीं मानता। जब रेल-तारकी बात चली थी, तब भी लोग ऐसाही हँसते थे। मूर्ख तो हँसेंगेही, पर विज्ञान उनके हँसनेसे मर थोड़े जाता है ? वह सदा बना रहा है और बना रहेगा। प्राचीन आर्योंके पुष्पक-रथ, इच्छा-मृत्यु, सहस्र वर्षकी परमायु आदि विषयोंकी आलोचना करते हुए वे कहते हैं, कि सम्भवतः इन सब बातोंमें भारतके प्राचीन निवासियोंने उन्नति की होगी, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। मुझे तो उनके विचित्र धर्म्म और दोसे अधिक बाँहों, एकसे अधिक मुँह और दोसे अधिक नेत्रोंवाले देवताओंकी बात पढ़कर यही कहना पड़ता है, कि वे बड़े जंगली थे, उन्होंने क्या ख़ाक मानसिक उन्नति की होगी ? अतएव, सुरेन्द्र बाबूका ज्ञान ख़ूब बढ़ा-चढ़ा है, इसमें सन्देह नहीं।

सुरेन्द्र बाबू हमेशः कलकत्तेमें रहते हैं। हालमें पिताकी मृत्यु होजानेके कारण राजीवपुर आये थे, फिर श्राद्ध आदि करके चले गये। आजकल वही समस्त सम्पत्तिके मालिक हैं। जायदादका काम बिना अपने आप देखे ठीक नहीं होता। अतएव उन्हें फिर घरपर आना पड़ा है। उन्हें आये हुए तीन महीने होगये; अबतक मारे कामके कहीं बाहर नहीं जा सके।

सुरेन्द्र प्रायः सन्ध्याके समय अपने घोड़ेपर सवार हो वायुसेवनके लिये, बाहर जाया करते हैं। गाँव बहुत बुरी जगह है। वहाँ बग्घी-फ़िटनोंके जानेका कहीं रास्ता नहीं। टहलने जाते समय गाँवके सारे लड़के रास्तेके किनारे आ खड़े होते हैं। एक तो वे ज़मींदार, तिसपर उनका लम्बा-चौड़ा सफ़ेद तुर्की घोड़ा, उसके ऊपर उनका अत्यद्भुत साज़-सरंजाम और वेश-भूषा, गाँवके बड़े-बड़े आदमियोंके लिये भी अभूत-पूर्व सामग्री है। आज सुरेन्द्र बाबू धनुआ तेलीके मकानकी तरफ़ गये थे। उनके घोड़ेकी टापकी आवाज़ सुनकर धन्नूकी मा और गिरिबाला बाहर निकल आयीं। गिरिबाला गाँवकी लड़की है, इसीसे उसमें लज्जाका हिस्सा कम है। गिरिबालाकी गोदमें उसका भतीजा है। जल्दी दौड़ आनेकी वजहसे उसमें थोड़ीसी लापरवाही थी। एड़ीतक लटकने-वाले बाल खुले हुए थे, सिरका डुपट्टा थोड़ा खिसका और ज़मीनतक लटक रहा था। उज्ज्वल नेत्र उत्साह और कौतू-हलके कारण आयत और प्रदीप्त होरहे थे। गिरिबालाने कुछ



गिरिबाला और सुरेन्द्र।

"गिरिबालाने अश्व और अश्वारोहीको दूरसे देख आगे पैर नहीं बढ़ाया।" [पृष्ठ—८०]

दूर आतेही अश्व और अश्वारोहीको दूरसे देख आगे पैर नहीं बढ़ाया। एक पाँव जो आगे बढ़ाया था, वह वैसाही रखा रह गया। गिरिवाला उस समय भुवन-मोहिनी थी। यह शोभामयी सुन्दरी सहसा अश्वासीन सुरेन्द्र बाबूकी दृष्टिमें पड़ी। कहना व्यर्थ है, कि वे उसपर एकदम मोहित होगये। घोड़ा जाने लगा, किन्तु सुरेन्द्र बाबूकी दृष्टि किसी तरफ़ नहीं फिरी। घोड़ेके दूर चले जानेपर जब गिरिवालाको देखनेकी सम्भावना तिरोहित हो गयी, तब सुरेन्द्रने घोड़ा लौटाया। फिर गिरिवालाकी रूपराशि उनकी नज़रोंमें पड़ी। घोड़ेकी लगाम खींचकर वे धीरे-धीरे गिरिवालाकी रूप-सुधाका पान करते हुए घरकी तरफ़ चल दिये। उस दिन सुरेन्द्र बाबूका अधिक वायु-सेवन नहीं हुआ। उन्होंने बैठकेमें आकर पुकारा,—'माधो-माधो !'

हाथ जोड़े शीघ्रतापूर्वक माधो ख़ानखामाके आनेपर उन्होंने आज्ञा दी, कि बुल्लो मालिनको अभी बुला लाओ।

माधो चला गया। सर्वनाशका बीज बोया गया।

तीन दिन बीत गये। इसी बीच कैसे-कैसे क्या हुआ, सो तो कुछ मालूम नहीं; लेकिन गिरिवाला आज सुरेन्द्र बाबूके बैठकख़ानेमें मौजूद है। गिरिवालाका भाव देखनेसे मालूम होता है, कि वह न तो किसी आफ़तकी मारी आयी है और न पकड़कर लायी गई है। मनुके ज़मानेमें आठ प्रकारके विवाहोंका प्रचार था, उनमें राक्षस और पैशाचिक नामक दो प्रकारके विवाह भी थे। सुरेन्द्र बाबूने इस आर्य्य-धर्म्म-विलुप्त

देशमें, उपर्युक्त दोनों प्रकारके विवाहोंके चलानेकी बात भी एक बार कही थी। आजकल एक दल ऐसे कृतविद्य लोगोंका है, जो नाम कमानेके लिये पुरातन धर्म्म और आचार व्यवहारको अँगरेज़ी तरीक़ेसे माँज-धोकर फिरसे चला देना चाहता है। उनकी स्तुति करनेवाले लोग भी मौजूद हैं; क्योंकि विना स्तावक लोगोंके कोई नवीन कार्य्य करनेकी किसीको हिम्मत नहीं पड़ती। कवियोंकी जमातमें भी कोई-कोई ऐसे होते हैं, जो कविताके भावको समझें या न समझें, लेकिन वाहवाहके ढेर लगा देते हैं। जिस दलके स्तावक संख्यामें अधिक और गाल बजानेमें विशेष पटु होते हैं, उसी दलकी प्रायः जीत हुआ करती है। लेकिन अन्तमें उन लोगोंका क्या हाल होता है, यह हम नहीं कह सकते। ये ख़ुशामदी लोग प्रायः कुछ स्वार्थकी आशामें रहते हैं। जिन लोगोंका यह कहना है, कि महाराज! हम न तो आलूके नौकर हैं और न परवलके, बल्कि हुज़ूरके नौकर हैं; इसलिये हुज़ूर जिसे अच्छा बतायेंगे, वही अच्छा है,—ऐसे लोग चाहे मूर्खही क्यों न हों, लेकिन उनकी बात ठीक है। आजकलके लोग ही बेढब हैं, फिर उनके ख़ुशामदी क्यों न बेढब हों? आजकलके ख़ुशामदी, उचित हो या अनुचित, जिसे ख़ूब बढ़ता हुआ देखते हैं और समझते हैं, कि चाहे लाख नीचा क्यों न हो, पर उसे नीचा दिखाना सहज नहीं है, उल्टा उसके वाक्योंसेही अपना बहुत कुछ उपकार होगा, उसीकी ख़ुशामद करना आरम्भ कर

देते हैं। ऐसी खुशामद बड़े ढंगकी होती है। यह इतनी चिकनी-चुपड़ी है, कि हाथमें लेतेही फिसल जाती है। इस गुलामीका प्रधान सुख यह है, कि जिसकी गुलामी की जाये, वह अपने गुलामोंकी मर्य्यादा बढ़ा देता है। दस खुशामदी मिलकर जिसे बड़ा आदमी बना देते हैं, वही बड़ा आदमी हो जाता है और बड़े लोग भी ऐसे खुशामदी लोगोंकी तारीफ़ पाकर "मौनूमेण्ट" नहीं तो लाल-गिर्जाकी तरह तो बड़े होही जाते हैं। अँगरेज़ीमें इसेही Mutual admiration (पारस्परिक प्रशंसा) कहते हैं। इसका मूल्य अँगरेज़ लोग खूब जानते हैं। अस्तु; वर्त्तमानकालके हिन्दू-धर्म्मपर मुलम्मा करनेवालोंको स्तावकोंने 'Revivalist अर्थात् 'पुनः-प्रवर्त्तक' की उपाधि दी है। सुरेन्द्र-नाथने, मनुके मतानुमोदित उपरोक्त पैशाचिक विवाहको कई बार कार्यमें परिणत करनेकी कोशिश की है, अतः खुशा-मदी लोगोंको चाहिये, कि वे उन्हें 'पुनःप्रवर्त्तक' लोगोंके सर्व-श्रेष्ठ आसनपर बैठायें। सुरेन्द्र बाबू जैसे धनशाली और सुशिक्षित व्यक्तिके चारों ओर असंख्य जी-हुज़ूरोंके इकट्ठे होजानेकी सम्भावना थी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। हाय, धर्म्मके सुमर्म्मज्ञ, अभागे सुरेन्द्रनाथ! तुमने लापरवाही करके क्यों ऐसे सुन्दर दलमें मिलनेके सुयोगको नष्ट कर दिया?

गिरिबाला अपनी इच्छासे सुरेन्द्रबाबूके बैठकखानेमें आयी है; उसपर किसी प्रकारका अत्याचार या उसकी इच्छाके विरुद्ध किसी प्रकारका बल-प्रयोग नहीं किया गया। लेकिन

साथही यह बात भी है, कि उसने अपने आप यहाँ आनेकी इच्छा नहीं की—वरन् सुरेन्द्रबाबूकी बुल्लो मालिनके बुद्धि-कौशलसेही वह उनके घर आनेको राज़ी हुई है। बुल्लो मालिनने आकाश-पाताल एक करके गिरिबालाकी मति फिरा दी है। वह इस शास्त्रमें बड़ी पण्डिता है।

हाय, लोभ! हाय, सुखकी आशा! तुम लोग हमेशा इस संसारमें अनेक अघटन-घटना घटाते रहते हो। तुम्हारेही हाथमें पड़कर सूर्पणखाने अपने नाक-कान कटवाये, रावण सवंश नष्ट हुआ, इन्द्र सहस्र-लोचन बने, चन्द्र कलंकी हुआ, अकबर बादशाहने एक स्त्रीसे अपनी प्राण-भिक्षा माँगी, विधवा मेहरुन्निसा सम्राज्ञी नूरजहाँ बनी, रोमके टार्क्वीन्स मारे गये और इनके अलावः पृथ्वीमें न जाने कितने अनर्थ हुए। फिर बेचारी गिरिबालाही क्यों दोषी बतायी जाय? संसारके छोटे और बड़े, गण्य और अगण्य, प्रायः सभी लोग जब लोभके मनोहर आवरणको भेद करनेमें असमर्थ हैं, जब समस्त संसार-ही अधिक सुख, अधिक भोग और अधिक विलासकी आशामें दिग्भ्रष्ट हो रहा है, तब बालिका गिरिबालाके इस लोभ-सागरमें डुबकी मारनेमेंही क्या आश्चर्य्य है?

फलतः, बुल्लो मालिनके अचूक निशानेसे गिरिबाला-रूपिणी हरिणी बिंध गयी। इसीसे आज हम उसे सुरेन्द्र बाबूके बैठकेमें देख रहे हैं। इस पाप-पूर्ण व्यापारका अगला अंश हम चित्रित नहीं करेंगे। अस्तु; गिरिबाला बड़े आनन्दसे

दिन विताने लगी। पापका पथ अतिशय पिच्छल और ढालुआँ हुआ करता है; एक वार असावधानीसे पैर चढ़ानेपर फिर रक्षा नहीं। उसे पारकर जानेमें विशेष वलशाली व्यक्तिकी आवश्यकता है। नहीं तो साधारण आदमी तो वीचमेंही पतित होकर दोनों दीनसे चले जाते हैं। पाप-पथका प्रथम भाग सुगन्धित पुष्पोंसे भरा हुआ है, इसीसे अति मनोहर है। उस पथपर भ्रमण करनेका लोभ संवरण करना वड़ी टेढ़ी खीर है। लोभके वशवर्त्ती होकर जो आदमी एक वार उस रास्तेमें पैर देता है, वह उज्ज्वल आनन्दकी मदिरासे प्रमत्त होकर दिग्भ्रष्ट हो जाता है और किसीकी भी सीख न मानकर उस पथपर विचरण करते-करते शेष सीमापर पहुँचे विना शान्त नहीं होता। शेष सीमामें क्या है—इस वातका पहले कोई विचार नहीं करता। इस समय गिरिवालाने भी अति लोभके वशमें होकर पाप-पथमें पदार्पण किया है। आनन्द-दायक पुष्पोंकी सुगन्धिसे उसका हृदय और मन पूरे तौरसे भर गये हैं, अपूर्व प्रसन्नतासे उसका दिमाग़ ठिकाने नहीं है। वह इस समय अपनेको महा सुखी समझती है।

जाओ, गिरिवाला! पापीयसी! हँसती-हँसती इस सुन्दर दिखाई पड़नेवाले मार्गमें उतर जाओ। इसमें तुम तनिक भी व्यस्त न होना, क्योंकि इस सुखमय, आनन्दमय रास्तेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है। जाओ, सानन्द इस पथकी शेष सीमापर पहुँच जाओ। लेकिन अफ़सोस! वहाँ पहुँचकर

तुम्हारा क्या हाल होगा, जानती हो? वहाँपर अनन्त यन्त्रणाएँ तुम्हारी सखियाँ बन जायेंगी; जीतेही जी नरकलोकके दण्ड तुम्हें भोगने पड़ेंगे। अविरल रोदन, निरन्तर आर्त्तनाद और ढाढ़ें मार-मारकर चिल्लानाही उस समय तुम्हारा अपरिहार्य अवलम्बन होगा। फिर तुम वहाँसे किसी प्रकार न लौट सकोगी; क्योंकि तुम एक क्षुद्र-हृदय बालिका हो, वहाँसे बीच रास्तेसे लौटनेकी शक्ति तुममें नहीं है। लेकिन तुम व्यस्त क्यों हो रही हो? इसलिये, कि संसारके समस्त नश्वर सुखोंको आजसे अपने वशमें कर लोगी? सो नहीं होसकता। अभागिनी! सब काम धीरे-धीरे होते हैं। लेकिन हैं! यह क्या? तुम्हारी आँखें लाल क्यों हो रही हैं? तुम्हारी बातें टूटी-फूटी और बेमतलब क्यों हैं? ओफ़, राक्षसि! तुम अपने प्राणनाथ सुरेन्द्र बाबूके प्रसादरूप व्हिस्कीका पान करना सीख गई हो? तब तो ग़ज़ब होगया! रास्ता तै होनेकोही है, अब तो सर्वनाश भी निकट है। जाओ, मूर्खा! नरकके दावानलमें जलनेके लिये हृदयको तैयार कर रखो। तुम्हारे सामने काला विषधर फन फैलाये बैठा है—वह अभी दंशन करके असह्य यातनासे तुम्हारे समस्त सुखोंके प्रकाशको बुझा देगा, तुम्हें जीवन्मृत बना देगा, लेकिन मौत न होगी—उन अनन्त, अव्यक्त और अचिन्तनीय यातनाओंका भोग करनेकी अपेक्षा मृत्युके लिये तुम कातर भावसे कितनीही प्रार्थना करोगी, पर मृत्यु भी उस समय तुम्हारे उद्धारके लिये

उद्यत न होगी। हाय अभागिन! तुम पहलेही क्यों न मर गयीं? इस नरकमें गिरनेके पहलेही तुम्हारे जीवनका अन्त क्यों न हो गया?

इसी प्रकार काम चलने लगा—गिरिबाला सुरेन्द्र बाबूके बैठकेमें नित्य-प्रति जाने लगी। देख-देखकर जलनेवालोंके मुँह खुलने लगे। लेकिन गिरिबाला अब लोक-निन्दाकी तनिक भी परवा नहीं करती। अब वह ग़ैरोंके मुँहसे सुरेन्द्रनाथके सहित अपना नाम लिये जाते सुनकर गौरवकी हँसी हँसती है। एक दिन जिन लोगोंको देखकर गिरिबाला पल्ला नीचा करके चलती थी, आज वह उन्हें देखकर छाती फुलाकर चलती है। एक दिन, गिरिबालाने शराब पीकर बेइन्तिहा हुन्द मचाया था और अपने एक रिश्तेके चाचासे लड़ भी पड़ी थी। बात नितान्त लज्जाजनक होनेपर भी उसने उसे एक गौरवात्मक काण्ड समझा। गिरिबाला, हाथोंमें सोनेके खँडुए पहन, रेशमी साड़ी ओढ़ और कानोंके बाली-पत्तोंको चमका-चमकाकर सुरेन्द्र बाबूके घर जाती है और जी-भर मद पीती है। और दो-तीन मास इसी प्रकार बीत गये। सुरेन्द्र बाबूका प्रताप प्रबल था। तोभी धनुआ तेलीके परिवारके साथ लोगोंने अपना आहार-व्यवहार बन्द कर दिया। गाँवके अधिकांश लोग ग़रीब थे, इसलिये कौन रोज़-रोज़ दावतें देता है? इस बातपर अधिक आन्दोलन नहीं हुआ। गिरिबाला और भी निष्कंटक होगयी। उसने घृणाके साथ इस

सामाजिक शासनकी उपेक्षा की, लेकिन स्पर्द्धित लोगोंपर उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने उन्हें दण्ड दिलानेके लिये एक दिन सुरेन्द्र बाबूसे सारी बातें कह डालीं और शीघ्र उसका प्रतिविधान करनेके लिये अनुरोध किया। बातें सुनकर सुरेन्द्र बाबू बोले—"बहुत अच्छा, पहिले तुम्हारा अनुरोध पूरा करूँगा, फिर दूसरे काम होंगे। लेकिन गिरिबाला! प्राणेश्वरि! तुम्हारा यह अनुरोध नितान्त विज्ञान-विरुद्ध है। क्यों? समझाये देता हूँ। डाकृर पार्क्स साहबका लिखा स्वास्थ्य-तत्त्व-सम्बन्धी 'हाईजिन' नामका एक ग्रन्थ है। उन्होंने उस ग्रन्थके एक निर्दिष्ट स्थानपर लिखा है कि—'गुरु पदार्थोंके भोजनके समान स्वास्थ्य-विरोधी और कोई दूसरा काम नहीं है। उनकी समझमें जो लोग अच्छे भोजनोंके लोभमें पड़कर, न्योते और जेवनारोंमें जाया करते हैं, वे जान-बूझकर अपने शरीरके ऊपर अत्याचार करते हैं। हिन्दू लोग अक्सर कहा करते हैं,कि—'शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम्।' अतएव हे गिरिबाला! जिन कामोंसे शरीरकी रक्षामें बाधा पड़े, उनका करना बड़ा भारी अन्याय है। फिर यह मेराही मत नहीं, सर्जन मेजर धर्म्मदास बसुके 'स्वास्थ्यरक्षा और साधारण स्वास्थ्य-तत्त्व' नामक ग्रन्थमें भी स्पष्टही ऐसा लिखा हुआ है। गिरिबाला! तुम मेरी परमात्मीया हो, तुम्हारे भले-बुरेके साथ मेरा भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसी अवस्थामें तुम्हारा निमन्त्रणमें जाना बन्द होनाही अच्छा है। फिर जब समाजने स्वयं तुम्हें

इस विपत्तिसे मुक्त कर दिया अथवा करनेको तय्यार है, तब उसको दण्ड देना मेरे लिये कदापि कर्त्तव्य नहीं।'

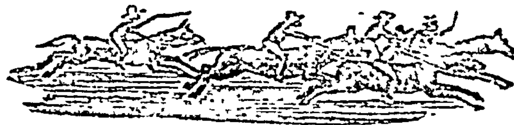
बोलो श्रीगंगाजीकी जय! 'गाँवके जलमुए लोग और लुगाइयोंके सिरपर जूते पड़वाकर गिरिवाला अपने मनका गुस्सा उतारेगी' यही उसका स्थिर सङ्कल्प था, लेकिन उसमें सफलता पाना तो दूर, बाबू साहब उन्हें केवल गाली भी देंगे, इसकी भी आशा काफ़ूर होगयी। सुरेन्द्र बाबूकी शास्त्र और विज्ञान-सम्मत वाक्यावलीका तात्पर्य्य उसकी समझमें नहीं आया। वह किसी बातको काट भी न सकी; पर मनहीमन कुढ़ने लगी।

गिरिवालाने अनेक आशायें की थीं; बुल्लोने उसके आगे स्वर्गका द्वार खोल दिया था। पहले-पहल गिरिवाला अननुभूत-पूर्व इन्द्रिय-सुखोंमें इतनी मोहित होगयी थी, कि उसके मनमें अन्यान्य सुखोंके प्रसङ्ग नहीं आसके थे। अब उसके पास ज़ेवर-कपड़ोंका ढेर भलेही होगया हो, लेकिन उसकी आशाओंकी तुलनामें वह अभी अपूर्णही है। गिरिवाला, अपनी इच्छासे अथवा लोगोंके सिखाने-पढ़ानेसे, एक-एक करके सुरेन्द्र बाबूके सामने अपनी समस्त प्रार्थनाएँ व्यक्त करने लगी। लेकिन अनर्थक वाक्याडम्बर सुननेसे कानोंकी परितृप्तिके सिवा और किसी प्रकारका लाभ नहीं होता था। गिरिवालाका मनस्ताप बढ़ने लगा। लेकिन उस समय वह पूर्ण पतित होचुकी थी। इसलिये सुसङ्गत क्रोध और तेजका उसमें सर्वथा अभाव था।

केवल घृणित चिन्ता और कलङ्कित कामनाही उस समय उसकी सहचरी थीं।

गिरिबालाके इस कलंकका नक्कारा, ज़ोरके साथ बजता-बजता क्रमशः शान्तिपुरमें धन्नू बाबूके कानोंमें आ गूँजा। नाचीज़ धनुआ उसके शब्दको सुनकर मर्म्माहत या लज्जित न हुआ, वरन् इसे लाभदायक व्यापार समझकर सुखका अनुभव करने लगा। वह स्वयं एक वेश्याकी कृपासे अपने खाने-पहननेका गुज़ारा चलाता था, अबके उसकी गुणवती भगिनीने एक लम्पटका अनुग्रह लाभ किया; इसलिये अब कुटुम्ब-भरकी सारी दरिद्रता दूर होजायेगी, ऐसा सोचकर वह मनहीमन बड़ा प्रसन्न हुआ।

क्रमशः तीन-चार महीने बीत गये; तोभी धन्नूके घरका छप्पर नहीं छाया गया, माँ, बहन और स्त्रीके पेटमें दोनों वेला भरपेट भोजन भी पहुँचना दुर्लभही रहा और हलके सूतके कपड़ोंसे लज्जा ढाँकनेकी कठिनाई भी बनी ही रही—यह ख़बर पाकर धन्नू एकदम चिढ़ उठा, एवं उसका यथासम्भव प्रतीकार करनेकी लालसासे वह अपनी जन्मभूमिमें आया।



तीसरा परिच्छेद।

आँखें खुलीं।

धन्नू बाबूके मकानपर आनेसे गिरिबाला ज़रा भी न सकुचायी। वह सुरेन्द्र बाबूके बैठकख़ानेमें जिस प्रकार पहले आया-जाया करती थी, उसी प्रकार अब भी आती जाती है। उसने भाग्यवान् भाईसे हाथके कड़े, कानोंके बाली-पत्ते और ओढ़ने-पहननेके कपड़े नहीं छिपाये। भाई-बहन दोनों एक-से-एक बढ़कर हैं। धनुआ प्रायः प्रतिदिन गिरिबालाके साथ फुस-फुस करने लगा। तीन दिन बीते। एक दिन सन्ध्याके बाद गिरिबालाने सुरेन्द्र बाबूके बैठकेमें जाकर देखा, कि वहाँपर बाबूजी नहीं हैं। यह आज कोई नयी बात न थी, अक्सर ऐसा होता था, पर बहुत देरके लिये नहीं। आज बाबू साहबका अदर्शन बहुकाल-व्यापी हुआ। बहुत रात बीत जानेपर बाबू शराब पी, मतवाले बने हुए बैठकेमें आये। उस समय गिरिबालाने क्रोधका एक अभिनय दिखाना चाहा। वह वस्त्र ओढ़कर पलँगपर जा लेटी। ऐसा भाव दिखाया, मानो सो रही हो; क्योंकि उसे मालूम था, कि सुरेन्द्र इस अपराधके निमित्त कुण्ठित होंगे और उससे मान-भिक्षा माँगेंगे। लेकिन सुरेन्द्र, उसके आशानुसार

कोई काम न करके चुपचाप एक दूसरे पलँगपर जाकर सो रहे। गिरिवालाने अपने मान-भंग होनेकी बहुत देरतक अपेक्षा की, लेकिन बाबूके मान-भञ्जनकी प्रार्थना करनेका कोई लक्षण नहीं दीखा; वरन् मालूम हुआ, कि वे स्वच्छन्दताके साथ सो रहे हैं। तब वह मन-ही-मन अनेक कल्पनाएँ कर धीरे-धीरे उठी और सुरेन्द्रके पलँगके पास जाकर उसने उनके शरीरपर हाथ रखा। लेकिन स्त्री-जातिके सुकोमल हाथोंमें जो एक स्वभावतः मधुर तेज होता है, उस गरमीका गिरिवालाके हाथोंमें सर्वथा अभाव था।

हिलाने-डुलानेसे सुरेन्द्रकी निद्रा भङ्ग हुई। वे बोले,—"गिरिवाला! क्या तुम जाग रही हो? तुम्हें सोते देखकर तो मैं बड़ा निश्चिन्त होगया था। जाओ, जाकर पलँगपर सो रहो। रात थोड़ी है। ढलती राततक जागना स्वास्थ्यके लिये बुरा होता है।"

और कोई स्त्री होती, तो अभिमानसे मर जाती। गौरवका वह अभिमान अधःपतिता गिरिवाला कहाँसे पाये? उसने अभिमान भी नहीं किया और सुरेन्द्र बाबूके आदेशसे सोने भी नहीं गयी। बोली,—"बलासे बुरा हो, अब मैं न सोऊँगी। मेरे—"

उसके वाक्यको बीचसेही काटकर सुरेन्द्रने कहा,—"तो फिर मुझे किस लिये दिक़ करती हो? जाओ, मैं अब सोऊँगा।"

इस उपेक्षाको भी अभागिनीने सह लिया। क्रुद्ध सर्पिणीकी भाँति उसने न तो ऊपरको सगर्व सिर उठाया, न उत्पीड़िता

सिंहनीकी भाँति गर्ज्जन किया और न अपमानिता नायिकाके समान लाल-लाल आँखें कर गरदनही टेढ़ी की। वह हँसती हुई कहने लगी,—"मुझे तुमसे दो-दो बातें करनी हैं; उन बातोंको सुनकर तुम सो जाना, मैं फिर तुम्हें न दिक़ करूँगी।"

सुरेन्द्रबाबू बोले,—"अच्छा, जल्दीसे कह दो, रात थोड़ी है।"

गिरिबालाने कहा,—"तुम जो मुझे एक मकान बनवा देनेकी बात कहते थे, वह कब बनवा दोगे?"

सुरेन्द्रबाबू बोले,—"बस, यही बात है? और कुछ तो नहीं?"

गिरिबाला,—"आपने मुझसे सारी देहके दुहरे गहने बनवानेका वादा किया था, उस बारेमें क्या हुआ? कलही मुझे सब गहने गढ़ा देने होंगे।"

सुरेन्द्र बाबूने पूछा,—"और कुछ कहोगी क्या?"

गिरिबाला,—"तुम कहते थे, कि तुम्हें हम इतना रुपया देंगे, कि जिससे तुम्हारा सारा जीवन निश्चिन्तताके साथ कट जायेगा; वह रुपया भी तुम्हें कल देना होगा।"

सुरेन्द्र बाबू,—"मालूम होता है, कि अब तुम्हारी फ़रमायशें पूरी हो गयीं।"

गिरिबाला,—"हाँ; इन बातोंका क्या जवाब देते हो? बोलो।"

सुरेन्द्र बाबू,—"उत्तर कल सोच-विचारकर देंगे। आज-भर ठहरो!"

गिरिबाला,—"नहीं, ऐसा न होगा। तुम्हें आजही जवाब देना पड़ेगा।"

सुरेन्द्र बाबू हो-हो करके हँसते हुए बोले,—"तो सुनो, तुम्हें जो कुछ दे दिया गया है, उसेही मैं यथेष्ट समझता हूँ, उसके सिवा मैं अब एक पैसा भी न दे सकूँगा!"

इतनी देर बाद गिरिबालाको क्रोध हुआ एवं उसने अब झगड़ा करनेका सङ्कल्प किया। बोली,—"क्यों नहीं दोगे? मुझे डुबोकर, मेरा सत्यानाश कर, मुझे लोभके फन्देमें फाँसकर अब तुम यों आँखें दिखाते हो?"

सुरेन्द्र बाबू बोले,—"तुम जैसी दुःखिनी और सामान्या स्त्री, मेरे इस बढ़िया कमरेमें आ सकी, मेरी इस अपूर्व शय्यापर सो सकी और मुझ जैसे व्यक्तिके साथ 'तुम-ताम' कहकर बातचीत और आमोद-आनन्द कर सकी, यही उसका परम सौभाग्य है। तुम जो सत्यानाश कर डालनेकी बात कहती हो, उसका मतलब मैं न समझा। तुम जैसी नीच घरकी औरतके साथ मैंने घनिष्ठता स्थापित की, यह तो तुम्हारे असीम गौरव और आनन्दका कारण होना चाहिये। फिर तुम्हें अधिक लोभमें फँसाने-से मुझे क्या लाभ? जो आदमी इच्छा करनेपर गाँवका गाँव जला दे सकता है, सिर काटकर फेंक दे सकता है, स्वामीकी शय्यासे युवतीको उठवा मँगा सकता है, उसे एक निःसहाय, निराश्रय विधवाको लानेके लिये, लोभका फन्दा फैलानेकी क्या आवश्यकता?"

गिरिबालाका सिर घूमने लगा। हाय, अभागिनी! अब भी इस कलङ्कको, इस मनस्तापको, दूरकर फिर अपनी पूर्वावस्थामें

पहुँचनेके लिये तेरा जी चाहता है या नहीं? नहीं-नहीं। गिरिबालाने जब पापका व्यवसाय करना सीखा है, जब वह देह बेचकर अर्थ, अलङ्कार और अट्टालिकाओंकी कामना करना जान गयी है, तब उसके हृदयमें अनुताप अपना स्थान नहीं बना सकता। इस वक्त उसके प्रत्यावर्त्तन और आत्म-संशोधनकी आशा करना एकान्त असंगत है। वह इन्द्रिय-भोग-लालसासे इस पापमें डूबी है, उसकी पाशव-प्रवृत्ति अल्प उपभोगसेही नूतनत्व-विहीन होगयी। इस समय पापीयसी रूप-यौवनके बदलेमें अन्य लालसाओंको चरितार्थ करनेके उपादान खोज रही है। मन्दमते! तेरी इस कलङ्क-कहानीका अधिकांशही हमें अबतक गुप्त रखना पड़ा था। लोक-शिक्षाके अनुरोधसे जिस सामान्य भागको लिखना पड़ता है, उसेही लिखनेमें लेखनी बारम्बार कातर और अवसन्न हो रही है।

गिरिबालाने बहुत दिन सुरेन्द्र बाबूके साथ प्रायः समान भावसेही बिताये हैं, इसलिये समान स्वरमें बात-चीत करनेका भी उसे कुछ साहस हो गया है। वह बोली,—"सुरेन्द्रबाबू! तुम बड़े आदमी हो, सब तरहसे समथ हो, यह मैं जानती हूँ। लेकिन तुम अपने वचनोंसे डिग जाओगे, मुझ जैसी दुखियाको आशा दिलाकर निराश कर दोगे तो तुम्हारे लिये ठीक बात नहीं होगी। तुम मुझे जितनी निर्बल समझते हो, मैं उतनी निर्बल नहीं हूँ। मेरे भाई है, और भी नातेदार हैं। भैया कोई मामूली आदमी नहीं हैं, शान्तिपुरमें उनका सबसे बढ़ा-चढ़ा कारो-

वार हैं। यह तो बताओ, कि अब मैं उन्हें अपना यह कलङ्की मुँह किस तरह दिखलाऊँगी ?"

सुरेन्द्र बाबूने कहा,—"बेशक, तुम्हारे भाई बड़े आदमी हैं ! जब वे अपनी बहनकी आमदनीमें कमी होनेकी कैफ़ियत माँगेंगे, तब तुम उनसे क्या कहकर छुटकारा पा सकोगी, यह वास्तवमें भय और चिन्ताकी बात है। मैं भी उनसे थर-थर काँपता हूँ। मैं इसी फ़िक्रमें हूँ, कि कहाँ छिपकर जान बचाऊँ। तुम कृपाकर अपने भाईसे कह देना, कि वे सुरेन्द्रके ऊपर व्यर्थही क्रोध न करें !"

गिरिबाला इस समय भिखारिणी है, अतएव तृणादपि लघु है; और जो लघु है, वह तो चरित्र-हीन हुआही करता है। अतएव वह सुर बदलकर कहने लगी,—"देखो, बाबू ! तुम्हारे पास दौलतकी कमी नहीं है। अगर तुम जैसे आदमी अपनी उस दौलतमेंसे एक मुट्ठी किसी ग़रीब आदमीको देही दोगे, तो घाटा न होगा। अगर तुम्हीं मुझपर दया-माया न करोगे, तो और कौन करेगा ?"

सुरेन्द्र,—"दया ! मैं क्यों दया करूँ ? दया तो मैं किसीपर नहीं करता। जो औरत दासी होने योग्य भी नहीं, उसपर मैंने इतना अनुग्रह किया, यही क्या कम है ? दया करना दुर्बल-हृदयका काम है, मैं कायर आदमी थोड़े हूँ ?"

गिरिबाला,—"ख़ैर, मेरा विचार तुम कुछ भी मत करो, लेकिन तुम्हारी शरारतसे मेरे जो गर्भ रह गया है, उस गर्भके बच्चेपर तो दया करो। कम-से-कम उसीके लिये कुछ बन्दोबस्त कर दो।"

सुरेन्द्र बाबू फिर हँसे। बोले,—"अरे, मैंने इतने दिनोंतक विज्ञान-शास्त्रकी किसलिये आलोचना की? ऐसे स्थलपर किस प्रकारका व्यवहार करनेकी आवश्यकता है यह बात भी यदि मैं विज्ञान-पाठसे न जान सका, तो मेरी विद्या-बुद्धिही किस कामकी? जो बच्चा जन्मसे मरण-पर्यन्त मनुष्य-समाजमें लज्जा प्राप्त करनेकाही अधिकारी है, जिसके लिये पिताका नाम बताना भी मुश्किल है, उसे संसारमें न आने देनाही उसके ऊपर बड़ी भारी दया है! इस प्रकारकी दया मैं एक नहीं, सैकड़ों बार कर सकता हूँ, क्योंकि यह विज्ञान-सम्मत है।"

गिरिबाला इस विज्ञानोपदेशको न समझ सकी; लेकिन इतना अवश्य समझ गयी, कि सुरेन्द्र बाबूकी बातें कल्याण-कारक नहीं हैं। तब उसने और-और ढङ्गसे बातें करनी आरम्भ कीं, पर उसकी कोई कला न लगने पायी! आख़िर झक मारकर वह पलंगपर जा लेटी। सुरेन्द्र बाबू भी संग्राम जीत-कर तत्काल शय्यापर जा पड़े। थोड़ी देर बादही उनकी नाक बजनेका शब्द सुनाई पड़ने लगा।

कमरेके एक हिस्सेमें एक संग-मरमरकी तिपाईके ऊपर बढ़िया लैम्प जल रहा था, इसलिये वहाँ प्रकाशकी कमी नहीं थी। गिरिबालाने शय्यापर पड़े-पड़े न मालूम क्या-क्या सोचा, इसके बाद वहाँसे उठकर वह सुरेन्द्र बाबूके पलङ्गके पास आकर खड़ी हो गयी। उसे मालूम हुआ, कि बाबू गाढ़ी निद्रामें निमग्न हैं। बाबूके बक्स, दराज़ और डेस्क आदिकी तालियाँ

जहाँ रहती थीं, वह स्थान गिरिबालाको मालूम था। उसने धीरे-धीरे वहाँ जाकर तालियाँ उठा लीं। इस कार्य्यके करनेमें जो थोड़ी-बहुत खड़खड़ हुई, उससे बाबू साहबकी नींदमें किसी प्रकारका व्याघात नहीं हुआ। यह देख गिरिबालाने शनैः-शनैः बक्स वग़ैरः खोलने शुरू किये। वह बीच-बीचमें बाबूकी तरफ़ भी देखती जाती थी। इस प्रकार उसने बहुतसा सामान इकट्ठा कर एक पोटली बाँधी। इसके बाद यथा-स्थान चाभियाँ रखकर बाबूके पास जाकर देखा, कि वे पहलेकीही तरह निद्रित हैं।

इधर रात बीतने लगी। तब गिरिबाला सावधानीके साथ कपड़ोंमें उस पोटलीको छिपाकर कमरेसे बाहर निकली और नीचे सदर दरवाज़ेपर आयी। वहाँपर रामसिंह नामक दरवान, कुछ देर पहलेही सोकर जगा था। उस समय उसकी चिलम-बाज़ी चल रही थी। गिरिबालाने उससे दरवाज़ा खोलनेके लिये कहा। गिरिबालाकी आज्ञा सुनतेही राम-सिंहने व्यस्तताके साथ हुक्का नीचे रखकर दरवाज़ा खोल दिया। गिरिबालाने यहाँ बेहद धाक जमा रखी थी। वह दरवानके साथ जाने-आने अथवा उससे कहकर जानेके विषयको अब एकदम उपेक्षाकी नज़रसे देखने लगी थी। इसलिये निःसङ्कोच अकेली चली गयी।





गिरिबालाने बाबूके पास जाकर देखा, कि वे पहलेकीही तरह निद्रित हैं।"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—६८]

कर्मदेव

चौथा परिच्छेद।

एक नहीं, तीन।

गिरिबालाने घर आकर देखा, कि एक नयी स्त्री उसके टूटे फूटे मकानको अपने आलोकसे आलोकित कर रही है। वह स्त्री और कोई नहीं, हमारी सुपरिचिता तरङ्गिणीही है। धन्नू बाबू तरङ्गिणीसे केवल दो दिनोंकी छुट्टी लेकर आये थे, लेकिन दोके स्थानपर यहाँ दश दिन लग गये, तथापि धन्नूका रूप-दिवाकर तरङ्गिणीके कुञ्जाकाशमें उदित न हुआ, यह देखकर विरह-विधुरा तरङ्गिणी धन्नूकी खोजमें विना आये न रह सकी। मूर्ख कालिदासको उलटा-सीधा समझा देना, तरङ्गिणी जैसी चतुरा स्त्रीके लिये कोई कठिन काम न था। वह अनायासही मूढ़ चक्रवर्त्तीकी आँखोंमें धूल झोंक और दो-तीन दिनोंमें लौट आनेका वादा कर विदा ले आयी एवं धन्नू-रूपी श्याम-नटनागरके समीप आ, अपने तप्त प्राणोंको शीतल करने लगी। उसके आनेसे धन्नू बाबूका अहङ्कार सीमा पार कर गया। तरङ्गिणी उसे कितना प्यार करती हैं, इसका पता उपर्युक्त घटनासे अनायासही लग सकता है। जो तरङ्गिणीके इतने बढ़े-चढ़े प्रेमका पात्र है, उसे क्यों न अहङ्कार होगा? धन्नू और तरङ्गिणीने निःसङ्कोच प्यारके अभिनय दिखाकर, सबके सामने अपना देवत्व

प्रमाणित किया। हम उसका पूरा-पूरा विवरण लिपिवद्ध करनेमें असमर्थ हैं।

गिरिवाला घर आकर इस अलंकृता, सुपरिष्कृता सुन्दरीको अपनी टूटी-फूटी कुटियामें देख महाविस्मित हुई। उसने परिचय पूछना चाहा। गुणवान् भ्राताने गुणवती भगिनीको तरङ्गिणीका परिचय दिया। तरङ्गिणीको देखकर गिरिवाला मोहित हो गयी एवं भैयाकी कृपासे इस देवीके साथ परिचय होनेके कारण उसने अपनेको धन्य समझा। तरङ्गिणीके साथ गिरिवाला अनेक प्रकारकी बातें करने लगी और उसने इस बातको अब निःसन्देह रूपसे समझ लिया, कि जिस पथकी वह पाथका बन चुकी है, संसारमें उसके पक्षपातियोंकी संख्या कम नहीं, वरन् खूब अधिक है। वास्तवमें यह रास्ता परम सुखमय और अति श्लाघनीय है। अस्तु; जिस समय गिरि-वाला तरङ्गिणीके साथ घुल-घुलकर बातें कर रही थी, उसी समय उसके भाईने अस्फुट स्वरसे पूछा,—"हाँ री! मैंने जो कहा था, उसका क्या हुआ?"

भाईकी बात सुन गिरिवालाने उस समय अपनी बग़लमें छिपायी हुई पोटलीको निकालकर भाईके हाथमें दे दिया और कहा,—"खुशामद या लड़ाई-झगड़ेसे तो कोई काम सधा नहीं; आखिर तुमने जो तरकीब बतायी थी, उसीसे इतना फ़ायदा हुआ।"

धन्नू बाबू पोटलीका 'आकार' देखकर बड़े विस्मित हुए और जब उन्होंने उसे खोलकर अच्छी तरहसे देखा, तब तो



मारे खुशीके दस हाथ ऊपर उछल गये। उस समय धन्नू, तरङ्गिणी और गिरिबाला तीनों जने उस पोटलीकी सामग्री देखकर एक-एक वस्तुकी समालोचना करने लगे। उसमें घड़ी, चेन, अँगूठी, मोहर, नोट, रुपये आदि जो कुछ भी था, उसका मूल्य-निर्णय करना साध्यातीत होनेपर भी, इस बातका उन्होंने स्थिर निश्चय कर लिया, कि निःसन्देह गिरिबाला कारूँ-का ख़ज़ाना लूट लायी है।

तरङ्गिणीने कहा,—"इन चीज़ोंको देखकर ख़ाली ख़ुशियाँही मत मनाते रहो। अब यहाँसे भागनेकी तय्यारी करनी चाहिये, बिना ऐसा किये बचना मुश्किल है।"

धन्नूने कहा,—"बेशक! बेशक! लेकिन किस तरह भागना चाहिये, इसकी भी सलाह हो जाये।"

तरङ्गिणीने कहा,—"इसमें सलाह क्या ख़ाक रखी है? गिरिबालाको सीधे कृष्णनगर ले चलो। इन सब चीज़ोंको बेचनेसे जो रुपया मिलेगा, उसमेंसे थोड़ी जमा लगाकर गिरिबालाके गहने गढ़ा देना। बाक़ी रुपयेसे अपना कारोबार चलाना।"

धन्नूने कहा,—"बहुत ठीक है।"

यह सलाह गिरबालाको भी ख़ूब पसन्द आयी, क्योंकि उसने सोचा, कि अब मैं भी तरङ्गिणीकी तरह सुख-सौभाग्यकी अधिकारिणी होकर पूरे तौरसे स्वच्छन्द विचरण कर सकूँगी।

तरङ्गिणी फिर कहने लगी,—"गिरिबालाका रूप बड़ा अच्छा है। दश-बारह दिनके भीतरही यदि वह किसी राजा या

ज़मींदारकी नज़रों तले पड़ गयी, बस पौबारह हैं। फिर तो वह रानी-महारानियोंकी भाँति सुख भोगेगी।"

ऐसा सुन्दर परामर्श सुबुद्धिमती तरङ्गिणीके सिवा और कौन दे सकता है? गिरिवाला तो खुशीके मारे फूले अङ्ग न समायी। स्थिर हुआ, कि चोरीका माल फ़िलहाल तरङ्गिणीकेही पास रहे; क्योंकि ऐसा विश्वास-पात्र उनके लिये इस संसारमें और कौन होगा? धन्नू, तरङ्गिणी और गिरिवालाने स्थिर किया, कि इस गाँवसे निकल भागनेपर सब आशंकायें दूर हो जायेंगी। उस समय कोई भी उनका पता न पा सकेगा। फिर तो पकड़ जाना एक प्रकारसे असम्भव है।

जैसी सलाह हुई, तदनुसार काम भी हुआ। तरङ्गिणी जिस गाड़ीपर चढ़कर आयी थी, तीनों जने उसीपर चढ़कर चल दिये।

हाय, पाप! तुम मनुष्यको कितना हृदय-हीन पशु बना देते हो! अभागिनी गिरिवाला प्रस्थानके समय अपनी वृद्धा माताके पास भी न गयी। धन्नूकी जिन बालक-बालिकाओंका वह लालन-पालन करती थी, गृह-त्यागके समय अभागिनीने उन्हें एक दफ़ा नज़र भरकर देखा भी नहीं। इस प्रकार उन तीनों कीर्त्ति-कुशलोंने प्रस्थान किया। लेकिन हमें आश्चर्य्य है, कि इस यात्रामें उनका महाप्रस्थान क्यों न हुआ?

गिरिवालाके चले आनेके प्रायः पाँच घण्टे पीछे अर्थात् ११ बजेके समय श्रीयुक्त सुरेन्द्रनाथ महाशयकी निद्रा टूटी।

आजही नहीं, सदैव आपका प्रातःकाल लगभग दिनके बारह बजेके हुआ करता है। ख़ानसामा सन्ध्याके पाँच बजे हवा-ख़ोरीके लिये उन्हें कपड़े पहनाने आया। उस समय वहाँपर एकाएक बड़ा भारी गोलमाल सुनाई पड़ने लगा। ख़ानसामाने चाभीसे बक्सका ताला खोला, तो देखा, कि उसमें एक भी चीज़ नहीं है। घड़ी, चेन और अँगूठी—तीनों चीज़ें ग़ायब हैं। अगर यह बात बाबूसे कही जाये,तो बेचारेके सिरकी ख़ैर नहीं। आख़िर वह हक्का-बक्कासा होकर, जहाँका तहाँ खड़ा रह गया। इधर बाबू सुरेन्द्रनाथ साज-सज्जामें विलम्ब होनेके कारण क्रोधके मारे लाले-पीले होने लगे। ख़ानसामा विना असली बात कहे न रह सका। उस समय बड़ा भारी गोलमाल मच गया। इसे सुनकर दीवानजी भी वहाँ आ मौजूद हो गये। गिरि-बालाके ऊपर बहुतेरे आदमियोंको सन्देह हुआ। लेकिन उस सन्देहको प्रकट करनेका साहस किसे है? गिरिबाला बाबूकी प्रणयिनी है। उसे कौन चोर बता सकता है? अन्तमें वही ख़ानसामा, साहस करके—परमात्माके हाथोंमें अपनेको सौंप, क्योंकि राम मारेंगे, तोभी वह मरेगा और रावण मारेगा, तोभी मरेगा—बोला,—"हुज़ूर! ये चीज़ें आपने किसीको इनाममें तो नहीं देदीं?"

सुरेन्द्रबाबू क्रुद्ध स्वरसे बोले,—"इनाम कैसा रे हरामज़ादा? मैं इनाम किसे देता? जब तेरे सिवा दूसरा कोई आदमी बक्स नहीं खोलता और उसकी चाभीका पता भी तेरे सिवा किसीको

नहीं मालूम, तब उन चीज़ोंको और कौन लेगा ? मेरी समझमें तूही चोर है, तेरे सिवा और कोई आदमी नहीं ले सकता। रह, मैं आज तेरा सत्यानाश किये देता हूँ ; समझा ?"

अब तो ख़ानसामाकी तबाही आगयी। मानों यमराज सिरपर खड़े तक़ाज़ा कर रहे हैं। अतः मरणकालको सामने खड़ा देख उसका मुँह एकदम पनालेकी भाँति खुलगया। बोला,—"दोष तो मेरेही सिर मढ़ा जाता है! और अभीकी बात नहीं, हमेशासे तो ऐसाही होता आता है। ठीक ही है; लेकिन धर्म्मावतार! ये चीज़ें किसी बीबीको भी तो दी जा सकती हैं, या बीबी साहिबाही हुज़ूरसे दिल्लगी करनेके बहाने उन्हें अपने साथ ले जा सकती हैं ? ग़रीब-निवाज़! ग़रीबका गला काटनेमें बहादुरी नहीं—यह अच्छी तरहसे सोच देखें।"

सुरेन्द्रनाथने कहा—"अबे कम्बख़्त! मुझसे दिल्लगी करनेवाला दुनियामें कोई नहीं। अपनी इन बेवक़ूफ़ियोंको तू अपनेही पास रहने दे, बहानेबाज़ीसे काम न चलेगा। तू क्या यह समझता है, कि मुँहज़ोरी करके चोरी छिपालूँगा ? पाजी, नालायक़ कहींका!"

सुरेन्द्रनाथने उपरोक्त बातें गुस्सेसे भरकर कह तो अवश्य दीं, लेकिन मनहीमन वे सहसा चौंक उठे। गिरिबालाकी धन-भिक्षा, उसके साथ नवीन पद्धतिसे आविष्कृत किया हुआ शास्त्रार्थ और उसका अपने पाससे बिना कहेही चली जाना; इत्यादि सारी बातें उन्हें याद आने लगीं। उस वक़् वे नीचा सिर किये न मालूम क्या सोचने लगे। इसके बाद उन्होंने

रामसिंह दरवानको बुलवाकर गिरिवालाको ढुँढ़वानेके लिये उसके मकानपर भेजा। रामसिंहने शीघ्रही लौटकर जवाब दिया, कि "गिरिवाला, उसका भाई धन्नू और शान्तिपुरकी कोई औरत, तीनों आजही रातको शान्तिपुर गये हैं।"

सन्ध्या होचुकी थी। सुरेन्द्र बाबूने कहा,—"घोड़ा तय्यार है?"

एक नौकरने डरते-डरते कहा—"हाँ, हुजूर! तय्यार है।" सुरेन्द्रनाथ जल्दी-जल्दी नीचे उतरे। दरवान लोग हाथका हुक्का रख, खटिया छोड़, दाढ़ी-मूँछोंपर ताव देते हुए उठकर खड़े होगये और लम्बे-लम्बे सलामोंसे बाबूको अभिनन्दित करने लगे। बाबू साहब बिना किसी तरफ़ देखे कुलांचे मारकर घोड़ेपर आ चढ़े। उन्होंने आज्ञा दी,—"पाँच दरवान ढाल-तलवार लेकर मेरे साथ आयें।"

हुक्म होतेही पाँच दरवान सिरपर मुड़ासा बाँधते-बाँधते शस्त्रास्त्र लेकर बाबू साहबके पीछे-पीछे दौड़ चले। यह बात सबने अच्छी तरह समझ ली, कि आज किसी न किसीके घरपर आफ़तोंका पहाड़ टूटनेवाला है।

अनुमान सत्य हुआ। धन्नू बाबूके घरके सामने जाकर, सुरेन्द्रनाथने अपने दरवानोंको उसकी माको पकड़कर ले आनेका हुक्म दिया। वृद्धा थर-थर काँपती और दरवानोंके धक्के खाती हुई बाबूके सामने हाज़िर हुई। बाबूने उसकी पीठपर चाबुक मारकर पूछा,—"बोल हरामज़ादी! तेरी लड़की कहाँ है? तेरा लड़का क्या हुआ?"

वृद्धा हाय-हाय करके रोने और कहने लगी,—"दुहाई बेटा! मुझे नहीं मालूम, कि वे कहाँ गये। उन लोगोंने जाते वक्त मुझसे कुछ भी नहीं कहा।"

बाबूने कहा,—"जाओ, सिरके बाल पकड़कर धन्नूकी बहूको घसीट लाओ।"

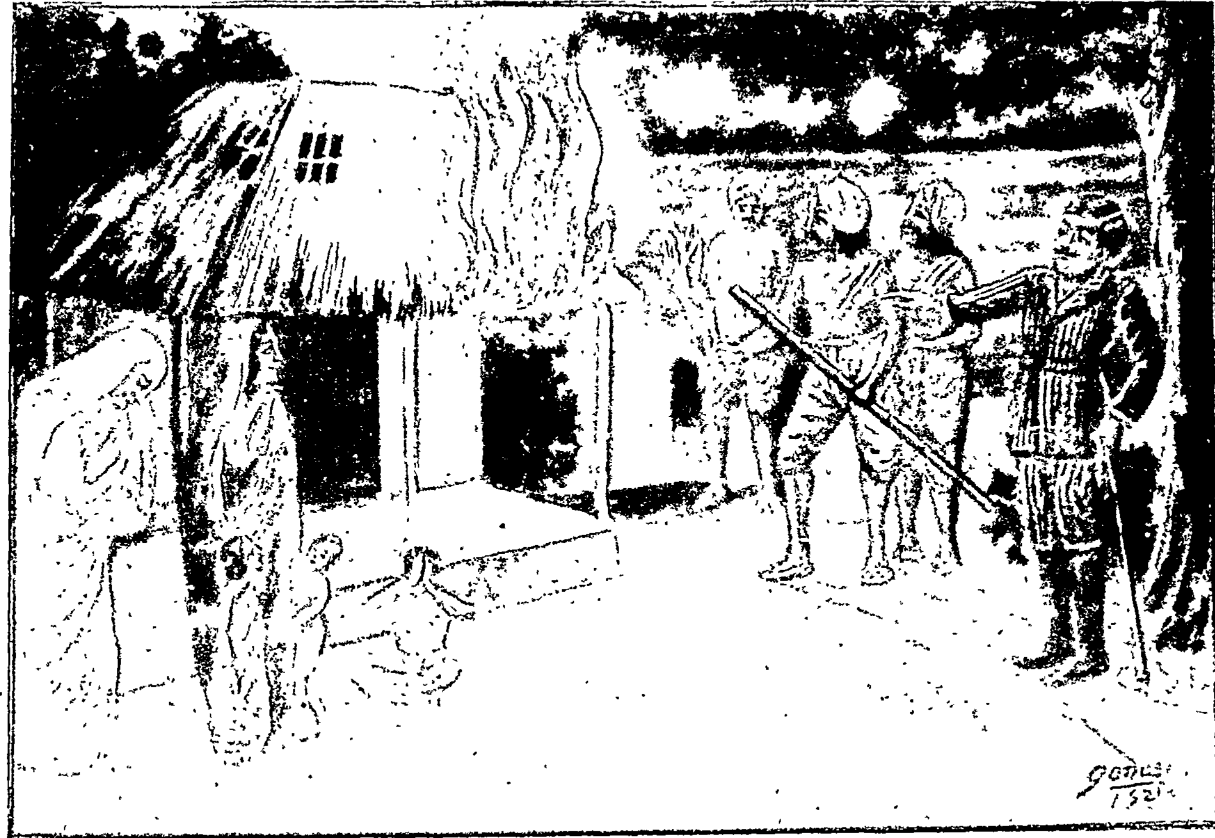
नमकहलाल दरवान सिरके बाल पकड़कर धक्के देते हुए धन्नूकी जवान बहू मोहिनीको भी उस नर-प्रेतके सामने ले आये। उसके बच्चो-बच्चे रोते-रोते ज़मीन-आसमान एक करने लगे।

बाबू साहब घोड़ेसे उतर पड़े। धन्नूकी मा बाबूके पैर पकड़कर बोली,—"तुम हमारे धन-मानके मालिक हो। दुहाई बेटा! मेरी बहूकी बेइज़्ज़ती मत करो।"

सुशिक्षित सुरेन्द्रनाथने बूट-मण्डित पदाघातसे धन्नूकी माको दूर हटादिया और मेघकी तरह गरजकर रोदनशीला वधूसे पूछा—"तू ज़रूर जानती होगी। बता धन्नू और गिरिबाला कहाँ हैं? अगर भला चाहती है तो जल्दी बोल, नहीं तो सत्यानाश कर दूँगा।"

मोहिनी नीचा सिर किये रोती-रोती बोली,—"आप विश्वास करें, मुझे सचमुच नहीं मालूम, कि वे कहाँ गये। हम लोग ग़रीब हैं, निरुपाय हैं। आप हमारे ऊपर ज़ोर-ज़ुल्म करना चाहते हैं, तो भले ही करें; लेकिन सबके ऊपर परमात्मा है, वह हमारी-आपकी बातोंको हरदम देखता रहता है।"

सुरेन्द्र बाबू अत्यन्त क्रोधसे भरकर बोले,—"चुप रह, हरामज़ादी!" अपने दलबलकी तरफ़ नज़र डालकर कहा,—



"घरमें आग लगा दी गयी। पुराना घर धू-धू करके जलने लगा।"

Burman Press, Calcuta.

[पृष्ठ—१०७]

"धन्नूके घरके चूहेतक बदमाश हैं। गिरिवाला हमारी चीज़ें चुराकर कहाँ भाग गयी है, यह बात ये लोग निश्चय ही जानती हैं, पर सहजमें नहीं बतायेंगी। इनपर रहम करनेकी कुछ दरकार नहीं। तुम इनके घरमें आग लगा दो।"

धन्नूकी मा ऊँचे स्वरसे रोने लगी, लेकिन उसकी स्त्री चुप रही। वह अपने बच्चोंका हाथ पकड़कर आकाशकी तरफ़ देखती हुई चुपचाप खड़ी रही।

झूठ नहीं, सचमुच घरमें आग लगादी गयी। पुराना घर धू-धू करके जलने लगा। घरमेंसे बासन, भाँड़े, कपड़े, लत्ते, कुछ भी नहीं निकाले जासके। निकाले कौन? किसीने एक बूँद पानीसे आग बुझानेका भी यत्न नहीं किया। बुझानेके लिये दो सिर कौन लाता?

सुशिक्षित सुरेन्द्र बाबू अब घोड़ेपर चढ़कर वहाँसे चले गये। वे जिन्हें आश्रयहीन करके सड़कपर बैठा गये थे, उन्होंने उनकी तरफ़ एक दफ़े नजर भरकर देखा तक नहीं।

धन्य सुरेन्द्रनाथ! तुम्हारे ज्ञान, मान और पाण्डित्यको सौ बार धन्यवाद है। गिरिबालाके पापके लिये, धन्नूकी पुत्र-कन्या और पत्नीको पथका भिखारी करना, जिस तर्क-शास्त्रके द्वारा अनुमोदित है, वह सचमुच अनोखा है। सुरेन्द्रनाथ! तुम मूर्ख क्यों नहीं हुए? सुरेन्द्रनाथ! तुम नीच कुलमें क्यों नहीं पैदा हुए? अगर होते तो तुम्हारी मूर्खताको देख, तुम्हारे हीन-जन्मकी आलोचनाकर, संभव था, कि संसार तुम्हारे अपराधोंको किञ्चित्

परिमाणमें क्षमा कर देता। लेकिन तुम तो सुपण्डित हो, ज्ञानके गर्व्वसे गर्व्वित हो, आत्माभिमान और बुद्धिमदसे उन्मत्त हो,—हाय! तुम्हारा ऐसा व्यवहार? हायरी दौलत! इस संसारमें तेरी लीला अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। पात्र-विशेषसे तुम अशेष शुभ संगठनोंकी निदानभूता होकर वसुन्धराका दुःख-स्रोत एकदम बन्द करदेती हो। पर स्थान-विशेषमें तुम्हाराही प्रताप जगत्‌की हाहाकार-ध्वनिको बढ़ाकर, दारुण नरकका विभीषिका-पूर्ण चित्र मनुष्य-दृष्टिके सामने स्थापित कर देता है। जाओ विलासी, स्वार्थ-पर, निष्ठुर, इन्द्रिय-परायण और अविवेकी सुरेन्द्रनाथ! वेगगामी अश्व-पृष्ठपर चढ़कर शरीरको हिलाते-डुलाते, वसुन्धराको तृणवत् समझते हुए, मनुष्योंको क्षुद्रादपि क्षुद्र कीड़ोंकी भाँति मानते हुए अपने विलास-मन्दिरमें चले जाओ। आज जिन निरपराध स्त्रियों और बच्चोंको अत्याश्चर्य्य सुविचारके साथ तुमने सड़कके पेड़ोंके नीचे आश्रय देकर अपने घरको प्रस्थान किया है, उनकी कातरताका अनुभव कर तुम्हारे हृदयमें क्या तनिक भी दुःख नहीं होता? यदि हो भी तो उन बातोंका ख़याल करनेसे क्या फ़ायदा? किन्तु सुरेन्द्रनाथ! तुम्हारी यह कलङ्क-कालिमा सैकड़ों बार धोनेका यत्न करनेपरभी कभी नहीं धुल सकेगी। आज, कल या और कुछ दिनों बाद तुम्हें इस दारुण दुष्कृतिका फल भोगना ही पड़ेगा। यह जो दुःखिनी, अपनी पुत्र-कन्याका हाथ पकड़े आश्रय-हीना होकर आकाशकी तरफ़ देख रही है, समझते हो, वह किसको अपनी दुःख-गाथा सुना रही

है? यह कामिनी अपनी अवस्थाको दिखाकर कौनसे विचारालय-में तुम्हारे विरुद्ध अभियोग उपस्थित कर रही है? यह अभागिनी किसे अपना गवाह बनाकर तुम्हारे ख़िलाफ़ अपनी तरफ़से गवाही दिला रही है? समझे! नहीं, तुम समझनेवाले आदमी नहीं हो। अच्छा हम बताते हैं, सुनो; यह धन्नूतेलीकी स्त्री न्याय और धर्म्मके स्थापयिता, ज्ञान और मुक्तिके प्रतिष्ठाता, सत्य और सत्यताके निदान, सर्व-नियन्ता, सर्वाश्रय, सर्वदर्शी, विपन्न-बान्धव, दीन-सहायक नारायणके विचारालयमें अपनी फ़र्याद पहुँचा रही है। उस विचारालयमें धन-सम्पत्तिके प्रभाव-से विचारोंका तारतम्य नहीं है। धनी-दरिद्रका भेद नहीं है, स्वामी और नौकरका लिहाज़ नहीं है और न राजा-प्रजाहीकी भिन्नता है। तुम्हारी धन-सम्पत्ति, तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी स्वार्थ-परता, तुम्हारी अलौकिक युक्तियाँ, तुम्हारा अद्भुत ज्ञान और विद्या, वहाँपर इनमेंसे कोई भी तुम्हारी रक्षा न कर सकेगा। उस दिन, उस विचारालयमें, यह पद-विदलिता नारी, तुम्हारी अपेक्षा अत्युच्च स्थानपर विराजमान होगी। और तुम उस समय निःसीम विपत्ति-सागरमें गोते खाते होगे। अहंकृत सुरेन्द्रनाथ! वह दिन बहुत दूर नहीं है।

अग्नि-देवने शीघ्रही उस जीर्ण और सामान्य घरको जलाकर ख़ाक कर दिया। उस वक्त रात बहुत कुछ बीत चुकी थी। सुरेन्द्रनाथके भयसे किसी आदमीने अपने घरमें इस अभागे परिवारको,केवल एक रात बितानेभरको,आश्रय नहीं दिया। जब

एक-एक करके आगकी सब चिनगारियाँ अदृश्य होगयीं, तब घन्नूकी स्त्री एक गहरा श्वास छोड़कर बोली,—"यदि मैं साध्वी हूँ, तो भगवान् मेरी इस दुःख-पूर्ण अवस्थापर अवश्य विचार करेंगे। आजसे मेरा घर वृक्षकी छाया ही है। बहुत अच्छा, यहाँ भी सन्तोष है, शान्ति है।"

बातके समाप्त होतेही समीपके एक पेड़की आड़से एक आदमी धीरे-धीरे इस विपन्न परिवारके समीप आया और बोला,—"भगवान् ज़रूर इस अत्याचारपर 'अपनी' अदालतमें विचार करेंगे। लेकिन तुम्हारा घर वृक्ष-छाया क्यों होगी? मा! कन्याको गोदमें लो, मैं पुत्रको लेता हूँ, वृद्धा सासूका हाथ पकड़कर मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ। मैं तुम्हें एक निरापद स्थानपर पहुँचा दूँगा।"

क्या पाठकोंने पहचाना, कि यह आदमी कौन है? वह कृष्ण-नगरका दूकानदार और हमारा पूर्व-परिचित मूर्ख यदुनाथ है।

वह इस असमयमें यहाँ कैसे आया?



पांचवां परिच्छेद।

पलायन।

बहुत डरते-डरते धन्नू, तरंगिणी और गिरिबालाने राजीवपुरसे प्रस्थान किया। उस समय उनके पास बहुतसा धन था, अतएव मनही-मन मन-मोदक उड़ाना उनके लिये कोई असंभव बात नहीं। लेकिन इस चिन्तासे, कि कहीं ऐसा न हो, कि सुरेन्द्रनाथ हमें यहीं और अभी आकर पकड़लें, उनकी जान घपलेमें थी। वे भयके मारे थर-थर काँप रहे थे। गिरिबाला कहती,—"आपलोग डरें नहीं, दो-चार दिनतक बाबूके कानोंपर जूँ भी न रेंगेगी।" गिरिबाला वास्तवमें बाबूकी प्रकृतिको पहचानती है, इसलिये उसकी बात विशेष रूपसे विश्वास करने योग्य थी। लेकिन इतना होनेपरभी तीनोंमेंसे एक भी निःशंक न होसका। विधाता! धन्य है तुम्हारी सुव्यवस्था। अपराधी इसी प्रकार सदा दण्ड भोगा करते हैं।

उन्होंने शान्तिपुर जा गहने वगैरहको कृष्णनगरमें बेचनेका संकल्प कर लिया। यह भी स्थिर हुआ, कि बेचनेसे जो धन मिलेगा, वह फ़िलहाल तरंगिणीके ही पास धरोहरकी भाँति रहेगा। बादको आवश्यकतानुसार उसका उचित व्यवहार किया जायेगा। कुछ दिन शान्तिपुरमें रहकर, अन्तमें कृष्णनगर-

में निवास होगा। वहाँपर गिरिबालाके लिये कोई भारी असामी ढूँढ़ा जायेगा। धन्नू, गिरिबालाका बड़ा भाई है, इसलिये छोटी बहनका शुभाशुभ सोचना उसका परम कर्त्तव्य है। भला ऐसा भाई क्या सबको नसीब होता है?

इन परम धर्म्म-ज्ञान-सम्पन्न तीनों व्यक्तियोंको लिये हुए बैलगाड़ी बहुत जल्द शान्तिपुरके पास जा पहुँची। गाँवमें प्रवेश करनेसे पहले सबने देखा, कि पासमेंही पेड़के नीचे एक पालकी रखी हुई है, एक बाबू साहब पालकीपर ठेस दिये खड़ेही खड़े हुक्का पी रहे हैं। गाड़ी और पास आयी। धनुआ और गिरिबालाने देखा, कि बाबूका हुक्का चाँदीका है, उनके गलेमें सोनेकी साँकल पड़ी हुई है। बाबू बड़े ख़ूबसूरत भी हैं। तरंगिणीको बाबूकी मूर्त्ति और भी सुन्दर तथा रहस्यमयी मालूम पड़ी। गिरिबालाको तीक्ष्ण दृष्टिसे देखनेपर मालूम हुआ, कि बाबूकी घड़ी और चेन भी सोनेकी हैं। चेनमें कई हीरे भी हैं। तरंगिणीने और भी देखा, कि बाबूकी आँखें मानों स्वयं विधाताके हाथकी बनी हुई हैं, वर्ण तपे हुए सोनेके जैसा है, मूँछें देखनेके लायक़ हैं। इधर धन्नू और गिरिबालाने देखा, कि बाबू रेशमी क़मीज़ पहने हुए हैं, पाँवोंमें वार्निश किया हुआ विलायती जूता है। तरंगिणीको बाबूकी चौड़ी छाती, सर्व्वाङ्ग-सुन्दर गठन ख़ूब पसन्द पड़ी। बाबूकी तम्बाकूकी गन्धने धन्नूकी नाकमें प्रवेश किया। धन्नू बेचारेको यह बात बिलकुल मालूम नहीं थी, कि तम्बाकू इतनी सुन्दर वस्तु है। तम्बाकूसे



राजा अरविन्दकुमार राय।

"सबने देखा, कि एक बाबू साहब पालकी पर ठेस दिये, खड़े-खड़े हुक्का पी रहे हैं।"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—११२]

उसके मन-प्राण एकदम सुगन्धमय हो उठे। धन्नू अब इस ताकमें लगा, कि एक दम मैं भी पीलूँ। वह गाड़ीसे उतर पड़ा और आजिज़ी दिखलाते हुए बाबूके पास जाकर बोला,—"क्यों बाबू साहब, आप ब्राह्मण हैं?"

बाबूने उत्तर दिया,—"हाँ।" धन्नूने बड़ी नम्रताके साथ प्रणाम किया। बाबू मुस्कराते हुए मधुर कण्ठसे बोले—"आशीर्वाद। तुम भी तम्बाकू पीते हो क्या?"

परम आनन्दके साथ हाथ जोड़कर धन्नू बोला,—"आपकी तम्बाकू बड़ी बढ़िया है। हमलोग ग़रीब हैं,इतनी बढ़िया तम्बाकू हमें कब पीनेको मिलती है?"

धन्य तम्बाकूदेव! भूभार-हरण करनेके लिये बड़े शुभ मुहूर्त्तमें तुम्हारा जन्म हुआ था। तुम्हारे प्रसादसे कितनेही क्षुद्र आदमी, बड़े-बड़े पुरुषोंके मित्र होजाते हैं। जिससे किसी तरह मेल-मुलाक़ात नहीं होसकती, उससे तुम सहजही परिचय और सौहृद्यका सूत्रपात करा देते हो। नहीं तो ऐसे समृद्धि-सम्पन्न ब्राह्मण-युवाके साथ वेश्या-सेवी धनुआ तेलीकी किस तरह बात-चीत होती?

दूरपर—एक दूसरे पेड़के नीचे बाबूके आठ कहार, एक दरवान, एक ख़ानसामा और उनके दीवान साहब बैठे हुए थे। बाबूके पास एक अपरचित व्यक्तिको आते देख, मय ढाल तलवारके सुन्दर सिपाहियाना पोशाक पहने दरवान पालकीके पास दौड़ा हुआ चला आया। बाबू उसे दूरही रहनेका इशारा कर

एक कहारसे बोले—"रामा, जा शूद्रोंके हुक्केमें पानी भरकर ले आ।"

धन्नूकी गाड़ी और भी पास आगयी। गाड़ीके भीतर बैठी हुई सुन्दरियोंने गाड़ीवानसे गाड़ी रोकनेके लिये कहा। बाबूकी दृष्टि गाड़ीके भीतर गयी। एकबार तरंगिणी और एकबार गिरि-बालाकी नज़रसे उनकी नज़र मिली। तरंगिणी धीरेसे मुस्करा दी। वह मोहित हो एकटक देखती रही। इतने बड़े बाबूके सामने ख़ानसामा धन्नूको हुक्का लाकर देगा, इसे एक शर्मकी बात समझकर धन्नू स्वयं उस दूरस्थ वृक्षके नीचे गया एवं दीवान-से बात-चीत करके मालूम कर लिया, कि जिनको उसने अबतक बाबू समझ रखा था, वे रामपुरके राजा हैं, नाम राजा अरविन्द कुमार राय है, चार-पाँच लाख रुपये सालकी आमदनीहै, जातिके ब्राह्मण हैं और अवस्था अभी पच्चीस सालकी है। वे शान्तिपुरके बड़े-बड़े मन्दिरोंको देखने आये हैं। शान्तिपुरमें कुछ दिनों रहनेका भी विचार है, क्योंकि यह स्थान उन्हें ख़ूब पसन्द आया है। ऐसे असाधारण व्यक्तिके साथ सहजमें ही परिचय हो जानेसे धन्नूने अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझा और यह सुसंवाद अपने आदमियोंको सुनानेके लिये गाड़ीकी तरफ़ दौड़ा। गाड़ी-के पास पहुँचकर देखा, कि उसके मनमें जिस बातकी इच्छा थी, भगवान्‌ने वही बात करदी। उसने देखा, कि राजाकी तरफ़ देखकर गिरिबाला रह-रहकर कुछ मुस्कराकर सिर नीचा कर लेती है, राजा भी धीरेसे मुस्करा देते हैं।

धन्नूको गाड़ीके पास जाते देख राजाने पूछा,—"क्योंजी, तुमने हुक्का नहीं पिया?"

धन्नू बोला,—"जी! अभी आता हूँ।"

धन्नूने गाड़ीमें जाकर राजाका समस्त परिचय गिरिवाला और तरंगिणीको दिया। तरंगिणी सारी बातें सुनकर मनही मन सोचने लगी,—'दाँव तो पूरा पड़ा है।' फिर उसने भी राजासे नज़र मिलाकर थोड़ा हँस दिया। राजाने भी एक दफ़ा गिरिवालाकी नज़रसे नज़र मिलायी। यह शुभ लक्षण न होनेपर भी, तरंगिणी लालसा-सूचक नयन-वाण छोड़े विना न रही। उसने सोचा, कि राजासे थोड़ी देरके लिये बातचीत हो जाये, फिर तो अपनी ही जीत रहेगी। राजाने धन्नूसे पूछा—"ये तुम्हारी कौन होती हैं?"

धन्नूने कहा,—"हुजूर एक तो मेरी बहन है और एक—एक मेरी बहुत निकटकी सम्बन्धिनी है।"

राजा थोड़ा हँसकर बोले,—"जिनकी उम्र कम है, मालूम होता है, कि वे ही तुम्हारी बहन हैं। तुम इन्हें कहाँ लिये जाते हो?"

राजाकी इस बातको सुनकर तीनोंके मनमें तीन तरहकी बातें पैदा हुईं। तरंगिणीने सोचा,—"इतनी बड़ी मछली क्या आख़िर गिरिवालाके जालमेंही फँसेगी? क्या मेरी सुन्दरता ख़ाकमें मिल गयी?" गिरिवालाने सोचा,—"एक ज़मींदारको ख़ुश करनेके लिये जिन-जिन गुणोंकी आवश्यकता है, वे सब मुझमें मौजूद हैं।

अच्छा मौक़ा मिला ! एक ज़मींदारको छोड़कर आयी, दूसरा झट मिल गया। भगवान्‌ने मेरा भाग्य कैसा अच्छा बनाया है, बाक़ी सब अभागे हैं।" धन्नूने सोचा,—"ईश्वर बड़ा ग़रीबनिवाज़ है। जो कुछ सोचकर घरसे निकला था, वह तो यहीं पूरा होगया। अगर इतना बड़ा राजा गिरिवालाके फन्दे में फँस जाये, तो फिर किसी चीज़की ज़रूरत न रह जायेगी।" धन्नू महा आनन्दके साथ बोला,—"शान्तिपुरके बड़ेबाज़ारमें मेरी एक बहुत बड़ी दूकान है। आज हमलोग वहीं रहेंगे।"

राजाने पूछा,—"आज दूकानपर रहोगे, इसके बाद ?"

"जी, इसके बाद,—इसके बाद महाराजका जैसा हुक्म होगा।"

इस उत्तरपर राजा हँस पड़े। बोले—"अच्छा। देखो, बहुत वक़्त बीत गया है, तुम लोग जलपान क्यों नहीं करते? पालकीके कहारोंके पास अपने गाड़ीवानको बैठनेके लिये कहकर तुम लोग खाओ-पियो। शान्तिपुर तो आही पहुँचे हो, थोड़ी देर यहीं विश्राम करो। वह देखो—सामने मैदानमें जो डेरे-तम्बू पड़े हैं, वे अपनेही हैं। तुम्हारी इच्छा हो, तो वहाँ जा सकते हो। मैं भी चलता हूँ।"

धन्नू अपनी इच्छा पूरी होनेका ऐसा सहज अवसर देखकर कृतार्थ होगया। वह गिरिवाला और तरंगिणीके साथ चोरी-की चीज़ोंवाली पोटली लेकर राजा साहबके साथ-साथ चल दिया और शीघ्रही सुदृश्य पट-मण्डपमें जा पहुँचा। वहाँकी

शोभा और ऐश्वर्य्य देखकर धन्नू एवं उसके साथी अवाक् रह गये। ग़लीचे, पर्दे, पलँग, कुरसी, टेबिल, गद्दी और बिछौने इत्यादि प्रायः सभी चीज़ें उनके लिये अपूर्व और चमत्कारिक थीं। उनलोगोंके वहाँ जाकर बैठनेके बाद, राजा साहबके हुक्म-से एक नौकर बड़े-बड़े चाँदीके थालोंमें पूरी, कचौरी आदि बढ़िया-बढ़िया खानेकी चीज़ें और सोनेके गिलासोंमें जल ले आया। अनंतर राजाने स्वयं उठकर आलमारीके भीतरसे एक तारोंसे बँधी बोतल बाहर निकालते हुए कहा,—"यदि अभ्यास हो, तो इसे भी इच्छानुसार पियो। मैं तो सवेरे पी चुका हूँ—इसलिये लाचार हूँ, नहीं तो मैं भी तुम्हारा साथ देता।" बोतलके साथ तीनोंका ही यथेष्ट सम्बन्ध था; अतएव तीनों ही उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। धन्नूके आ-नन्दकी तो कोई सीमा ही न रही। तरंगिणी कुछ सोचमें पड़ गयी। गिरिबाला घमण्डमें फूली हुई है। वह इस समय मनहीमन सोच रही है,—"मेरा रूप वास्तवमें अलौकिक है। नहीं तो सब लोग मुझे देखतेही क्यों मोहित होजाते? राजा साहब ज़रूर मेरे ऊपर मोहित हो गये हैं।" तरंगिणीकी इस चिन्ताशीलताको राजा साहब अच्छी तरह समझ गये और शीघ्र ही उन्होंने इसका कोई सुन्दर उपाय करदेनेका संकल्प भी कर लिया। दो-चार बार गिलासके घूम-फिर आनेके बाद तरंगिणी-के सिवा प्रायः सभीका कण्ठ-स्वर ऊँचा होगया। धन्नू और गिरिबाला राजा साहबको कोई ग़ैर आदमी नहीं समझते थे, इसी-

से अब दोनों जने उनसे घुल-घुलकर बातें कर रहे हैं। इधर-उधरके प्रसंगोंकी समाप्तिके बाद गिरिबालाने राजा साहबसे कहा,—"राजा साहब, तुम जैसी अँगूठी पहन रहे हो, मेरे पास भी वैसीही एक अँगूठी है। दिखाऊँ क्या?"

हतभागिनीने एकदम 'तुम' कहना शुरू कर दिया। राजा हँस पड़े। बोले,—"ज़रूर होगी, न होनेकी कौनसी बात है?"

गिरिबालाने चुरायी हुई पोटलीको खोलना आरम्भ कर दिया। बहू कहने लगी—"रहने दे, गिरिबाला! अभी रहने दे।" लेकिन गिरिबालाने एक न सुनी। वह पोटली खोलने लगी। राजाने तरंगिणीसे अस्फुट स्वरमें कहा,—"तुम भला क्यों इस तरह चुप-चाप बैठी हो? बातें करो न।"

तरंगिणी गहरे पानीकी मछली थी। राजाके ऐसा कहने-पर भी वह न पिघली। मन ही मन जलती हुई धीमे स्वरसे बोली,—"महाराज! हम बुढ़ियोंसे कौन बातें करेगा?"

राजाने कहा—"कुन्ती-देवी स्थिर-यौवनाही रहती हैं। मज़ा पुराने चावलोंमें ही है। सबमें तुम्हीं तो पदार्थ हो!"

यह बात तरंगिणीको बहुत अच्छी लगी। वह तीखे नयनों-से कटाक्ष मारती हुई कुछ हँसी। गिरिबाला पाँच अँगूठियाँ लेकर राजा साहबके पास आयी और इतनी भिड़कर बैठ गयी, कि राजाके शरीरसे उसका शरीर छूगया। राजा अपना शरीर बड़ी सावधानीके साथ टेढ़ा करके बैठ गये। बोले—"वाह, बड़ी अच्छी अँगूठियाँ हैं! ये किसने दीं? वाह, इनमें तो कुछ

लिखा हुआ है—'सुरेन्द्रनाथ मित्र, ज़मींदार।' राजीवपुरके सुरेन्द्र बाबू मालूम पड़ते हैं। तुम क्या उन्हींकी सब्ज़परी हो?"

धन्नू मनमें कुछ खिन्न हो रहा था। सुरेन्द्र बाबूका नाम कानोंमें पड़तेही वह एकदम बोल उठा,—"क्या अँगूठीमें सुरेन्द्र बाबूका नाम लिखा हुआ है? फेंक दो। गिरिबाला! उन्हें फेंक दो। नहीं तो हम सब पकड़ लिये जायेंगे। क्यों राजा साहब! पकड़ लिये जायेंगे या नहीं?"

राजाने कहा,—"तो क्या ये मिली हुई नहीं हैं? तब तो अच्छा है! वह बड़ा बना हुआ आदमी है। कभी किसीको इनाममें एक पैसा भी नहीं देता। उसके जैसे आदमीसे बिना इस प्रकार हथियाये और किसी तरहसे मिलही नहीं सकता।"

गिरिबाला बोली,—"मालूम होता है, कि उस मूज़ीका नाम अँगूठियोंमें खुदा हुआ है। तो भैय्या! हम तुमसे एक बात कहते हैं। हमलोगोंको ग़रीब समझकर कोई पकड़ ले, तो उसका इलाज तुम्हें ही करना पड़ेगा। उसने मुझे बड़े-बड़े दुःख दिये हैं।"

राजा सब मामला भली भाँति समझ गये। धन्नू बाबूको अब नींद आने लगी।

गिरिबालाने कहा,—"मेरा इसमें कुछ क़ुसूर नहीं,। उसने कई दफ़े कहा था, कि मैं तुम्हें बहुतसा माल दूँगा। पर उसने कभी फूटी कौड़ी भी नहीं दी। अब बताओ, अगर मैं ऐसा काम न करती, तो क्या करती? राजा साहब! अब मैंने सुरेन्द्रके मुँहपर झाड़ू मार दी, अब तुम्हीं मेरे सब कुछ हो।"

यह कहकर वह उन्मादिनी कुलटा राजाको गलेसे लगानेके लिये उनके ऊपर आने लगी। राजा उठकर खड़े होगये और बोले—"यह तुमने बहुत अच्छा किया; लेकिन पकड़े जानेका डर है! ज़रा सावधान रहनेकी ज़रूरत है।"

तब गिरिबालाने गिरते-पड़ते बक्सके पास जाकर उसे उठाया। इस प्रकारकी क़ीमती चीज़ें पासमें रहनेसे वे निःसन्देह पकड़े जायेंगे, यह बात थोड़ी देरके परामर्शके बाद सब जने अच्छी तरह समझ गये। अब तरंगिणीने एक प्रस्ताव पेश किया। वह यह, कि "अगर ये चीज़ें राजा साहबके पास रख दी जायें तो कैसा हो? राजा साहब अमीर, निर्लोभी और साथही बड़े आदमी हैं। उनके पास इन चीज़ोंके रहनेसे किसकी ताक़त है, जो कुछ कह सके?"

प्रथमतः अपना वयसाधिक्य, अपनी अनुराग उत्पन्न करनेवाली बातें और उसपर गिरिबालाके राजाके गलेसे चिपटने जाते वक्त उनका सावधान होकर उठ जाना—इत्यादि देखकर तरंगिणीने स्थिर कर लिया, कि मुँहसे राजा साहब भले ही गिरिबालाके साथ मीठी-मीठी बातें करें, लेकिन असलमें वे मेरे ही ऊपर रीझे हैं।

रीझनेकी बात भी है! यदि यह गौरव बाज़ारमें बैठनेवाली औरतोंको न होगा, तो क्या उस बेशऊरको होगा? तरङ्गिणी अच्छी तरह समझ गयी, कि अगर ये दो दुश्मन उसके साथ न होते, तो राजा उसकी गुलामी करनेको झट तैयार होजाते।

और अब भी ज़रा मौक़ा मिल जाये, तो फिर देखो, कैसा जाल फैलाती हूँ! तरङ्गिणीने प्रस्ताव किया, कि चुराये हुए मालकी पोटली राजाके पास रख दी जाये। क्या पाठक इस प्रस्तावका अन्तरङ्ग समझे? इसमें एक कौशल छिपा हुआ है। उसके मनमें लोभ था, कि अगर ये चीज़ें राजाके पास रख दी जायेंगी, तो अनेक कौशलोंसे मैं अकेली ही उनकी हक़दार बन जाऊँगी। इसके सिवा उसने सोचा, कि यह माल फ़िलहाल अपने पाससे दूर कर देना ही ठीक है, नहीं तो चोर बनना पड़ेगा। इसलिए पानीमें फेंक देनेकी अपेक्षा मालको ऐसे स्थानपर रख देना चाहिये, जहाँसे दुबारा मिल जानेकी भी आशा रहे।

तरङ्गिणीकी रायमें धन्नूकी राय भी मिल गयी। अन्ततः गिरिबालाको भी इसके लिये सम्मत हो जाना पड़ा। सबके अनुरोधसे राजा साहबने अपनी नोट-बुक निकाली। कहा,—"परन्तु यदि मुझे शीघ्र ही स्वदेश जाना पड़े, तो तुम्हें उसी समय अपनी चीज़ें वापिस ले लेनी पड़ेंगी।"

गिरिबाला बोली,—"अगर तुम जाओगे, तो मैं भी तुम्हारे सङ्ग चलूँगी। मेरी चीज़ें उस समय भी तुम्हारे पास रहेंगी। लौटानेकी कुछ ज़रूरत नहीं।"

राजाने कहा,—"अच्छी बात है। अब दोपहरका समय हो गया। मैं शान्तिपुर जाऊँगा, आपलोग भी चलें। अब वहीं आपलोगोंसे भेंट होगी। मेरे दीवानके साथ जाकर आपलोग मेरा डेरा देख आयें। गङ्गाके किनारे बड़े-बड़े खम्भोंवाले

मकानमें मेरा डेरा है। जिससे पूछेंगे, वही उस मकानको दिखा देगा।"

धन्नूकी इच्छा यहाँसे उठकर जानेकी नहीं थी। लेकिन जब राजाही नहीं ठहरेंगे, तब वे लोग यहाँपर पड़े-पड़े क्या करेंगे? अतः गिरते-पड़ते सब जने गाड़ीकी तरफ़ चले।

राजाने अपने दीवानको पुकारकर कहा,—"ये लोग बड़े ख़राब आदमी हैं;बड़ी स्त्री कालिदासकी उपपत्नी तरङ्गिणी है और छोटी, धनुआ तेलीकी बहन, गिरिबाला है। मालूम होता है, कि गिरिबाला गर्भिणी है। तुम इनके साथ जाओ। देखो, ये लोग कहाँ जाते और क्या करते हैं? मैंने बहुतसी बातोंका पता लगा लिया है। बाक़ी बातोंका, जिस तरह हो सके, तुम पता लगाओ।"

राजा पालकीमें जा बैठे। दरबान और ख़ानसामा पीछे-पीछे चल दिये। उधर द्वन्द मचाते हुए हमारे उन मतवालोंने भी अपनी गाड़ी हाँक दी। दीवानजी गाड़ीके पीछे लगे।

छठवाँ परिच्छेद।

नयी लगन।

धन्नूबाबूका दल खूब धड़ल्लेसे शोर-गुल मचाता हुआ लगभग तीन बजेके शान्तिपुर जा पहुँचा। शान्तिपुरमें आकर वे लोग कालिदास चक्रवर्त्तीके मकानपर नहीं गये। धन्नूकी जो एक नाममात्रकी दूकान थी, वहाँ भी नहीं गये। फिर कहाँ

ठहरे ? बाज़ारमें, एक किरायेके मकानमें। इस प्रकार रहनेके लिये तरङ्गिणीकाही विशेष आग्रह था। और जब तरङ्गिणीका आग्रह है, तब बेचारा धन्नू कभी उसमें चीं-चपड़ थोड़ेही कर सकता है ? तरङ्गिणीकी और उसकी राय एक है। तरङ्गिणीं घर क्यों न गयी ? इन कई दिनोंके असाक्षात्‌के बाद वह शीघ्रतासे घर जाकर विरह-विधुर कालिदासको सुखी करनेके लिये व्याकुल क्यों नहीं हुई ? इन सब प्रश्नोंका उत्तर हम नहीं दे सकते, वरन् एक अनुमान कर सकते हैं। हमें मालूम होता है, कि राजाको देखनेके बादसे तरङ्गिणीके हृदयमें एक दुराकांक्षा और दुरभिसन्धि पैदा हो गयी है। वह समझती है, कि यदि कहीं अकेलेही राजासे मिलनेका मौक़ा हाथ आ जायेगी, तब वह निःसन्देह उनके हृदयकी स्वामिनी बन जायेगी। घर पहुँच जानेपर वैसा सुयोग मिलना एकदम असम्भव हो जायेगा। राजाके पास जो उसने नक़द मालकी पोटली धरोहर रखवायी है, उसकी भी मालकिन अब एकमात्र वही है। राजाके साथ आलाप-परिचय होनेका ऐसा सुन्दर अवसर छोड़कर घर जानेसे वे लाभ एकदम हवा हो जायेंगे। गिरिबालाको बहुत नशा चढ़ आया था, इसलिये वह सो गयी। धन्नूबाबूने वमन कर दिया। तरङ्गिणी होशमेंही बनी रही; क्योंकि उसने शराब नहीं पी थी।

दीवानने उपर्युक्त तीनों आदमियोंकी ऐसी अवस्था देखकर प्रस्थान करनेकी तैयारी की और धन्नूसे बिदा माँगी। धन्नू उन्हें बिदा करते समय बोला,—"आपके साथ जाकर एक दफ़े

राजा साहबका डेरा देख आनेकी मेरी इच्छा थी। लेकिन इस वक्त देह टूटी जा रही है। कल या परसों चलूँगा। भाई! राजाके पास हमारा सारा माल धरोहर रखा है। कोई डरकी बात तो नहीं है?"

तरङ्गिणीने कहा,—"वाह, बूढ़े हो गये; पर आदमीको नहीं पहचान सकते? यह तुम्हें नहीं मालूम, कि राजा लोग कैसे होते हैं? जिसे तुम कारूँका ख़ज़ाना कहते हो, राजा लोग उतनेके तो सालभरमें जूते पहन डालते हैं! अच्छा, अगर तुम्हारा उनपर यक़ीन नहीं है, तो मैं उनकी ज़ामिन बनती हूँ। रुपयों या चीज़ोंमेंसे जो कुछ कम हो जायेगा, उसे मैं देनेको तैयार हूँ।"

धन्नू चुप होगया। अब उसे नींद आने लगी। उस समय तरङ्गिणी दीवानको अपने साथ आनेका इशारा कर ज़रा दूर ले जाकर हँसती हुई पूछने लगी,—"दीवानजी! आपका नाम क्या है?"

दीवानने जवाब दिया,—"मेरा नाम नीलरतन चौधरी है।"

"क्यों चौधरी साहब! क्या आपका भी मकान रायपुरमें ही है?"

"हाँ।"

बात खूब पक्की करनेके लिये तरङ्गिणीने बहुतसे प्रसङ्ग उठाये एवं अनेक प्रकारसे चौधरी महाशयका मनोरञ्जन करने लगी। उन बातोंको यहाँ लिखनेकी कुछ ज़रूरत नहीं।

नीलरतन बड़े सावधान और गम्भीर आदमी थे। बात-चीत

और व्यवहार देखते हुए वह सामान्य दरबारियोंकी अपेक्षा बहुत ऊँची श्रेणीके व्यक्ति मालूम होते थे। उनकी उम्र अनुमानतः पैंतालीस वर्षकी थी। चौधरी महाशय काफ़ी लम्बे-तगड़े जवान थे। उनकी सूरत-शक्ल भी बुरी नहीं थी।

तरङ्गिणीकी बात सुनकर चौधरी महाशयने कहा,—"तुम बड़ी सुन्दरी और हँसमुख औरत हो। अगर राजाजी कुछ देर तुमसे बात-चीत करें, तो बेहद खुश होंगे—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। और सच तो यह है, कि वे तुम्हें चाहते भी हैं। अच्छा, मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। तुम ग़ैर नहीं, अपनीही हो। देखो, मुझे यह बात मालूम है, कि तुम्हारा एक और आदमीसे मेल है। अगर राजा तुम्हें खुल्लमखुल्ला प्यार करने लगें, तो वह चिढ़कर किसी तरहका गोलमाल तो नहीं मचायेगा? राजा इस तरहके झगड़ोंसे बेहद डरते हैं।"

तरङ्गिणीने कहा,—"इसका ख़याल आप तनिक भी न कीजिये। अगर किसी तरह मुझे यह बात ठीक तौरसे मालूम हो जाये, कि राजा वास्तवमें मुझे चाहने लगे हैं, तो मैं उसका भी ठीक-ठीक बन्दोबस्त कर लूँगी। मेरा जो कुछ ज़ेवर-जमा है, उसे लेकर मैं इस तरह चम्पत हो जाऊँगी, कि किसीको कानों-कान सुनाई भी न पड़ेगा। यहाँतक, कि ज़िन्दा हूँ या मर गयी, यह भी कोई न जान सकेगा।"

नीलरतनने कहा,—"तब तो कोई फ़िक्र नहीं, सारे घाट-बाट देखकर काम करनेसे अन्तमें बड़ा अच्छा फल मिलता है।

मेरी तरफ़से तुम बेफ़िक्र रहो। मैं हमेशा तुम्हारी तरफ़ हूँ और रहूँगा। लेकिन भई! एक बात है। मेरी हालत बेहद ख़राब है! मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। नौकरी करता हूँ, रुपया पाता हूँ। यह सब ठीक है, लेकिन मेरे सिरपर बड़े-बड़े ख़र्च हैं। इधरसे रुपया आता है, उधरको चला जाता है। मेरे ऊपर तुम्हें थोड़ी मिहरबानी करनी पड़ेगी। राजाके एक रानी है, लेकिन यार लोग अब उसको रानी बने रहने देना पसन्द नहीं करते। अगर मेरे दममें दम रहा, तो सुनो—तुम तो होगी रानी और वह तुम्हारी दासी बन जायेगी।"

बात बड़े भारी लोभकी है। तरङ्गिणी चतुरा है। धन-रत्न और सुख-सौभाग्यका लोभ उसके हृदयमें प्रबल रूपसे विराजमान है। अभागे, कुरूप और मामूली दूकानदार कालिदासकी सेवा उसने बहुत दिनोंतक की; पर उससे उसकी एक नहीं, अनेकों इच्छाओंकी पूर्त्ति अबतक न हो सकी। राजाका अपरिसीम रूप, अतुलनीय धन-सम्पत्ति, अत्यद्भुत विलासिता और मनोमुग्धकारिणी सरलता तथा रसिकताने उसकी प्रत्येक नाड़ीमें प्रवेशकर उसे उन्मत्त बना दिया। तरङ्गिणीका पतन तुम बहुत नज़दीक है; क्योंकि उसका हिताहित-ज्ञान जाता रहा। सम्भव-असम्भवका विचार करनेवाली शक्तिने उसे एकदम त्याग दिया। उसने कहा,—"उस तरफ़से तो आप निश्चिन्त रहो। अगर मेरी इच्छा पूरी हो जाये, तो मैं क़सम खाकर कहती हूँ, कि तुम्हें खूब खुश करूँगी। क्या कहूँ, मुझे

इस बातका बड़ा भारी अफ़सोस है, कि इस वक़ मेरे पास कोई ऐसी चीज़ नहीं, जिसे देकर तुम्हें खुश कर सकूँ। नहीं तो मेरी इच्छा तुम्हें सौ रुपये देनेकी थी। ख़ैर, यह लो, मैं इस समय तुम्हें अपने हाथकी पहुँची देती हूँ।"

दीवानने कहा,—नहीं, मैं पहुँची नहीं लूँगा। अगर राजा साहब जान लेंगे, तो आफ़त आ जायेगी। अगर कुछ देना है, तो नक़द दो, चीज़-वस्तु देकर राजाके हाथसे क्या मुझे मरवाओगी?"

तरङ्गिणी बोली,—"नक़द भी मिलेगा। मैं तुम्हारे लिये नक़द रुपया इकट्ठा करनेकी तरकीब लड़ा रही हूँ। अब तुम कब आओगे? मुझे राजाके पास कब ले चलोगे?"

चौधरीने कहा,—"साँझ हो जानेके बाद। मैं इस बीचमें राजासे भी सब बातें ठीक कर लूँगा, तबतक तुम तैयार रहना। हाँ, एक बात तो मैं भूल ही गया! ये धनुआ वग़ैरः भी तो तुम्हारे साथमें हैं, इन्हें कैसे ले जाऊँगा? अगर इन्हें छोड़कर सिर्फ़ तुम्हें ही ले जाऊँगा तो, ये लोग उत्पात मचायेंगे। भला हमारे राजा साहब इन बातोंको कब पसन्द कर सकते हैं? इस बारेमें तुमने क्या सोचा है?"

तरङ्गिणी बोली,—"इसके लिये आप कुछ भी फ़िक्र न करें। मैं ऐसा इन्तज़ाम कर रखूँगी, कि इन लोगोंको उसका तनिक भी पता न लग सकेगा।"

नीलरतनने कहा,—"देखो भैया, कहीं पीछे शोर-गुल न मचे!

और एक बात है। इस गिरिबाला और धन्नूके व्यवहारसे राजा साहब बड़े असन्तुष्ट हैं। यह बात गुप्त रखनेकी है। गिरिबालाके बारेमें राजाने मुझसे बहुतसी बातें कही थीं। वे ऐसे आदमियोंके साथ तुम्हारा रहना पसन्द नहीं करते और आगेको इसी बातकी कोशिश करेंगे, जिसमें इन लोगोंके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध न रहे। ये सब बातें इस समय मैं इसीलिये कह रहा हूँ, कि अबसे राजाके साथ तुम्हारी घनिष्ठता रहेगी, अतएव सब काम खूब सोच-विचारके साथ करना चाहिये।"

यह सुनकर तरङ्गिणीने अपनी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये, गिरिबालाके साथ सुरेन्द्र बाबूकी कैसे दोस्ती हुई और क्योंकर अन्तमें बिगाड़ हुआ; ये सारी बातें—अर्थात् प्रथम दिनके परिचयसे गिरिबालाके चोरी करके भागनेतकका समस्त वृत्तान्त उनको सुना दिया। धन्नू कैसा नीच आदमी है—यह भी सुनानेसे बाक़ी न रही। सुरेन्द्र बाबूके स्वभाव और प्रकृति, अविचार और अत्याचार आदिकी बातें भी उसकी वाङ्मयी रसनाने व्यक्त कर दीं। गिरिबालाके गर्भ रहने और उसको नष्ट करनेका सङ्कल्प करनेतकका हाल उसने चौधरी-महाशयको सुना दिया। इन कुत्सित परामर्शोंकी स्वयं प्रधान मन्त्रणाकर्त्री होनेपर भी, इस समय अपनी साधुता अक्षुण्ण रखनेके आशयसे तरङ्गिणीने सारे अपराध धन्नूके सिर-पर थोप दिये। धन्नू अपनी बहनको लेकर उससे धन पैदा करनेकी इच्छासे घर छोड़कर यहाँ आया है, यह भी कहनेसे

बाक़ी न रखा। बातोंको चटपटी और मसालेदार बनानेके लिये उसने सत्यके साथ अनेक झूठी बातोंका भी पुट दिया। सबसे अधिक झूठ वह गिरिबालाकी उमरके विषयमें बोली। उसने कहा,—"गिरिबालाकी उमर इस समय तीस वर्षके ऊपर ही है। मैं उससे ५।७ वर्ष छोटी हूँ। गर्भ रहने और ठिगनी होनेके सबब वह मुझसे छोटी मालूम होती है।"

सारी बातें सुनकर नीलरतनने कहा,—"अच्छा, अब मैं जाता हूँ। साँझको आऊँगा। देखना, किसी तरहका शोर-गुल न मचे। धन्नूको इन बातोंकी किसी तरह भी ख़बर न होने देना। मैं राजाको सब तरहसे ठीक कर लूँगा। उसका तुम कुछ ख़याल मत करो। और देखना, मेरे ऊपर मिहरबानी करने-की भी बात मत भूलना।"

तरङ्गिणीने दीवानको बहुत कुछ विश्वास दिलाकर विदा किया और आप अन्दर मकानमें चली गयी। जाकर देखा, कि धन्नू बेख़बर सो रहा है। अब वह अपना शृङ्गार करनेमें लगी। उसे विश्वास है, कि उसका रूप सब्ज़परीसे किसी अंशमें कम नहीं है। यह रूपका फूल राजाके उद्यानमें ही खिलना उचित है। कुत्सित कालिदास इस रूपकी क़दर क्या जाने? केवल सुयोगके अभावसे, अनुकूल घटनाओंके न घटनेसेही यह मोतियोंकी माला अबतक बन्दरके गलेमें पड़ी रही। वह सुयोग, वह अनुकूल घटना, जब इस समय भाग्यवश उपस्थित होगयी है, तब फिर कमी करनेकी क्या आवश्यकता? इत्यादि बड़ी-बड़ी

आशाओंकी अट्टालिका निर्माण करती हुई तरङ्गिणी अपनी देहको गोरा बनाने और बालोंको परिपाटीसे बाँधने लगी।

तरङ्गिणीकी वेष-भूषा समाप्त होनेके कुछ पहलेही धन्नूबाबूकी नींद टूट गयी। उस वक्त साँझ होनेमें बहुत देर नहीं थी। रूपकी श्याम-घटा घरमें उठती देखकर धन्नू बोला,—"आज क्या माजरा है? इस नरक-पुरीमें रूपकी बेल क्यों उगायी जा रही है?"

तरङ्गिणीने कहा,—"अगर आज रूपकी बेल न उगेगी, तो कब उगेगी? आज हम दोनों अकेले हैं! ऐसा सुन्दर समय और कब मिलेगा? अबतक तो चक्रवर्त्तीके डरसे छिपे-चोरीसे दिल खुश किया जाता था। एक दिन भी मन भरकर मौज नहीं उड़ायी गयी। और अब, जब कि परमेश्वरने प्रसन्न होकर ऐसा सुन्दर अवसर दिया है,तब उसे बेकार क्यों जाने दूँ? इसी लोभके मारे तो मैं मकानपर नहीं गयी। कल भी न जाऊँगी। अब तो दिलकी सारी साधें पूरी करूँगी।"

धन्नू गलकर पानी हो गया। तरङ्गिणी फिर कहने लगी,—"घरपर तो चक्रवर्त्तीके डरके मारे कभी आनन्दसे शराब पीनेका मौक़ा ही नहीं मिला। आज हम तुम दोनोंही जी भरकर शराब पियेंगे। तुम तीन रुपये ले जाओ और एक रुपयेकी गज़क तथा दो रुपयेकी शराब ले आओ। देर करनेका मौक़ा नहीं है।"

धन्नू ऐसे सत्कर्म और शुभ-कार्यमें देरी करनेवाला असामी नहीं था। वह बातके ख़तम होतेही कन्धेपर अँगोछा डाल, अण्टीमें रुपये दबाकर बाज़ारको चल दिया। तरङ्गिणीने रही-

सही कमी भी पूरी कर ली। छः बज चुके थे। धन्नू सामान लेकर लौट आया। तरङ्गिणी उसे बड़े आदरके साथ घरमें ले गयी। वहाँ गिरिवाला सो रही थी। तरङ्गिणीने बीचमेंही गिरिवालाके न जागनेका काफ़ी वन्दोवस्त कर दिया था।

ख़ूब शराब पिलाकर धन्नूको बेहोश कर देनाही तरङ्गिणी-का मुख्य उद्देश्य था; क्योंकि ऐसा होनेपर वह नीलरतनके आतेही बिना किसी तरहके गोलमालके राजासे मिलने चली जायेगी। इसलिये बेकार वक्त न खोकर तरङ्गिणीने एक दीपक जलाया और भोजन-सामग्री, गिलास तथा शराब लेकर बैठ गयी। उसने बड़े आदरके साथ धन्नूको एक पैक शराब दी। विनीत और आज्ञाकारी धन्नू उसे गलेसे नीचे उतार गया। साथमें भोजन-व्यापार भी चलने लगा। धन्नूबाबू प्रेमसे पागल होकर तरङ्गिणीके मुँहमें अपने हाथसे पूरीके गस्से देने एवं शराब पीनेका भी अनुरोध करने लगे। वह अनुरोध-रक्षाके लिये ख़ाली ग्लासको मुँहसे लगाकर मुँह बिगाड़ती रही। एक बोतल ख़त्म हो गयी, दूसरीका आरम्भ हुआ। शराबने धन्नूके मस्तिष्क और शोणितपर अपना सिक्का जमा लिया। शरीर शिथिल होने लगा। अब शराब बुरी मालूम पड़ने लगी। परन्तु तरङ्गिणीकी मधुर बातें सुन और अभूतपूर्व आदर देख मुँहसे 'नहीं' निकालनेका साहस न होता था। अब धन्नूबाबू सुख-सागरमें गोते खाने लगे। अनेक पूरी-कचौरियोंने उनके सुविशाल उदरमें प्रवेश किया। धन्नू हारकर कहने लगा,—"ना-ना-ना, अब ना।"

इतना होनेपर भी तरङ्गिणीने धन्नूके गलेमें अपनी सुकोमल वाम-बाहु डालकर दाहिने हाथसे शराबकी एक पैक उसके मुँहसे लगा दी। धन्नू तरङ्गिणीकी ठोड़ीको छूकर, अति विकृत स्वरमें कुछ प्रार्थना करना चाहता था, कि ठीक इसी समय उस पाप-कुटीरका द्वार खुल गया एवं एक कृष्णकाय पुरुषने क्षणभरमें घरमें आकर धन्नूके सिरपर बड़े ज़ोरसे एक लाठीका हाथ जमाया। धन्नूबाबू उसी क्षण रुधिरमय-कलेवर होकर ज़मीनपर लम्बे लेट गये। इसके बाद उस आदमीने तरङ्गिणीके ऊपर भी लाठी उठायी, कि इसी समय पीछेकी ओरसे एक लम्बी मूँछों-वाले विशाल-वक्ष ब्राह्मणने उसका हाथ पकड़ लिया। प्रहार-कारी बड़ी चेष्टा करनेपर भी उस ब्राह्मणकी वज्र-मुष्टिसे अपना हाथ न छुड़ा सका। भय-विकलिता तरङ्गिणीने देखा, कि प्रहारकारी और कोई नहीं,—कालिदास चक्रवर्त्ती है। लेकिन यह ब्राह्मण कौन है?





तरङ्गिणी और कालिदास।

"उस आदमीने तरंगिणीके ऊपर भी लाठी उठायी। इसी समय पीछेसे एक विशालकाय ब्राह्मणने उसका हाथ पकड़ लिया।"

Burman Press, Calcu'a.

[पृष्ठ—१३२]

तीसरा खण्ड ।



वन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतमैव शत्रुवत् ॥

अर्थ—जिसने अपनी आत्मासे आत्माको जीत लिया है, उसके लिये उसकी आत्मा ही परम वन्धु है; किन्तु जिसने अपनी आत्मासे आत्माको नहीं जीता है, उसके लिये उसकी आत्मा ही शत्रु है ।

तात्पर्य—जिसने अपने शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण-को जीत लिया है, उसके लिये उसकी आत्माही परम मित्र है । लेकिन जिसने अपने शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणको वशमें नहीं किया, उसको उसकी आत्मा ही शत्रुओंकी तरह हानि पहुँचाती है ।

(श्रीमद्भगवद्गीता । ६ अध्याय । ६ श्लोक । श्रीकृष्णवाक्य ।)



कर्मफल

पहला परिच्छेद ।

संन्यासी ।

ज्ञानगर्वित दार्शनिक महाशय ! आपको कोटि-कोटि प्रणाम करता हुआ यह ग्रन्थकार आपकी कलुष-निवारिका महिमाको स्वीकार करता है ; परन्तु यह क्षुद्र लेखक श्रीमान्‌के समस्त मन्तव्योंको ग्रहण करनेके लिये कदापि प्रस्तुत नहीं है। आप भाग्यको नहीं मानते, पूर्व-जन्मको नहीं स्वीकार करते, जन्मान्तरीण कर्म्म-फलको नहीं ग्राह्य करते, संसार-भरके कोषोंसे 'प्रारब्ध' शब्दको निकाल देनेकी सम्मति देते हैं और सभी बातोंको मनुष्यके वर्त्तमान कर्म्माकर्म्मका परिणाम बताते हैं, अथवा अनुकूल वा प्रतिकूल घटनाओंका फल कहकर समस्त रहस्योंकी मीमांसा करते हैं, आपके ये तत्त्व विशेष सारवान् और युक्तियुक्त होनेपर भी संसारके प्रायः सभी व्यापार इनके पूर्णतः प्रतिकूल हैं। जगत्‌में जितनी घटनाएँ, जितने काण्ड,

क्षण, अनुक्षण और पद-पदपर प्रत्यक्षीभूत होते हैं, उनके अधिकांश स्थलोंपर आपके इन सारवान् तत्त्वोंका प्रयोग करनेपर किसी प्रकार मीमांसा होती नहीं दीखती। हमारे समाजकी बहुतसी माताएँ अपरिसीम दुःख भोगकर हाय-हाय करती हुई क्यों अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं ? क्यों घोर दुष्कर्मान्वित महा पापी लोग, आनन्दसे उन्मत्त होकर कालातिपात करते हैं ? क्यों साधु, पुण्य-प्राण, महापुरुष मुट्ठीभर अन्नके लिये लालायित देख पड़ते हैं ? नर-हन्ता डाकू भोगके ऊपर भोग करते हुए क्यों अकड़ते फिरते हैं ? एक व्यक्ति यत्परोनास्ति अपराध करके भी क्यों स्वच्छन्दताके साथ छुटकारा पा जाता है ? क्यों पाप-संस्पर्श-शून्य पुरुष दण्ड पाते हैं ? हत्याकारी मनुष्य राज-दरबारसे छुटकारा पाकर क्यों छाती अकड़ाये फिरता है ? और एक परम अहिंसक व्यक्ति हत्याके अपराधमें फाँसीके काठपर क्यों झूलता है ? इस प्रकार जितने असम्भव काण्ड संसारके चारों ओर दिखाई देते हैं, उनकी आलोचना करनेपर, आपके इन सुमहान् तत्त्वोंपर अवश्य अश्रद्धा होजाती है। उसी समय मालूम होने लगता है, कि यह संसार एक सुविशाल कर्मक्षेत्र-मात्र है। इस कर्म-क्षेत्रमें जीव कर्म करनेके लिये नियुक्त है। कोई उत्साहके साथ, कोई निरुत्साही होकर, कोई इच्छा-पूर्वक, कोई अनिच्छासे, कोई दबावसे और कोई दिली शौक़से, अपने-अपने करने योग्य कर्म करता है। क्रियाशीलताही इस संसारकी व्यवस्था है, कोई निष्क्रिय नहीं है। जीव जिस समय, जिस घड़ी और जिस

क्षण, संसारमें प्रवेश करता है, उसे तत्काल ही कर्म-रत होना पड़ता है। यहाँतक, कि कर्म करनेसे उसे किसी क्षण अवकाश नहीं मिलता। कर्म उसका सङ्गी और अपरिहार्य सहचर है। जीवके स्नेहमय माता-पिता एक समय उसका परित्याग कर सकते हैं, प्रिय मित्र अपना स्नेह-बन्धन तोड़ सकते हैं, नयन-विनोदन पुत्र उसको छोड़ दे सकता है और प्राणाधिका प्रणयिनी उसको एक दिन त्याग दे सकती है, पर कर्म उसका कभी नहीं त्याग करेगा। वह धनी हो या दरिद्र, भिक्षुक हो या राजेश्वर, अकेला हो या परिवार-युक्त, मूर्ख हो या विद्वान्, निर्बोध हो या बुद्धिमान्; परन्तु कर्म करनेके लिये वह हर समय वाध्य है, क्योंकि कर्म करनेके लिये ही उसका जन्म हुआ है--कर्म उसको हर समय घेरे हुए है। कर्म करनेके लिये मनुष्य इतना वाध्य तो है, पर उसके फलाफलके विषयमें वह एकदम अन्धा है। जीव कर्मका दास है, पर कर्म जीवका दास नहीं। मनुष्य फलकी आकांक्षासे कर्म करते हैं, यह ठीक है; किन्तु फल उसके लिये दुर्ज्ञेय, अनायत्त और इच्छातीत है। चिकित्सक बड़ी सावधानीके साथ रोगीकी चिकित्सा करता है; किन्तु वह यह वात कभी नहीं वता सकता, कि रोगीका परिणाम क्या होगा? आज यदि मामूलीसा बुख़ार है, तो कल वह सान्निपातिक विकार हो जाता है और चिकित्सक समस्त विद्या-बुद्धि लगाकर भी कुछ नहीं कर सकता। बहुत दिनोंके बाद एक प्रवासी अपने प्यारे कुटुम्बियोंसे मिलनेके लिये तरह-तरहकी वस्तुएँ लेकर घर

लौट रहा है और थोड़ासा पथ अतिक्रम कर लेनेसे ही उसका सुखमय गृह दृष्टिगोचर होसकता है; किन्तु हाय! पीछे आनेवाले चोरकी लाठी खाकर उसी स्थानपर उसका प्राणान्त होगया! उपाय-क्षम युवक, अनन्त सुखोंकी आशा कर, सुन्दरी और गुणवती भार्याके साथ बड़े आनन्दसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है, परन्तु निर्दय काल उस युवाके प्राण ले, उस आनन्दमयी युवतीको पथकी भिखारिणी बना देता है। इस प्रकारकी पर्य्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि मनुष्य कर्म अवश्य करता है; परन्तु उसकी आकांक्षाके अनुरूप फल-प्राप्तिके सम्बन्धमें उसका तनिक भी अधिकार नहीं। फलका व्यवस्थापक भाग्य है, क्रियाशील मनुष्यकी क्रियाका फल विधि-नियोजित है।

हमारे परिचित, राजीवपुरके ज़मीन्दार, श्रीयुक्त बाबू सुरेन्द्रनाथ मित्र महाशय, सुविद्वान् और सुशिक्षित होनेपर भी, अन्यान्य मनुष्योंकी भाँति कर्मोंके दास हैं। भगवान् श्रीकृष्णने एक स्थानपर कहा है, किः—

'नहि कश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।'

निःसन्देह वे भी एक इस महावाक्यके दृष्टान्तस्थल हैं। लेकिन उन्हीं भगवान्ने एक स्थानपर यह भी कह दिया है, किः—

"कर्माण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन।"

अतएव इस महावाक्यके प्रयोग-स्थल वे किसी तरह नहीं हो सकते। कर्म्म-फलमें उनकी यथेष्ट आसक्ति है, एवं कर्म्मफल इच्छाधीन और अवधारित है—इस बातपर उनका पूर्ण

विश्वास है। इस तरहके विश्वासके वश होकर ही सुरेन्द्र बाबू यथेच्छाचारके मूर्त्तिमान् अवतार हो गये हैं। अनुगत और अधीनस्थ मनुष्योंको इच्छानुसारपर विदलित करनाही उनका मुख्य उद्देश्य है। सती स्त्रीका सतीत्व-नाश, निर-पराध व्यक्तिके लिये निरतिशय दण्ड-विधान, गुणवान्के ऊपर अनुचित रूपसे अत्याचार और निष्ठुराचरण करनाही इस सुशिक्षित पाखण्डीके नित्य-व्रत हैं। वह निःशङ्कभावसे इच्छानुरूप कर्म्म-साधन करता है और इच्छानुसार फल-भोग कर तृप्ति लाभ करता है। लेकिन वह अपने मनमें चाहे जो सोचे, पर वसुन्धरा भगवद्-विहीन नहीं है एवं क्रिया-फल मनुष्यके प्रताप, धन, सम्पत्ति या कृतित्व आदिके अधीन नहीं है यह ज्वलंन्त सत्य कभी—त्रिकालमें भी—मिथ्या न होगा।

जिस दिन धन्नूका गृह-दाह कर सुरेन्द्र बाबूने अपनी कीर्त्ति-का विस्तार किया, उसके कई दिन वाद उन्होंने एक सम्मानित प्रजाकी पीठमें वेत्राघात कर अपने महत्वका परिचय दिया था। उस प्रजाका अपराध इतनाही था, कि उसने घोड़ेपर चढ़े सुरेन्द्र बाबूको अपनी आँखोंसे देखकर भी खड़े होकर सलाम नहीं किया। जब गाँवके सारे आदमी सुरेन्द्र बाबूको यथेष्ट सम्मान करते हैं, तब इस आदमीको भी अवश्य उनका अनुकरण करनाही चाहिये था! फिर उसने ऐसी भारी ग़लती क्यों की?—कह नहीं सकते। लेकिन सुरेन्द्र बाबूने उसे अभिमानी समझा। इसीसे वे उसका दमन किये

दिना न रह सके। यद्यपि सुरेन्द्र बाबूके अनुमान प्रायः-यथार्थ ही हुआ करते हैं और तदनुसार वह आदमी अभिमानीही हो, तथापि सुरेन्द्र बाबूका दिया हुआ दण्ड सर्वथा अनुचित था।

उस दिन सन्ध्याके बाद सुरेन्द्र बाबू अपने बाग़ीचेके बीचमें बने हुए विलास-भवनमें बैठे तम्बाकू-सेवन कर रहे थे। चार-पाँच दोस्तोंने भी उन्हें चारों ओरसे घेर रखा था; पर होता क्या था? वहाँ न तो सुरा-देवीका आवाहन होता था और न कोई कुकर्म्म। किसी प्रकारकी बुरी चर्चा भी नहीं हो रही थी, हो रही थी सिर्फ़ दिल्लगी। दिन-भरकी कुकीर्त्तियोंका भी स्मरण सुरेन्द्र बाबूको था या नहीं—यह हम नहीं कह सकते। स्मरण होनेकी ज़रूरत ही क्या थी? जिन लोम-हर्षण काण्डोंका वे बारहों महीने, तीसों दिन, अनुष्ठान करते रहते हैं, उसकी तुलनामें आजका यह काम क्या इतना भयानक है, जो किसी प्रकार उनके हृदयपर असर करेगा? यहाँ तो हँसीका फ़व्वारा छूट रहा है, धड़ल्लेसे दिल्लगियाँ हो रही हैं!

सहसा उस सुसज्जित कमरेके खुले द्वारपर शब्द हुआ,—"हर हर बम बम!" एकदम सबकी दृष्टि उसी ओर जा पड़ी। कैसा गम्भीर और मिष्ट, उद्धत और कोमल, भीति-जनक और मधुर कण्ठ-स्वर है! सबने देखा,—अहा, कैसा अपूर्व दर्शन है! एक विभूति-विलेपित-कलेवर, जटाजूटधारी, विशाल-वक्ष, सुस्थूल, सहास्य-मुख और व्याघ्रचर्म्म एवं त्रिशूलधारी संन्यासी, मूर्त्तिमान शिवके स्वरूपमें उस कमरेके दरवाज़ेपर खड़ा है।

उस देवकल्प, परम शोभामय संन्यासीको देखकर सभी विमुग्ध और वाक्यहीन हो गये। हिन्दू-धर्म्म-विद्वेषी सुरेन्द्र-नाथ भी पहले कुछ देरतक अवाक् हो उस स्थिर, और पाषाण-गठित प्रतिमूर्त्तिकी भाँति निश्चल, संन्यासीकी ओर देखते रह गये। सभ्य भाषामें ऐसे अनुराग, आग्रह और आवेग आदिको हृदयकी दुर्वलता कहते हैं। हृदयकी दुर्वलता, किस वस्तुका नाम है और सरलता, किस वस्तुका नाम है, यह हमें भली भाँति मालूम न होनेके कारण उक्त विषयकी मीमांसा करना हमारे साध्यसे वाहर है। हमारा विश्वास है, कि समस्त लम्बी-लम्बी वातोंके आवरणमें धोखेवाज़ी और वदमाशीको ढकने और सभ्यताकी पोशाक पहनाकर सभ्य-समाजमें प्रविष्ट करा देनेकी जो सुव्यवस्था सभ्यताके शास्त्रमें लिखी हुई है, उसी पद्धतिका नाम हमारी भाषामें हृदयकी दुर्वलता है। अस्तु, सभ्य सुरेन्द्र वावू हृदयकी दुर्वलताको दूरकर एवं साथ-ही-साथ सवलताको आवाहन कर वोले,—"तुम कौन हो? यहाँ किस लिये आये हो? तुम्हें यहाँ किसने आने दिया? नहीं जानते, मैं अभी तुम्हारा सत्यानाश कर सकता हूँ!"

निर्भीक संन्यासी मृदुता और गाम्भीर्य्य-मिश्रित अपूर्व कण्ठ-स्वरसे वोला,—"मैं संन्यासी हूँ, ढोंगी नहीं। मुझसे किसीने आनेको नहीं कहा—मैं अपने आपही आया हूँ। मैं जानता हूँ, कि तुम मेरा कदापि अनिष्ट नहीं कर सकते।"

इतना कहकर उस संन्यासीने कमरेमें प्रवेश किया और किसीके कोई बात मुँहसे निकालनेके पहलेही वहाँ बिछी हुई एक सुपरिष्कृत गद्दीपर जा बैठा। सुरेन्द्र बाबू, संन्यासीका साहस और विश्वास देखकर विस्मयाविष्ट हो गये। बोले,—"तुम क्या पागल हो? यहाँ किस साहससे आ बैठे? नहीं जानते, मेरे सिपाही अभी तुम्हारी गर्दनमें हाथ डाल तुम्हें धक्के देते हुए बाहर निकाल देंगे?"

संन्यासी बड़े ज़ोरसे हँस उठे। उस हास्यकी ध्वनि मानो सारे कमरेके भीतर हँसती-हँसती घूमने लगी। संन्यासीने कहा,—"मैं पागल नहीं हूँ। मैंने सुना है, कि तुम पढ़े-लिखे हो। यदि मेरे साथ किसी शास्त्रपर विचार करना चाहते हो तो करो। पागल आदमी क्या किसी प्रकारका शास्त्र-विचार कर सकता है? मैं यहाँ अपने साहसपर भरोसा करके आया हूँ। संसारमें एकमात्र तुम्हीं बड़े आदमी नहीं हो, तुम्हारी अपेक्षा बड़े-बड़े महात्मा इस दुनियामें वर्त्तमान हैं। यह बात तो तुम भी जानते ही होगे? तदनुसार मैं जिस साहससे तुमसे सब विषयोंमें बढ़े-चढ़े महापुरुषोंके समीप बैठा करता हूँ, उसी साहससे यहाँ भी आ बैठा हूँ। तुम्हारे सिपाही मुझे कभी नहीं निकाल सकते। तुम्हारे यहाँ कितने सिपाही हैं? बहुत होंगे तो सब मिलाकर दश सिपाही! पर मुझे तो एक लम्बी-चौड़ी फ़ौज भी आकर नहीं हटा सकती। यदि परीक्षा करना चाहते हो तो अपने सिपा-

हियोंको बुलाओ, खूब इनाम देनेका लोभ दिखाकर मुझे निकाल बाहर कर देनेका हुक्म दो। फिर देखा जायेगा। किन्तु सुरेन्द्र! यह तो बताओ, मुझे निकालनेके लिये तुम इतने व्यस्त क्यों हो रहे हो? मैं तुम्हारे घरमें केवल आकर बैठही तो गया हूँ? किसी तरहका अनिष्ट तो नहीं करता?"

सुरेन्द्र बड़े विरक्त हुए। संन्यासीने उनको आधा नाम लेकर पुकारा! बाबू सुरेन्द्रनाथ न कहता, सुरेन्द्रनाथही कहकर सम्बोधन करता! भला इसकी ऐसी मजाल? न मालूम अभागा कहाँसे आगया? नंगा, मुसण्डा, धूलमें लिपटा हुआ, महाअसभ्य संन्यासी! इतने बड़े आदमीको नाम लेकर पुकारता है? निकल जानेको कहा जाता है, तो सरकतातक नहीं! लम्बी-लम्बी बातें बनाता है!" इतना अत्याचार, और सुरेन्द्र बाबूके सामने? वे एकदम दारुण क्रोधसे अधीर होकर बोले,—"तुम अभी मेरे घरसे निकल जाते हो या नहीं? बोलो।"

संन्यासी बोला,—"अभीकी बात तो दरकिनार, मैं आज रातभर यहीं रहूँगा—कल सारा दिन और सारी रात भी यहीं बिताना पड़े तो आश्चर्य नहीं। यदि हो सका, तो परसों जा सकूँगा!"

सुरेन्द्र,—"मैं तुम्हें एक क्षणके लिये भी यहाँ न ठहरने दूँगा। क्या तुम अपनी इच्छासे यहाँ रहना चाहते हो?"

संन्यासी बोला,—"जबतक यहाँ मेरी ज़रूरत है, तबतक

तुम्हें भी मुझे रहने देना पड़ेगा। मैं अपनी इच्छासे आया हूँ, अपनी इच्छासे रहूँगा और अपनी इच्छासेही चला जाऊँगा। तुम इतने नाराज़ क्यों हो रहे हो? तुम्हारी विरक्ति मेरे लिये विपज्जनक होसकती है, पर उससे मेरा अनिष्ट किसी प्रकार नहीं होसकता। पहले तो मैं संन्यासी हूँ,इसलिये विपद्-सम्पद्के अधीन नहीं। दूसरे, मेरे शरीरमें जो शक्ति है, उसके द्वारा मैं बातकी बातमें मतवाले हाथीको पकड़ ले सकता हूँ। तीसरे, मुझे जितनी विद्याएँ आती हैं, उनके द्वारा शास्त्रार्थ होनेपर मेरा पराभव होना बहुत ही कठिन है। अतएव सुरेन्द्रनाथ! तुमसे डरनेका मुझे कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं देख पड़ता। वरन् मुझसे डरनेके लिये तुम्हारे पास कारणोंकी अपरिमित संख्या है। मैं यहाँपर तुम्हारा शासन करने आया हूँ। मैं या तो तुम्हें दण्ड दूँगा अथवा तुम्हारा सत्यानाश करूँगा, यही मेरा सङ्कल्प है। वसुन्धरापर तुम जैसे दुरात्माके लिये पैर रखनेको भी स्थान नहीं है।"

उपर्युक्त बातें सुनकर सुरेन्द्रनाथको इतना क्रोध आया, कि उनकी एकदम बोलती बन्द होगयी। अब उन्होंने काँपते हाथोंसे मेज़के दराज़मेंसे एक पिस्तौल निकाली और उसे अच्छी तरहसे देख-भालकर ऊपरको मुँह उठा, बोले,—"जो अभागा बिना हुक्मके मेरे कमरेमें शान्ति-भङ्ग करनेके लिये घुस आया, जो पापी मुझे दण्ड देनेकी धमकी देता है, मेरा आधा नाम लेकर पुकारने-के साथ ही साथ, मेरे सङ्ग समान-भावसे बात-चीत करता है,



सुरेन्द्र और संन्यासी।

सुरेन्द्र,—"पाखण्डी संन्यासी! सम्हल जा, तेरी मौत सिरपर मँडरा रही है।" [पृष्ठ—१४५]

उसे जानसे मार डालनाही ठीक है। पाखण्डी संन्यासी! सम्हल जा, तेरी मौत सिरपर मँडरा रही है।"

एकबार 'गुडुम' करके शब्द हुआ और गोली लगनेसे एक 'ग्लासकेस' झनझन करके ज़मीनपर गिरकर टुकड़े-टुकड़े होगया। आग भड़क उठी। सुरेन्द्र बाबूके दोस्त चौंक पड़े। सारे कमरेमें धुआँ और बदबू भर गयी। मृत संन्यासीकी रुधिराक्त देह देखनेके लिये सभीने आग्रह और उत्कण्ठासे उस ओर दृष्टिपात किया; परन्तु वहाँ संन्यासी नहीं थे! फिर संन्यासी कहाँ गये? संन्यासी सुरेन्द्रनाथके पीछे खड़े हैं। सुरेन्द्रनाथके पीछे फिरकर संन्यासीको मारनेके लिये उद्यत होतेही, अतुल-बलशाली संन्यासीने उनके हाथसे पिस्तौल छीन ली। सुरेन्द्रनाथ तत्काल समझ गये, कि वास्तवमें इस संन्यासीके शरीरमें मत्त हाथीका सा बल है! संन्यासीने पिस्तौल ले, उसे ज़रासी देरमें दोनों हाथोंसे तोड़-मरोड़कर दूर फेंक, बायें हाथसे सुरेन्द्रबाबूको ऊपर उठा लिया और कहा,—"मूढ़, अभिमानी, दुरात्मा! अब समझा, कि मुझमें कितनी शक्ति है? अच्छी तरह समझ लिया न, कि तू मेरे सामने तिनकेके समान है? मैं अगर चाहूँ,तो अभी तेरा चूर्ण कर सकता हूँ; परन्तु ऐसा करनेसे मेरा मतलब सिद्ध न होगा। तुझे अन्य प्रकारसे दण्ड देनाही मेरा प्रकृत अभिप्राय है। दण्ड देनेकी बातकी सत्यताको, मेरी शक्ति देखकर तू भले प्रकार समझ गया होगा। पर वह दण्ड क्या होगा? कब दिया जायेगा? ये सब बातें तुझे पीछे मालूम होंगी।"

यह कह संन्यासीने सुरेन्द्रबाबूको नीचे उतार दिया! वे कुछ देर किंकर्त्तव्य-विमूढ़की भाँति चुप रह, बोले,—"यह मत समझ बैठना, कि मैं तुम्हारे राक्षसों जैसे बलको देखकर डर जाऊँगा। तुम जो अपने बलके भरोसेपर ही मेरे घरमें बिना गृह-स्वामीकी आज्ञाके घुस आये और अकारणही अत्याचार करने लगे, यह कोई न्याय-सङ्गत-व्यवस्था नहीं है। तुमने संन्यासीका ढोंग अवश्य रच रखा है, पर तुम्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान नहीं है। तुम सर्वथा क्षमाके अयोग्य हो।"

संन्यासी ऊँचे स्वरसे हँस पड़े। उस अट्टहास्यकी ध्वनिसे सुरेन्द्र और उनके यार-दोस्त चौंक पड़े। संन्यासी भैरव-स्वरमें बोले,—"तुम मूर्ख हो, हिताहित-ज्ञान-शून्य पशु हो। इसीसे अब तुम न्याय-विचारमें प्रवृत्त होना चाहते हो। मेरे शरीरमें शक्ति होनेसे यदि अत्याचार करना असङ्गत है, तो तुम्हारे पास धन, सम्पत्ति और प्रभुता होनेसे अनवरत उत्पीड़नों और अविचारों द्वारा निरीह प्रजाका सर्वनाश करना किस तरह युक्ति-युक्त हो सकता है? जो मूढ़, राज-शासनको उपेक्षाकर बेरोक दूसरोंकी सम्पत्ति लूट लेता है, जो पाखण्डी, न्याय और धर्मके मस्तकपर लात मारकर एकके अपराधमें दूसरेको दण्डित करता है, जो दुरात्मा सामाजिक विधि-व्यवस्थाको विदलितकर अनवरत कुल-कामिनियोंकी सतीत्व-सम्पत्तिका अपहरण करता है, जो दुर्वृत्त, स्नेह-ममताको तिलांजलि दे स्वार्थके अनुरोधसे बारम्बार औरस-जात गर्भस्थित बालकोंका संहार करता है, जो नर-कुल-कलङ्क,

नारकी, पिशाच, इच्छानुसार निरपराध मनुष्योंको आश्रय-हीन कर देता है, जो हृदय-हीन वर्वर, सामान्य क्रोधके वशवर्त्ती होकर, न्याय-अन्यायका विचार न कर अति दुष्कर नर-हत्या कर डालता है, उसके साथ न्याय-सङ्गत बातें करनेके लिये मैं कभी सम्मत नहीं हूँ। प्रताप और धन-सम्पत्तिके प्रभावसे वह नराधम यदि इस प्रकारके अत्याचारोंसे वसुन्धराको प्लावित और निरीह मानव-कुलका सर्वनाशकर हाहाकारकी ध्वनिसे पृथ्वीमण्डलको पूरित करसकता है, तो मैं दैहिक बलके प्रभावसे उस पिशाचको क्यों न नीचा दिखाऊं? ऐसे पाखण्डियोंको भारत-जननी कभी अपनी गोदमें स्थान नहीं दे सकती। नराधम सुरेन्द्रनाथ! तू मेरा वध्य पशु है। आज तेरे सामने विधि-प्रेरित यमराज उपस्थित है।"

इतना कहकर उस प्रदीप्त-काय संन्यासीने विकट हुङ्कार-ध्वनिकर सुरेन्द्रनाथका गला पकड़ लिया।

सुरेन्द्रनाथ, "बापरे! मरारे!" कहकर चिल्लाने लगे। उनके समस्त सहचर डरके मारे काँपते हुए भाग गये।



दूसरा परिच्छेद।

दुःखी परिवार।

अगले दिन सवेरेही राजीवपुरमें तरह-तरहकी अफ़वाहें उड़ने लगीं। कोई कहता, कि "कल कैलास-पर्वतसे शिव-पार्वतीने आकर, त्रिशूलद्वारा सुरेन्द्रबाबूको मार डाला।" कोई कहता, "शिव-पार्वतीने नहीं, केवल शिवनेही आकर ऐसा किया है।" कोई उससे झगड़ता हुआ कहता, "तू ख़ाक भी नहीं जानता, उमा-महेश्वर दोनोंही थे, साथमें नन्दी-भृङ्गी भी आये थे।" एक आदमी कह रहा था, कि "बाबूके मकानके पिछवाड़ेवाले बाग़में भृङ्गी महाशय महादेवके साँड़को बाँध रहे थे।" और दूसरी जगह एक आदमी ख़ूब हाथ-सिर हिलाकर कह रहा था, कि "शिवने बाबूको त्रिशूलसे नहीं मारा था, महादेवजीके खड़े होतेही उनके कपालसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगी थीं, उन्होंनेही सुरेन्द्रबाबूको जलाकर ख़ाक कर दिया! जहाँ बाबू साहब बैठे थे, वहाँपर थोड़ीसी राख पड़ी पायी गयी है।" और एक युवक कहने लगा,—"चाचा साहब जो कुछ कह रहे हैं, वह ठीक तो है; पर सारी बातें उन्हें विश्वस्तरूपसे नहीं मालूम। बाबू साहब आगसे जलकर नहीं मरे, वरन् साँपोंके काटनेसे मारे गये। जैसेही महादेवजी आये, वैसेही उनके सिरके साँप सुरेन्द्रबाबूके सिरपर टूट पड़े। टूट पड़तेही मौत धरी रखी थी! लाश अभी-

तक पड़ी हुई है।” चाचा साहब बड़े क्रोधके साथ बोले,—“कलि-युगके छोकरे बेहद झूठे होगये हैं। अबे जा झूठे! खुद जाकर देख आ, कि वहाँ राख पड़ी हुई है या नहीं। देखो तो, लौण्डा कैसी गप्प मारता है! और न हुआ, तो साँपकीही गप्प गढ़ लाया! अबे हरामज़ादे! यह क्या कोई चण्डूख़ाना है?” भतीजे महाशय चाचा साहबकी डाँट-दपट सुनकर चुप होगये। दूसरी जगह एक आदमी खड़ा-खड़ा कह रहा था, कि “सुरेन्द्रबाबूके मरनेके बाद यम और विष्णुके दूतोंमें खूब झगड़ा हुआ। महापापी होनेपर भी, उसको शिवके हाथ मृत्यु हुई। ऐसा भाग्यवानोंके-ही भाग्यमें हुआ करता है। यम-दूतोंकी क्या ताक़त, जो सुरेन्द्र-बाबूकी देहको छू भी सकें! अन्तमें विष्णु-दूतही बाबूको ले गये।” एक बकवादी छोकरेने पूछा,—“बाबाजी! जब सुरेन्द्रबाबू विष्णु-दूतोंके साथ जा रहे थे, तब आपने भी उनका पल्ला पकड़-कर स्वर्ग-गमन क्यों न किया?” इतना कहकर छोकरा भाग गया, नहीं तो वृद्धके हाथकी एक लाठी तो उसे खानीही पड़ती। अस्तु। यह संसार है, मरे हुए सिंहपर गधे लात मारतेही हैं! आज बहुतसे परनिन्दकोंने पेट भर-भरकर सुरेन्द्रबाबूको कोसा।

इसी प्रकारके प्रवादोंने सैकड़ों मुखोंसे निकलकर सुरेन्द्रकी हत्याकी कहानी चारों ओर फैला दी। संवाद एक गाँवसे दूसरे गाँवतक जाने लगा। यहाँतक, कि राजीवपुरसे उत्तर-पश्चिम दो कोसकी दूरीपर अवस्थित एक पर्णकुटीरमें भी यह समाचार पहुँचा। कुटीर महा जीर्ण, आँगन साफ़-सुथरा और चारों तरफ़

मिट्टीकी मज़बूत दीवारें खड़ी थीं। उसी आँगनमें बैठी हुई एक युवती रज़ाई सी रही है। युवती कृष्ण-वर्णा है। जिस-का रंग काला है, उसे सुन्दरी नामसे सम्बोधित करनेपर बहुतसे आदमी, संभव है, नाक सिकोड़ने लगें। इसी भयसे, हम इस युवतीको सुन्दरी कहें या नहीं—यह स्थिर न कर सके। यदि कृष्णवर्णा होनाही सुन्दरियोंकी श्रेणीमें बैठनेके लिये निषिद्ध है, तो द्रुपद-नन्दिनीको पानेकी आशासे भारतवर्षके राजालोग क्यों मरे जाते थे? ख़ैर, पाठक नाराज़ हों या खुश, हम डरते-डरते कहते हैं, कि वह युवती अकेली बैठी हुई रज़ाई सी रही है। वह यद्यपि कृष्णवर्णा है, तथापि सुन्दरी है। पासही कुछ दूरीपर, एक वृक्षके नीचे, एक बालक और एक बालिका खेल रही है। पाठक, इस युवतीको पहचानते हैं। यह सुन्दरी धनूकी स्त्री, भुवनमोहिनी है। भुवनमोहिनी एक मनसे काम कर रही है और रह-रहकर बालक-बालिकाकी ओर देखती जाती है। दिनके तीन बजेका समय होगा। धीरे-धीरे एक वृद्धा स्त्री भीगी धोती पहने और कन्धेके ऊपर एक भीगे कपड़ोंकी गठरी लिये उस कुटीरके आंगनमें आ उपस्थित हुई। उसे देखतेही भुवनमोहिनी हाथका काम छोड़ उठ खड़ी हुई एवं उसके कन्धेसे गठरी उतारती हुई बोली,—"मा! कपड़े तो भींगकर बड़े भारी होगये। मैंने तो पहलेही कह दिया था, कि तुम्हें बड़ा कष्ट होगा, रखदो, मैं कल स्नान करने जाऊँगी तो धो लाऊँगी। मेरे रहते तुम इतना कष्ट किस-

लिये उठाती हो, मा ?" इतना कहकर भुवनमोहिनी शीघ्रही एक सूखी धोती ले आयी। धोती पहनकर वृद्धाने कहा,—"बेटी! तुम अकेली क्या-क्या करलोगी? देखती हूँ, कि तुम्हें ज़रा बैठनेतककी तो फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। रानी! सब मेरा भाग्य है! मैं तुम्हें अपने घरमें बड़ी-बड़ी आशाएँ करके लायी थी। सोचा था, कि तुम्हारी जैसी लक्ष्मीको बड़े आदरके साथ रखूँगी, पर फूटे कर्म्मोंके दोषसे मेरी सब इच्छाओंपर पाला पड़ गया। हाय, तुमसी लक्ष्मीको इतने दुःख! ख़ैर, मेरा तो जो होना था, सो होगया। अब तो मैं आज मरी या कल, बस सारी लीलाएँ समाप्त हो जाँयेगी। पर तुम्हारी यह अवस्था, सोनेके चन्दा-सूरज जैसे ये बच्चे—तुम किसके आसरे रहकर कुलका मान बचाओगी? इसीका मुझे सोच है। जब सोचती हूँ, तब कलेजा फटने लगता है। हाय! जिसे मैंने नौ महीने पेटमें रखा, उसीने इस बुढ़ापेमें मेरा मुँह काला किया! अगर वह जनमतेही मर जाता, तो आजकेसे दिन देखनेमें नहीं आते। पर बेटी! तुम्हारी क्या हालत होगी? ख़ैर, जो होना था, सो होगया, अब मैं आशीर्वाद देती हूँ, कि तुम्हारे पाँवमें कभी काँटातक न लगे, जिससे इन बच्चोंके साथ तुम्हें किसी तरहकी तकलीफ़ न उठानी पड़े। तुम्हारे यह लाल राजा हों, तुम राजमाता होओ। पर न जानें क्यों, भगवान् मुझ अभागिनीकी बात नहीं सुनता? क्या कभी न सुनेगा? सुनेगाही किस पुण्यके ऊपर रीझकर? जिस पापिनीकी सन्तान घोर पापी

है, उसके पाप क्या कुछ कम होंगे ? फिर उस पापिनीका दिया आशीर्वाद किस तरह फलेगा ?"

कहना वृथा है, कि यह वृद्धा, कुल-केतु धन्नू और गिरिवाला-की जननी है। भुवनमोहिनी भीगे कपड़े सुखाती-सुखाती बोली,—"घबराओ मत, मा! तुम्हारे आशीर्वादसे ही मेरा कल्याण होगा। अगर तुम्हारे चरणोंमें मेरी श्रद्धा बनी रही, तो जो कुछ तुम कह रही हो, वह सब सच होगा।"

बस बातें यहीं पूरी हो गयीं। वृद्धाने कहा,—"बेटी! बातोंही बातोंमें एक नयी ख़बर सुनाना भूल गयी। गंगाके किनारेपर लोग बड़े अचरजकी बात कह रहे थे। कल रातको सुरेन्द्रनाथ मर गये।"

भुवनमोहिनी चौंक उठी। बोली,—"मर गये ? कैसे मर गये ? कौनसी बीमारी हुई थी ?" यह सुनकर वृद्धाने, शिवके कैलास-पर्वतसे आनेसे आरंभकर, सुरेन्द्र-वध तककी समस्त कथा कह सुनायी। भुवनमोहिनी चुप-चाप खड़ी-खड़ी सारी कथा सुनती रही—सुनकर एक दीर्घ निःश्वास त्याग किया, पर कुछ बोली नहीं। उसका हृदय उस समय मानों अत्याचारी, पीड़न-कारी और दुरात्मा सुरेन्द्रके लिये रो रहा था। भुवन सोच रही थी,—"सुरेन्द्रनाथको इतनी धन-सम्पत्ति, इतना सुख-स्वाच्छन्द्य, इतनी क्षमता और इतना प्रताप था, पर उसमें धर्म्म-भाव क्यों नहीं था ? वह अनवरत पापानुष्ठानकर देवताका क्रोध-भाजन क्यों बना ? क्यों उसने पतंगकी भाँति पाप-वह्निमें कूदकर प्राण-गँवाये ?" . . . . . .

धन्नूके पुत्र-कन्याने आकर खाना देनेके लिये वृद्धाको बड़ी हठके साथ खींचना शुरू कर दिया। इसीलिये उसे वहाँसे जाना पड़ा। अतएव थोड़ी देरके लिये सुरेन्द्र-सम्बन्धिनी आलोचना बन्द होगयी। बच्चेको भोजन देकर, धन्नूकी मा कहानियाँ सुनाने लगी। कहानियोंका रंग खूब जमा। बालक हुँकारा देते हुए अत्यन्त मनोयोगके साथ कहानी सुनने लगे।

"माजी कहाँ हैं? जीजी तो अच्छी हैं?"—कहता हुआ एक व्यक्ति कुटीरका दरवाज़ा खोलकर भीतर चला आया। आनन्दसे भुवनमोहिनीका मुख-कमल खिल गया। बालक खाना और कहानी सुनना छोड़कर बाहर भाग आये। धन्नूकी स्त्री बच्चोंको अपने हाथोंसे खाना खिला रही थी, वह भी उसी तरह उठ आयी। क्षणभरमें यह छोटासा कुटुम्ब आनन्द और उत्साहसे पूर्ण होगया। किसीको भी अपने कामका ख़याल नहीं रहा। भुवनमोहिनी उस आँगनमें एक चटाई बिछाकर बोली,—"बैठो, भैया! मकानसे कब आये? तबीयत तो अच्छी है? माजी अच्छी हैं? "दादा अच्छे हैं?"

आगन्तुकके हाथमें एक छोटीसी पोटली थी। उसे उसने ज़मीनपर रख दिया। किन्तु चटाईपर बैठकर भुवनमोहिनीके अनुरोधकी रक्षा न कर सका, और न उसके उक्त प्रश्नोंका कुछ उत्तर ही दे सका। "भैय्या" "भैय्या" कहकर प्रसन्न होते हुए धन्नूके बच्चे पास चले गये। आगन्तुकने प्रसन्नताके साथ दोनोंको गोदमें उठा लिया। खुशीके मारे बच्चे अनिर्वचनीय

सुखकी अवस्थामें जा पहुँचे। बालककी आँखें सजल होगयीं। आगन्तुकके नेत्रोंसे भी दो अश्रु-विन्दु टपक पड़े।

भुवनमोहिनीने कहा,—"उनके मुँह जूठे हैं, भैया! उन्हें गोदसे उतारदो—लाओ, हाथ-मुँह धो दूँ। ख़ैर, मैंने इतनी बातें पूछीं,—पर तुमने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया?"

आगन्तुक बालक-बालिकाको गोदसे उतारता हुआ बोला,—"क्या उत्तर दूँ? माजीने तो मुझसे एक बात भी नहीं पूछी? फिर मैं यहाँ किसलिये बैठूँ? आओ, मेरे भैया-बहन! हमलोग रूठकर यहाँसे चले चलें।"

धन्नूकी माने कहा,—"हाँ, भैया! जाओगे क्यों नहीं? मकानसे आकर अपने प्यारोंकी ख़ातिरमेंही लगगये—फिर इस बूढ़ीकी बातें किस तरह अच्छी लगतीं? मैं तो भाई! डरके मारे कुछ नहीं कह सकी। जिनकी बातें अच्छी मालूम हों, वे गलेसे लगकर बातें करें—मैं दूर खड़ी-खड़ी देखती हूँ। राधे! (धन्नूकी कन्याका नाम राधिका था) अपने भैयाको मत छोड़ना। वे तेरा जी खुश करनेके लियेही आये हैं—समझी?"

सच तो यह है, कि पुराने ज़मानेके आदमी, बड़े असभ्य और बेढब रसिक हुआ करते थे। सुरुचि-मार्ज्जित साधु पुरुष, कृपाकर हमें क्षमा करें। वृद्धाने जैसा कहा था, वही हमने ज्योंका त्यों ऊपर उद्धृत कर दिया है। वृद्धा फिर कहने लगी,—"राधे! अपने भैयासे बैठनेके लिये कह। मेरे कहनेसे

तो वे बैठेंगे नहीं। ख़ासकर आज मकानसे आनेके कारण अपने सतीशके लिये उनका मन घबरा रहा है।"

आगन्तुक युवा था, तथापि उसकी रुचि नितान्त निन्दनीय थी। वह कहने लगा,—"सतीश राधाका कौन होता है? वह तो तुम्हारा है। पर वह तुम्हारे जैसा हिंसक नहीं है। रोज़ तुम्हें देखनेके लिये उतावला रहता है। उसने मुझसे कई दफ़ा ज़िद की, कि मैं उन्हें देखने जाऊँगा।"

वृद्धा बोली,—"वह क्यों न उतावला होगा? उसे हमारा ख़याल रहता है। हमारी फ़िक्र रहती है। बूढ़ीके पास आनेमें उसे डर ही क्या? ख़ैर, तुम कह गये थे, कि ठीक तीन दिन बाद आऊँगा, सो आज दस दिन बाद आये हो। अच्छा है! मेरे भाग्य! अब बैठ आओ और घरके आदमियोंकी ख़बर सुनाओ।"

युवा इस बार बैठ गया। बिना बुलाये ही धन्नूके बच्चे उसकी गोदमें जा चढ़े। बालक-बालिकाको गोदमें चढ़ते देख, भुवनमोहिनीने कहा,—"जाओ, तुम सब खाना खा आओ। पड़ा-पड़ा सूख रहा है। अभी तुम्हारे भैया बैठे हैं। माजी! भैयाको कुछ कलेऊके लिये दो। जाओ भैय्या! तुम हाथ-पैर धो आओ। देखो तो, पैरोंपर कितनी धूल चढ़ रही है।"

युवा बोला,—"मेरे बहन-भैया खाना छोड़कर उठ आये थे क्या? ख़ैर, अच्छा किया। भैया! बासी खाना मत खाओ। आओ, मैं पेड़े देता हूँ।"

यह कह आगन्तुकने उस चटाईपर रखी पोटलीको खोलकर

उसमेंसे पेड़े निकाले। कहा,—"यह तो माजीका हिस्सा है, यह छोटी अम्माका हिस्सा है और यह तुम दोनोंका हिस्सा है। मैं यह बचा हुआ खालूँगा। क्यों ठीक है न?"

कहना वृथा है, कि पेड़ोंको देखकर बालक-बालिका बड़े प्रसन्न हुए। उस वक्त उस युवाने, बच्चोंके साथ बालकोंकी ही भाँति आनन्दसे उन पेड़ोंका भोग लगाया। भुवनमोहिनीने पानी लाकर दे दिया। पेड़ोंकी जेवनार होजानेपर वह अपनी मा और बुढ़िया अर्थात् माजीके साथ, अनेक सांसारिक वार्त्तालाप करनेमें प्रवृत्त हुआ। घरमें चावल, दाल, आटा है या नहीं, इसका पता लगाया। कल कौन-कौनसी चीज़ें आयेंगी, उन सबकी फ़िहरिस्त बनायी। खुदरे पैसे सब ख़र्च होगये, यह देखकर उसने तत्काल जेबसे एक रुपया निकालकर दिया। इसके बाद बोला,—"मैं आजही जाऊँगा और चार-पाँच दिन बाद फिर आऊँगा। तुम सब सावधानीके साथ रहना। खाने-पीनेमें किसी तरहका कष्ट न उठाना। जो-जो चीज़ें चुक गयी हैं, वे कल आजायेंगी। और अगर किसी ख़ास चीज़की ज़रूरत पड़े, तो जिस जगहका मैंने तुम्हें पता देदिया है, वहाँ ख़बर दे देना। उस समय यदि हो सका, तो मैंही आजाऊँगा या किसीको भेजूँगा। ईश्वरकी कृपासे तुम सब सानन्द रहोगे। अगर किसीको किसी तरहकी बीमारी हो जाये, तो जिन वैद्यजीका मैंने पता बता दिया है, उन्हें ख़बर करतेही वे स्वयं चले आयेंगे और रोगका निदानकर औषधकी व्यवस्था करदेंगे।

किसी बारेमें, किसी तरहका संकोच न करना। जो औरत घरका काम-धाम करने और बाज़ारसे चीज़-वस्तु लानेके लिये रख दी गयी है, वह काम तो ठीक तरहसे करती है न? अगर ज़रूरत पड़े, तो उसे दिनरात मकानपर ही रखने लगना। वह बड़ी मिहनती औरत है, जब जो चीज़ लानेका हुक्म दोगी, वह उसी समय ला देगी। आलस्य न करेगी।"

उक्त बातोंको सुनते-सुनते, भुवनमोहिनीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह कहने लगी,—"हमारी इतनी चिन्ता कभी किसीने नहीं की। अपने सबसे अधिक प्यारे आदमीने भी कभी इतना ख़याल न रखा। बेटा! तुम हमारे कौन हो?"

युवा बोला,—"मैं!—मैं तुम्हारे पेटसे पैदा हुआ पुत्र हूँ, मा! और छोटे भैय्याका सगा भाई हूँ, क्योंरी राधा?"

राधाने कहा,—"नहीं, तुम मेरे भैया हो।"

युवाके गलेसे चिपटकर लड़केने कहा,—"नहीं मेरे हो—मेरे।"

युवा दोनोंको प्यार करके बोला,—"मैं तुम्हारा भी भैया हूँ और तुम्हारा भी, क्यों ठीक है न? यह देखो, मा! एक पेटसे पैदा हुए भाई-बहन, हमारी भाँति इसी तरह प्यारसे रहते हैं।"

भुवनमोहिनी बोली,—"तुम देवता हो। तुम्हारे जैसे बेटेको पाकर मैं परम सौभाग्यवती हूँ। भगवान तुम्हें चिरंजीवी बनायें।"

युवा बोला,—"माताका आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होता। भगवान् अवश्य मुझे सदा सकुशल रखेगा।"

वृद्धाने कहा,—"मगर भैया! तुम इस तरह हमारा ख़र्च चलाते हो, ऐसे कैसे काम चलेगा? अपनी और हमारी, दो-दो गिरिस्तियाँ किस तरह पालोगे?"

युवा हँसकर बोला,—"बुढ़िया! तू तो बुढ़िया हो गयी है। देहमें थोड़ासाही हाड़-मांस है। इसे अपने और सगे भाइयोंके कन्धेपर बैठाना कौनसी बड़ी बात है? क्यों मा! तुम इतना सोच क्यों करती हो? अगर उस कुनबेके लिये है, तो इसके लिये भी है। जब वहाँ नहीं रहेगा, तब तुम भी उपवास कर लेना। मेरे तो दोनोंही घर अपने हैं।"

वृद्धाकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। वह आँखोंके आँसू पोंछती हुई बोली,—"तुम, भैया! आदमी नहीं हो।"

युवा बोला,—"आदमी नहीं, तो क्या शेर-चीता हूँ? हटो यहाँसे, हौआ हूँ, हौआ!"

वृद्धा बोली,—"बहू ठीक कहती है, तुम देवता हो।"

युवा बोला,—"तब तो मा! तुमने सदेह स्वर्ग पा लिया! मैं देवता-देवी कुछ नहीं हूँ। हाँ, देवता मेरे सहायक अवश्य हैं। पूर्वजन्मके पुण्य-फल और तुम्हारे आशीर्वादसे मुझे देवताकी सेवा करनेका अवसर मिला है। वे बड़ेही अनोखे देवता हैं। वे हमारीही जैसी सूरत-शक्लके देवता हैं। उनके घरबार और स्त्री-पुत्र सभी हैं। वे आहार-व्यवहार भी करते हैं। तोभी वे देवता हैं। जहाँ किसी तरहका दुःख या विवाद होता है, वहीं वे मौजूद होजाते हैं। उन्हें पुकारना नहीं पड़ता, ख़बर

नहीं देनी पड़ती। वे स्वयं सर्वत्र उपस्थित होजाते हैं। कभी वे दुरात्माओंको दण्ड देते हैं, तो कभी साधुओंकी सेवा करते हैं। कभी दुःखियोंके लिये एकान्तमें बैठकर आँसू बहाया करते हैं, तो कभी-कभी इच्छा करके दूसरोंका दुःख-विधान करते हैं। वे राजा नहीं, धनी नहीं, तोभी उनके यहाँ किसी चीज़की कमी नहीं है। धनकी ज़रूरत पड़नेपर उन्हें किसीके सामने हाथ फैलाना नहीं पड़ता। वे भीख नहीं माँगते, तोभी लोग उनके चरणोंपर धनका ढेर लगा देते हैं। उनके यहाँ वस्तु-सञ्चय नहीं होता, वरन् व्यय हर समय है। उनके कामोंमें स्वार्थकी मात्रा नहीं होती, केवल दूसरोंके लिये ही उन्हें काम करने पड़ते हैं। उन्हें भय तो छू भी नहीं गया। इतनी ताक़त किसीमें नहीं है, जो उन्हें किसी तरहसे खिन्न-अवसन्न कर सके। वे भयसे अनेक आदमियोंको अस्थिर कर देते हैं। वे प्रत्यक्षमें साहस और बलके अवतार हैं। यद्यपि उनके रहनेका कोई स्थान निश्चित नहीं है, तथापि जहाँ कहीं उनकी आवश्यकता होती है, वहीं वे तत्काल दिखाई देने लगते हैं। उनकी कोई अदालत नहीं है और न वे स्वयं कोई विचारक ही हैं, तथापि वे स्वाधीन भावसे सदा सूक्ष्म विचार किया करते हैं। माजी! तुम्हारे आशीर्वादसे, आज दो महीने हुए, मैं उन्हीं देवताके दर्शन पाकर धन्य होगया हूँ। उस समय मेरे पास किसी ज़रूरी कामके लिये हज़ार रुपये थे। उस धनको मैंने उन्हींके काममें ख़र्च कर दिया, एवं उसी समयसे मैं उनका दास कहाता हूँ। उनके उपदेश

और आशीर्वादसे मुझे कभी असुविधाका सामनाही करना पड़ता। मैं बड़े सुखसे रहता हूँ। उन्हीं देवताकी आज्ञा है, कि मैं तुम्हारी देखभाल करूँ। अगर तुम्हारे मनमें होगा, तो तुम भी उनका कभी दर्शन पाही जाओगी।"

युवाकी बातें सुनकर, छोटी मा और माजी, दोनों आश्चर्य्यसे भर गयीं। वृद्धाने कहा,—"जिनमें ऐसे अपूर्व गुण हैं, वे अवश्य बड़े भारी देवता हैं। उनके दर्शन करनेका सौभाग्य तुम्हीं जैसे पुण्यात्मा मनुष्योंको हो सकता है। हम तो महापापी ठहरे, हमें उनके दर्शन कहाँ मिल सकते हैं?"

युवा बोला,—"अवश्य मिलेंगे। जब मुझे मिल गये, तब तुम्हें उनके दर्शन क्यों न होंगे? अच्छा, अब मैं जाता हूँ। रात हुआ चाहती है। मुझे अभी शान्तिपुर जाना पड़ेगा। माजी! तुम अपने बेटा-बेटी की कुछ चिन्ता मत करना।"

वृद्धाने कहा,—"उनके नाम मत लो। मुझे उनके जीने-मरनेसे कुछ मतलब नहीं। तुम अभी क्यों जाते हो? अगर जानाही है, तो खापीकर चले जाना।"

युवा बोला,—"मुझे बहुतसे काम करने हैं। बिना अभी जाये काम नहीं चलेगा।"

भुवनमोहिनी बोली,—"यह लो, तुम्हारे देवताकी बात सुननेसे मुझे भी एक बात याद आयी। माजी अभी कहींसे सुनकर आयी हैं, कि कैलास-पर्व्वतसे शिवजी महाराजने आकर सुरेन्द्रनाथको मार डाला! यह बात क्या सच है?"

युवा बोला,—"मालूम होता है, कि यह ख़बर तुम्हारे यहाँ भी आगयी ! कैलाससे तो नहीं, हाँ, किसी जङ्गलसे एक संन्यासी सुरेन्द्रनाथके बैठकेमें अवश्य आये थे। मुझे सब मालूम है। संन्यासी महाराजने सुरेन्द्रबाबूका कोई अनिष्ट नहीं किया। वे जैसेके तैसे, सही-सलामत हैं। न मालूम, यह गप्प किसने उड़ादी ?"

भुवनमोहिनीने पूछा,—"वे संन्यासी कौन थे ?"

युवाने जवाब दिया,—"कोई तुम्हारे हितैषी रहे होंगे।"

भुवनमोहिनीने कहा,—"मेरा तो ऐसा कोई हितैषी नहीं।"

युवाने कहा,—"संन्यासी चाहे जो हों, पर उन्होंने सुरेन्द्र-बाबूका कुछ अनिष्ट नहीं किया। हाँ, यदि सुरेन्द्र आगेको सावधान होकर न चलेंगे और फिर पापियोंके जैसे अत्याचार किया करेंगे, तो संन्यासीने उन्हें यह बात अच्छी तरह समझा दी है, कि वे अबके उनका सत्यानाश किये विना न मानेंगे।"

भुवनमोहिनी,—"अब संन्यासीजी कहाँ हैं ?"

युवा,—"मुझे उनका पता नहीं मालूम। मैं भी तुम्हारी भाँति, शिवजीके आनेकी गप्प सुनकर राजीवपुर गया था। सुना, कि संन्यासी इसी तरह समझाकर चलेगये हैं। मैं खुद अपनी आँखों देख आया हूँ, कि सुरेंद्र अपने घरके बरामदेमें बैठे हुए मुँह धो रहे थे। लेकिन माजी ! बात चाहे जो हो, अगर अबसे सुरेन्द्रबाबू सम्हल कर न चलेंगे, तो एक न एक दिन उन्हें अवश्यही महा-विपत्तिमें फँसना पड़ेगा। संन्यासी

निःसन्देह कोई महापुरुष थे। उन्हें तुमारे ऊपर किये हुए सुरेन्द्र बाबूके अत्याचारकी बात भी अच्छी तरह मालूम थी। जिन-जिन बातोंका उल्लेख कर उन्होंने सुरेन्द्र बाबूको शासित किया, उनमें तुम्हारी बात भी शामिल थी।"

भुवनमोहिनीने कहा,—"तुम्हारी बातें सुनकर मैं निश्चिन्त होगयी। सुरेन्द्र बाबूके मरनेकी खबर पाकर मेरे हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा था; क्योंकि ऐसे आदमियोंकी मति-गति ठिकाने आजाना एक न एक दिन अवश्य निश्चित है। जब उनकी बुद्धि ठिकाने आजायेगी, तब उनके पास धन-बलकी कमी तो है ही नहीं, उनसे बहुत आदमियोंका भला हो सकता है। जो आदमी संगतिके दोषसे आज बुरे रास्तेपर चल रहा है, कुछ दिनों बाद वह स्वयं सुमार्गपर जा पहुँचेगा। उनके जीवित और कुशली होनेकी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"

युवा मनहीमन कहने लगा,—"मा! तुम्हारा यह सन्तान, तुम्हारे इन्हीं गुणोंपर मुग्ध होकर, तुम्हें माके नामसे सम्बोधित करता है।" प्रकटमें कहा,—"अच्छा, मा! तो मैं अब जाता हूँ। पाँच-सात दिनके बाद आऊँगा।"

युवाने बालक-बालिकाको गोदमें उठा, उनका मुँह चूम लिया और उन्हें खूब जीभरकर प्यार किया। इसके बाद धीरे-धीरे चला गया।

भुवनमोहिनीने दरवाज़ेतक उसके साथ जा, नीचा मुँह कर

अस्फुट स्वरमें पूछा,—"थोड़ी देर हुई, तुम माजीसे जिनका कुशल-संवाद सुना रहे थे, क्या वे वास्तवमें राज़ी-खुशी हैं?"

युवा बोला,—"हाँ, मा! धन्नू बाबू और उनकी बहन दोनों प्रसन्न हैं। यदि भगवान्‌ने कृपा की, तो उनकी भी मति-गति ठीक ठिकाने आजायेगी। हमलोगोंने उनके लिये ऐसा प्रबन्ध कर दिया है, जिसमें वे किसी तरहकी तकलीफ़ न उठा सकें।"

भुवनमोहिनी कुछ निश्चिन्तसी होगयी। युवा चला गया। जबतक उसकी भव्य-मूर्त्ति दीखती रही, तबतक भुवनमोहिनी उसे देखती रही। इसके बाद बोली,—"हा, घरमें अन्धकार होगया। असली सन्तानके जानेसे घर सूनासा मालूम होने लगा। जिस भाग्यवतीके ऐसी सुसन्तान है, उसके लिये दुनियामें तनिक भी दुःख नहीं। यह मेरा लड़का क्या मनुष्य कहलाने योग्य है?"

भुवनमोहिनीके मुँहसे वाक्यका पिछला अंश कुछ ज़ोरसे निकला था। उसे सुनकर वृद्धाने कहा,—"तुम्हारा लड़का यद्यपि मनुष्य-रूपमें है, तोभी उसे साधारण मनुष्य नहीं कहा जा सकता—ऐसे मनुष्योंको ही देवता कहा जाता है।"

बालकने रोते-रोते कहा,—"अम्मा! अम्मा! अमाला भैया कहाँ गया?"

राधिका बालककी अपेक्षा बड़ी थी। वह बोली,—"मा, मैं अपने भैयाके पास जाऊँगी।"

भुवनमोहिनी दोनों बालकोंको गोदमें लेकर बोली,—"तुम्हारे भैया घर गये हैं। जल्दी ही आयेंगे।"

वृद्धाका पौत्र, भुवनमोहिनीका लड़का और उन बालक-बालिकाका प्रिय भ्राता वह युवा कौन था? पाठक महाशय! पहचान गये क्या? कहना वृथा है, कि वह युवा हमारा परिचित, कृष्ण-नगरका रहनेवाला, वही मूर्ख यदुनाथ हालदार था।

तीसरा परिच्छेद।

चञ्चला नारी।

कालिदास भाग गया। हमारे पाठकोंको स्मरण होगा, कि बहूको लाठीसे भूमि-शय्यापर सुलाकर चक्रवर्त्ती महाशय जिस समय तरंगिणीकी भी उसी प्रकार चिकित्सा करना चाहते थे, उसी समय एक ब्राह्मणने सहसा पीछेसे आकर उनका हाथ पकड़ लिया था। मानों साँप कील दिया गया। उसने बहुतेरे यत्न किये, पर अपना हाथ न छुड़ा सका। लाठी छीन ली गयी और वह दाँत टूटे हुए सर्पकी भाँति छोड़ दिया गया। इसीसे उसने अब वहाँसे पलायन-परायण होजानाही अच्छा समझा। कापुरुष था न? भावी विपत्तिकी विभीषिका उसके नेत्रोंके सामने मूर्त्ति धारणकर, मुँह बा, निगल जानेके लिये तैयार दीखने लगी। कालिदास अवसन्न होकर वहाँ अधिक ठहरनेका साहस न कर सका। इसी लिये वह भाग गया। छाती अकड़ाकर इस प्रकारके

काण्डके सामने ठहरनेमें जैसे साहसकी आवश्यकता होती हैं, वह उसमें एकदम नहीं था। उसके चले जाने बाद वह अपरिचित पुरुष, धन्नूके पास पहुँचा और उसने यत्नके साथ उसकी चोटकी परीक्षा की। विशेष रूपसे परीक्षाकर उसने कहा,—"मरा तो नहीं है, थोड़ासा परिश्रम करनेपर बच सकता है।"

तरङ्गिणी, अबतक किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सी थी। अपने प्रेम-धन धन्नूको इस तरह आहत होते और अपनी मृत्युको बीचमें ही ब्राह्मण द्वारा अवरुद्ध होते देखकर भावनाओंसे उसके समस्त अङ्ग शिथिल होगये। वह क्या करे और कहाँ जाये, यह उसकी समझमें न आया। इसी समय ब्राह्मण महाशयके उपरोक्त वाक्योंको सुनकर उसे होश हुआ। वह बोली,—"मरा नहीं है? क्यों महाराज! क्या आप सच कह रहे हैं?"

ब्राह्मण,—"हाँ, हाँ, अभी मरा नहीं है, उपाय करनेसे बच सकता है। मेरे कामोंमें सहायता करो, जी जायेगा।"

तरङ्गिणी,—"मैं—मैं क्या करूँ? आप मुझे बचायें।"

ब्राह्मणने देखा, कि यत्न करना तो दूर रहा, यह स्त्री मेरी किसी तरहकी सहायता नहीं कर सकती। उन्होंने पूछा,—"उधर वह कौन सो रही है?"

तरङ्गिणी,—"वह इसीकी बहन है। आप उसे जगाकर जिस तरहकी मदद चाहें, लें। मैं अब कहाँ जाऊँ, महाराज?"

ब्राह्मणने कहा,—"तुम जाती कहाँ हो? अभी पुलिस आती होगी। उस समय सब लोग यही कहेंगे, कि तुम इस बेहोश

व्यक्तिके साथमें थीं। सारा पाप तुम्हारे सिर मढ़ दिया जायेगा। ख़ासकर उसकी बहिन जब जागेगी और तुम्हें नहीं देखेगी, तब यही कहेगी, कि तुम्हीं उसके भाईको मारकर भाग गयी हो। अँगरेज़ी राज्य है—भागकर कहाँ जाओगी? बड़ी जल्दी पकड़ जाओगी और इस खूनका सारा दोष तुम्हारे मत्थेही मढ़ा जायेगा।"

तरङ्गिणी काँपने लगी। उसने कहा,—"आपने मुझे एक बार बचाया है; कृपाकर इस बार भी मेरी सहायता कीजिये। अगर आप इस वक़ न आजाते तो कालिदासकी लाठीसे मुझे भी प्राण-वियोग सहना पड़ता। जब आपने मेरी प्राण-रक्षा की है, तब क्या इस आपत्तिसे मुझे न बचा सकेंगे? यहाँपर ज़ियादा देर करते हुए मुझे बड़ा भय मालूम हो रहा है। मैं यहाँ पल-भरके लिये भी नहीं ठहर सकती। यदि आप कृपा करें, तो मैं भाग सकती हूँ। आपकी ज़रासी सहायता पानेसे ही मैं बच सकती हूँ।"

ब्राह्मणने कहा,—"मुझसे क्या चाहती हो?"

तरङ्गिणी,—"यहाँ गंगाके किनारेपर ऊँचे खम्भोंवाले मकानमें एक राजा रहते हैं। उनसे मेरी जान-पहचान है। अगर आप दयाकर मुझे वहाँ पहुँचा दें, तो मैं सब आफ़तोंसे छुटकारा पा जाऊँ। क्या आप ऐसा करेंगे?"

ब्राह्मण बोले,—"इतनी ज़रासी बातमें सहायता करनेकी क्या ज़रूरत है? अभी तो रात भी अधिक नहीं गयी। रास्ते

और दूकानोंपर अभी लोगोंकी काफ़ी चहलपहल होगी। फिर राजाका मकान भी सदर सड़कपर ही है। उसका पता किसे नहीं मालूम? इसलिये तुम सहजहीमें वहाँ पहुँच सकती हो। पर यह तो बताओ, कि तुम्हारा यह साथी क्या योंही पड़ा रहेगा?"

तरङ्गिणी—"पड़ा रहे, मैं इसका क्या करूँ? मेरा वह होता ही कौन है? मैं यहाँ अब पलभरके लिये भी नहीं ठहर सकती। मुझे बड़ा डर लग रहा है।"

ब्राह्मण,—मैंने अपनी आँखों देखा है, कि तुम इस आदमीके गलेसे चिपटी हुई इसे शराब पिला रही थीं। ज़रूर इसके साथ तुम्हारा कोई न कोई गहरा सम्बन्ध है। ऐसी हालतमें तुम इसे अकेला छोड़कर क्यों भागी जाती हो?"

तरङ्गिणी,—"इस आदमीके साथ मेरा बहुत थोड़ा लगाव था। बातचीत भर थी। सो यही क्या, ऐसे तो मेरी जान-पहचानके बहुतसे आदमी होंगे। बस इतनी ही बातके लिये मैं अपनेको क्यों आफ़तमें डाल दूँ? अगर फिर दुबारा कालिदास चक्रवर्त्ती आजाये, तब? ना, महाराज! मैं अब यहाँ ज़रासी देरके लिये भी न ठहरूँगी।"

ब्राह्मण,—"देखो, अगर तुम थोड़ी देर यहाँ ठहर जाओगी, तो तुम्हारा किसी तरह अनिष्ट न होगा। यह ठीक है, कि अगर मैं चाहूँ, तो तुम्हें हर तरहकी आफ़तमें डाल सकता हूँ; पर मैं ऐसा न करूँगा। यहाँतक; कि अगर दारोग़ा-

साहब आयेंगे, तो मैं तुम्हारा नाम या पता-ठिकाना कुछ न बताऊँगा। पर इस आदमीकी बहन अवश्य सारी बातें कह देगी। उस समय तुम क्या करोगी?

तरङ्गिणी,—"मेरा पता कोई न पा सकेगा। मैं राजाके पास रहूँगी। उस जगहसे, किसकी ताक़त है, जो मुझे पकड़ ला सके?"

ब्राह्मण,—"और यदि इस रातके समय राजाके दरबान तुम्हें भीतर न जाने दें—और इस कारण, यदि तुम्हारा राजाके साथ साक्षात् न हो सके, तब क्या होगा?"

यहाँपर तरङ्गिणीकी गाड़ी अटक गयी। उसने कुछ सोचा; क्योंकि ब्राह्मणकी पूछी हुई बातें तो उसके मनमें कभी उठी ही न थीं। वास्तवमें उपर्युक्त बातें सच हो सकती हैं। वह थोड़ी देर कुछ सोच-विचार करनेके बाद बोली,—"ख़ैर, राजासे आज रातको भेंट हो या न हो, पर मैं यहाँ किसी तरह नहीं रुक सकती। मैं जाती हूँ।"

ब्राह्मण,—"जाओगी? ज़रूर ही जाओगी? अच्छा, जाओ। मैं तुम्हारा कोई भी अनिष्ट न करूँगा और साथमें इतना और भी कर दूँगा, कि जिसमें लाख चेष्टा करनेपर भी कोई तुम्हारा पता न पा सके। पर तुम दया कर इस औरतको जगाती जाओ। यह तुम्हारी संगिनीहै। इसे इस तरह बिना कुछ कहे-सुने छोड़ जाना ठीक नहीं है। इसके होशमें आनेका तो कुछ इन्तज़ाम करती जाओ!"

तरंगिणी,—"मैं क्या इन्तज़ाम कर सकूँगी? मैं स्त्री हूँ। मैं क्या जानूँ? इसके सिवा मेरा ऐरों-ग़ैरोंसे मतलबही क्या, जो झूठमूठ अपनेको आफ़तमें फँसाऊँ? उसके भाईके साथ मेरी जान-पहचान थी, इसलिये वह भी मुझे जानती है, मैं भी उसे जानती हूँ, पर वह मेरी कोई होती थोड़ेही है? मैं आपसे बीसों बार कह चुकी, कि मैं यहाँ एक मिनटके लिये भी नहीं ठहर सकती। मैं जाती हूँ, महाराज! अगर चक्रवर्ती आजायेगा, तो फिर मैं क्या करूँगी?"

ब्राह्मण,—"यदि तुम्हारी इच्छा जानेकी ही है, तो तुम शौक़से चली जा सकती हो। तुम्हारा किसी तरहका अनिष्ट न होने पायेगा; किन्तु ईश्वर तुम्हारे इस व्यवहारसे सन्तुष्ट न हो सकेगा। उसके विचारमें तुम अवश्यमेव दण्ड पाने योग्य ठहरायी जाओगी।"

तरंगिणी काँपती-काँपती घरसे बाहर निकली और बारम्बार चारों ओर भयभीतकी भाँति दृष्टिपात करती हुई भागगयी।

देखो, धन्नू बाबू! तुम्हारे गहरे प्रेमका आज कैसा परिणाम निकला! जिसके प्रेमसे तुम गर्वित थे, जिसका प्रेम तुम अनुपम समझते थे, जिसके प्रेमानुरोधवश तुम अपनी साध्वी पत्नी-की उपेक्षा करते थे, तुम्हारी वही प्यारी तरंगिणी, तुम्हारी ऐसी शोचनीय अवस्था देखकर भी, तुम्हें छोड़कर भागी जाती है। और जिस पत्नीको तुमने कभी सीधी तरहसे पुकारा भी नहीं; वह क्या खायेगी, क्या पियेगी, इसका भी कभी सोच नहीं

करते थे, पास आनेपर जिसे सदा चाण्डालिनी ही समझते थे, यदि आज वह देवी मौजूद होती, तो क्या करती, जानते हो ? वह तुम्हारे चरणोंको हृदयस्थलपर स्थान दे तुम्हें बचानेके लिये प्राणोंकी परवा न कर भगवान्से रोती-रोती प्रार्थना करती।

हाय, इतना होनेपर भी भ्रान्त मनुष्य अवैध प्रेमका क्यों अनुरागी होता है ?

धन्य ब्रह्मदेव! तुम्हारी इस पर-दुःख-कातरताको शतशःधन्यवाद है। यह हम अच्छी तरह जानते हैं, कि धन्नू तुम्हारा कोई नहीं है। उसके साथ कभी तुम्हारी बातचीत होती भी नहीं देखी गयी। सहसा कहींसे अवतीर्ण होकर तुम इस कुसमयमें उसकी जीवन-रक्षाका प्रयत्न क्यों कर रहे हो ? वास्तवमें तुम इसी मन्त्रके उपासक हो,—

"अयंनिजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"

भगवन्! तृणादपि लघु, इस धन्नू तेलीके जीवनकी रक्षाके लिये तुम्हारे ये आन्तरिक यत्न कभी निष्फल न होंगे। संभवतः तुम्हारी कृपासे धन्नू बच जायेगा।

तरंगिणीने डरते-डरते चलना शुरू किया। प्रत्येक पदपर अनेक प्रकारकी आशंकाएँ उसे व्याप्त करने लगीं। सामनेसे एक आदमी बड़े वेगसे चला आरहा था; तरंगिणी समझी, कि कालिदास आगया। समीपही एक मनुष्य अपने परिचित आदमीको ताक-झाँक रहाथा, तरंगिणीको मालूम हुआ, मानों कालिदास है। पीछेसे

एक आदमी भागा हुआ आया, उसे ऐसा मालूम हुआ, कि कालिदासही उसे पकड़ने आया। एक दूकानदारने ज़ोरसे सन्दूकका ढक्कन बन्द किया। तरंगिणीने समझा, कि शायद किसीने पीछेसे लाठी मारी। तरंगिणीको बड़ा भय मालूम होने लगा। वह चारों ओर चकित दृष्टिसे देखती-भालती जाने लगी। दो-एक आदमी उसे देखकर हँसे। तरंगिणीने सोचा, "मुमकिन है, कि ये लोग कालिदासकेही भेजे हों।" दो-चार व्यक्ति उसे रास्तेमें अकेली जाते देख, परस्पर रसिकता करने लगे। वार-नारीके हृदयमें इन बातोंके लिये काफ़ी जगह थी। उसे इन विषयोंमें ख़ूब अभ्यास था। इसलिये उनकी वह कुत्सित रसिकता उसको चकित और अन्यमनस्क न करसकी। अस्तु, इस प्रकार चलते-चलते वह गङ्गाके किनारे जा पहुँची। मनमें कालिदाससे सम्बन्ध-विच्छेद होजानेका थोड़ा ख़याल ज़रूर हुआ, पर यह समझकर, कि अबके उसका बड़ा भैया हाथ आरहा है, वह निश्चिन्त होगयी। रहा धन्नू, सो उसका वह होताही कौन है, जिसके लिये उसे चिन्ता करनी पड़ेगी? जो व्यक्ति शरीर-विक्रय कर प्रेमका व्यवसाय करते हैं, उनका हृदय इसी तरहका होता है। जिस तरह दूकानदार, बढ़िया ख़रीदार पानेसे, छोटे ग्राहकोंकी बातोंकी उपेक्षाकर बड़ोंकी संवर्द्धना करनेमें प्रवृत्त होता है, तरंगिणी भी वैसाही करती है। राजाको हस्तगत करनाही इस समय उसकी एकमात्र भावना है। वह इस विषयमें पूरे तौरसे कृत-कार्य्य होगी, इसमें उसे तनिक भी सन्देह नहीं है।

जाते-जाते तरंगिणी गंगातटपर पहुँच गयी। वहाँ जाकर उसे ऊँचे खम्भोंवाली अट्टालिकाके खोजनेमें विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। राजभवनके पास पहुँचकर उसने देखा, कि दरवाज़ेपर संगीन समेत बन्दूक़धारी और सिपाहियाना पोशाक पहने एक आदमी बड़ी मुस्तैदीसे पहरा देरहा है। तरंगिणीको पहले उसके पास जाते हुए संकोच मालूम हुआ। यदि राजाके पास पहुँचनेका कोई और उपाय होता, तो इस समय वह उस व्यक्तिको देखकर सीधी भागही जाती, पर किया क्या जाये? और कोई उपाय न था। वह साहस कर पहरेवालेके पास गयी। अन्य किसी आदमीको इतने समीप आया देखकर पहरेवाला द्वन्द मचाकर सारे मकानको सिरपर उठा लेता, किन्तु इस रात्रिकालमें एक स्त्रीको समीप आते देख, उसने कुछ गोलमाल नहीं किया, वरन् दाढ़ी-मूँछपर ताव दे, छाती अकड़ाकर अच्छी तरह खड़ा हो गया। स्त्रीके एकदम समीप आजानेपर पहरेवालेने पासहीके लम्पकी सहायतासे देखा, कि स्त्री, सुन्दरी और युवती है। कहना वृथा है, कि तरंगिणीको देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

तरंगिणी,—"पहरेदारजी! तुमसे मुझे कुछ बातें करनी हैं।"

पहरेदारने समझा, कि आज उसके लिये बड़ा अच्छा दिन है। बोला,—"कहिये, मुझे क्या करना पड़ेगा?"

तरंगिणी बोली,—"करना कुछ नहीं पड़ेगा, केवल अपने राजाको मेरे आनेकी ख़बर देनी होगी।"

एक तो स्त्री, तिसपर भी सुन्दरी! इस लिये उसके सात ख़ून माफ़ हैं! किन्तु पहरेवालेने अपने मनमें जो कुछ सोच रखा था, वह नहीं हुआ; क्योंकि स्त्री राजाको खोजती है। उसने पूछा,—"राजासे तुम्हें क्या काम है? वे तो मकानपर नहीं हैं। कुछ देर हुई, कहीं चले गये हैं। और यह बात बताना तो बहुतही मुश्किल है, कि वे कब लौटेंगे?"

तरंगिणी कुछ सहमी। बोली,—"कहाँ गये हैं, कुछ ख़बरहै?"

पहरेवाला,—"अरे राजा-महाराजोंके मनकी बात क्या पूछती हो? जब जहाँ दिल चाहा, उसी तरफ़ चल देते हैं। पर यह तो बताओ, कि राजासे तुम्हें क्या मतलब है? तुम क्या राजाको जानती हो?"

तरंगिणी,—"हाँ, जानती हूँ।"

पहरेवालेने इस उत्तरके बाद, तरंगिणीके साथ किसी प्रकारके आत्मीयता-स्थापनकी चेष्टा करनी व्यर्थ समझी। तरंगिणीने पूछा, —"नीलरतन चौधरीजी हैं?"

पहरेवालेको इस बार विश्वास हुआ, कि इस औरतका राजाके साथ वास्तवमें परिचय है। राजाकी परिचित स्त्री, इस तरह उनके साथ साक्षात् करने आयेगी, यह बात कुछ असंगत मालूम होनेपर भी, उसने तरंगिणीकी ख़ातिरदारी न करना अन्याय समझा। उसने कहा,—"हाँ, वे तो मौजूद हैं, क्या उन्हें ख़बर देनेकी ज़रूरत है?"

तरंगिणी बोली,—"अगर देसको, तो बड़ा उपकार हो।"

पहरेवालेने तरंगिणीको अपने साथ आनेके लिये कहा एवं मकानमें जाकर, तरंगिणीको नीचे खड़ा रहनेके लिये कह, दीवानजीके पास उसके आनेको ख़बर करादी। ख़बर देनेका काम सुपुर्द हुआ, ख़ानसामाको। कहना वृथा है, कि नीलरतन चौधरी वहाँ तत्काल उपस्थित होगये। उन्होंने विस्मयके साथ पूछा,—"यह कैसी बात है? विना बादलोंके ही वर्षा? अभी तो राजा साहबके साथ तुम्हारी ही बातें हो रही थीं! अच्छा, तो तुम आयीं किसके साथ? मैं तो स्वयं तुम्हारे पास जानेवाला था। और यह क्या बात है, कि तुम समय इस कुछ कातर और उत्कण्ठित सी मालूम पड़ती हो!"

तरंगिणीने कहा,—"मैं अधिक देरतक खड़ी नहीं रह सकती। पहले कहीं बैठ जाइये, इसके बाद सारी बातें आपको सुनादूँगी। आज एक बड़ा भयानक काण्ड होगया है।" इतना कहकर वह वहीं बिछी हुई चारपाईपर बैठगयी एवं आद्योपान्त सारी घटना कह सुनायी। बोली,—"मैं मारे डरके भाग कर सीधी यहीं चली आयी हूँ, अब मैं विना राजा साहबका आश्रय पाये, कहीं नहीं रह सकती।"

इतनी बातें सुनकर चौधरी महाशयने कहा,—"जिस तरह तुम राजाका ख़याल करती हो, उसी तरह राजा साहब भी तुम्हारा ख़याल रखते हैं। उन्हें मैंने अच्छी तरह जालमें जकड़ रखा है। आज उनके पास एक ऐसी जगहसे निमंत्रण आया था, जहाँ जाये विना किसी तरह कामही नहीं

चल सकता था। वहाँ उन्हें नितान्त अनिच्छासे जाना पड़ा है। वहाँ आज गाना-बजाना है। इसीसे उनके शीघ्र आनेकी भी आशा नहीं है। वे जाते समय मुझे तुम्हारे पास जाने और तुमसे विशेष क्षमा-प्रार्थना करनेका हुक्म देगये थे। मैं भी तुम्हारे पास जानेका उद्योग ही कर रहा था। ख़ैर, परमात्माको धन्यवाद दो। तुम्हारे रानी बननेमें अब बहुत देर नहीं है। तुम्हारे साथ अब पहलेकी तरह समान-भावसे बातचीत करनेमें मुझे भय लगता है। देखना, भई! ग़रीबकी बात पीछे भूल मत जाना।"

भली हो या बुरी, आशाके सफल हो जानेपर मनुष्यको अपरिसीम आनन्द हुआ ही करता है। तरंगिणीने बड़ी-बड़ी आशाएँ कर रखी थीं। तदनुसार इस समय उसे ख़बर भी अच्छी ही मिली। अतएव मारे आनन्दके वह समस्त पिछली घटनाओंको भूल गयी। तब उसके मनमें चिराभ्यस्त रूप-गौरव-का उदय हुआ। उसने सोचा, कि 'हाय! मैंने बड़ा बुरा किया, जो मैंने अपने इस सोनेसे रूपको कालिदास-रूपी बन्दरके हाथमें देकर मट्टी कर डाला। ख़ैर, अब भी जो कुछ बाक़ी है, वह पर्वत-प्रमाण है—राजा-महाराजाओंको बातकी बातमें मोह-मदिरा पिला सकता है। अभी हुआही क्या है? मैं इस राजा-को बिना पूरी तरह मुट्ठीमें किये थोड़ेही छोड़ूँगी?" भले ही राजाके दश रानियाँ हों। तरंगिणी उन्हें विराजमोहिनीकी भाँति लात मारकर भगादेगी। यही उसका स्थिर संकल्प है।

दीवानजीने कहा,—"तरंगिणी बीबी ! मुझे सन्देह है, कि आजके बाद फिर कभी तुमसे बातचीत करनेका मौक़ा मिलेगा; इसीसे इसी वक़ कहे देताहूँ, कि मुझे दया कर जो कुछ नक़द देना चाहो, सो अभी देदो। और एक बात है, राजाके बड़े दीवानजीका पद शीघ्रही ख़ाली होनेवाला है। बूढ़े दीवानमें अब काम-काज करनेकी शक्ति नहीं है। राजा साहब उन्हें थोड़ीसी ज़मींदारी देकर विदा करनेवाले हैं। तुमसे मैं अभी दरख़्वास्त किये देता हूँ, कि वह जगह मेरे सिवा और किसीको मत दिलाना। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि राजा साहब कलसेही तुम्हारे हाथके पुतले हो जायेंगे। राज्यका सारा कारोबार केवल तुम्हारे ही हुक्मसे चला करेगा। इस लिये देखना, तुम्हारी दया-दृष्टि मेरे ऊपर सदा बनी रहे।"

बड़ी ख़ुशीकी बातें हैं! अबे काठके उल्लू, कालिदास ! आकर देख, कि तरंगिणी आज कितने सौभाग्यकी अधिकारिणी है ! भाग्यको बड़ा समझ, जो इतने दिनतक इस स्वर्गकी लक्ष्मीने तेरे पास रहकर तेरी सेवा-शुश्रूषा की। तिसपर भी रे बन्दर ! तूने उसके प्रेमपर अविश्वास कर चोरोंकी भाँति उसके अड्डेपर चुपचाप आ उसके सिरपर लाठी मारी ! आश्चर्य्य है, तेरी इस ढिठाईपर !

नीलरतनकी उपरोक्त आकांक्षाओंको पूरा करनेके लिये तरङ्गिणीके वचन देनेपर उसने कहा,—"अब क्या करना सोचा है ?"

तरंगिणीने कहा,—"राजाही मेरे प्राण हैं, राजा साहब जो

कुछ भी चाहते हैं और चाहेंगे, उसके ख़िलाफ़ मैं सात जन्ममें भी न जाऊँगी। मेरे पाससे तुम्हारे लौट आनेके बादसे अब-तक राजाजी मेरे बारेमें ही बातचीत कर रहे थे, तब इस जीवनमें राजाको छोड़कर मैं और जगह कभी न रह सकूँगी। यहाँ आयी हूँ, तो अब सदा यहीं रहूँगी।"

नीलरतनने कहा,—"यह तो ठीक है। राजाकी इच्छा तुम्हें अपने हाथसे खोनेकी नहीं है। तुम्हारे रूप, गुण और सुन्दर स्वभावने उन्हें इतना मोह लिया है, कि इस समय तुम्हें न पाने-पर उनके सारे काम-काज रसातल चले जा सकते हैं। इस लिये राजा तुम्हारे जीवनभर आज्ञाकारी बने रहेंगे। पर मैं देखता हूँ, कि इस समय तुम बड़ी कच्ची बात कह रही हो। यहाँ-तक, कि तुमने बच्चोंको भी मात कर दिया। तुम तो काफ़ी अक़्ल-मन्द हो, फिर ऐसी बोदी बातें किसलिये? इस वक़्त अपने सामने जैसा बढ़िया मौक़ा मौजूद है, उसे देखते तुम्हारा यहाँ रहना किसी तरह ठीक नहीं है। ऐसा सुन्दर सुयोग कभी उपस्थित न होगा। इस लिये मैं जो कुछ कहूँ, उसे ध्यान-पूर्वक सुन लो, बादको चाहे जो करना और कहना। यहाँपर तुम्हें नहीं रक्खा जायेगा। कालिदास जिस मकानमें रहता है, वह मकान वास्तवमें तुम्हाराही है। इस समय तुम्हें वहीं जाकर रहना होगा।"

तरङ्गिणीने कहा,—"अभी तो ऐसी घटना हो चुकी है और फिर भी मैं वहीं रहने जाऊँ? किस साहससे जाऊं

और किस भरोसेपर रहूँ ? कालिदास मुझे जानसे मार डालेगा ।"

नीलरतनने हँसकर कहा,—"तुम पागल हो ! तुम्हारी अवस्था कम है, इसीसे ऐसी कच्ची बात कह रही हो। कालिदासकी क्या मजाल, जो तुम्हें जानसे मार डालेगा ? किसके धड़पर दो सिर हैं, जो राजा अरविन्दकुमार रायकी आज्ञाको टाल सके ? भला चक्रवर्त्ती तो एक सामान्य सा दूकानदार ठहरा, स्वयं बादशाह भी अगर तुमसे बातें करना चाहें, तो बिना सलाम किये नहीं कर सकते। इसलिये तुम्हें अभी वहाँ जाकर कालिदास-की सारी चीज़-वस्तुपर अधिकार कर लेना पड़ेगा। इस समय कालिदासका मकान, माल, असबाब, सभी तुम्हारा है। चक्रवर्त्ती इस वक्त है कहाँ ? वह तो खून करके कभीका भाग गया। वह क्या ऐसा बुरा कर्म कर चुपचाप घरमें जाकर बैठ सकता है ? प्राणोंके भयसे कहीं जाकर छिप गया होगा। और यह भी स्थिर है, कि छः महीनेतक उसका प्रकट होना मुमकिन नहीं। अतः इसी समय तुम्हें उसके मकानपर जाकर अपना दख़ल-क़ब्ज़ा करलेना चाहिये।"

तरङ्गिणीने कहा,—"अच्छा, मान भी लूँ, कि इस समय वह भाग गया है, पर दश दिन बाद अगर वह फिर आजाये, तो मैं क्या करूँगी ?"

चौधरी महाशय फिर हँसकर कहने लगे,—"अगर मानलो, कि दुबारा आ जाये, तो हम लोग उसे मकानमें घुसने ही किस

तरह देंगे? राजाके खुली संगीनोंवाले पहरेदार हर समय तुम्हारे मकानपर पहरा दिया करेंगे। फिर इतनी किसमें ताक़त है, जो तुम्हारे मकानमें पैर भी रख सके? यमराज भी तुम्हारे पास आनेका साहस न कर सकेंगे, चक्रवर्ती बेचारे-की तो बिसातही क्या है? उसके जैसे आदमी तो तुम्हारे लिये रसोई पकाया करेंगे। और देखो, विना अलाहिदा मकानमें रहे, राजाका और तुम्हारा स्वच्छन्दतासे भोग-विलास नहीं हो सकता। इसीसे मैं स्वयं ही एक ऐसे एकान्त मकानकी तला-शमें था। राजा इस बातको तनिक भी नहीं समझते, पर तुम्हीं विचार कर देखो, कि भला जिस मकानमें राजाके घरके लोग रहते हैं, कचहरी लगा करती है, उसमें तुम्हारा मिलना-भेंटना कैसे ठीक हो सकता है? आमोद-प्रमोद तो एक तरफ़ रहे। और यह निश्चित बात है, कि वे तुम्हें अपनी आँखोंकी ओट एक मिनटके लिये भी न होने देंगे। फिर जब सब समय तुम उन्हींके पास एक ही मकानमें रहोगी, तब सारे राज-काज मट्टी हो जायेंगे या नहीं? जब तुम सबसे बढ़कर अपनी आत्मीय हो, तब राजाके कामोंका इस तरह सत्यानाश होता किस तरह देख सकोगी? जब तुम उनकी सर्व-प्रधान आत्मीया हो, तब तुम्हें ऐसा काम न करना चाहिये, जिससे राजा साहबका किसी प्रकार नुक़सान हो। तुम तो समझदार हो। राजाकी सुख-समृद्धिमें जितनी वृद्धि होगी, उतनी ही तुम्हें सुविधा होगी। राजाजी, संभवतः, तुम्हें यहाँ देखकर अपनी आँखोंकी आड़में न रहने देंगे। पर यह ठीक तो नहीं है?"

तरङ्गिणीने कहा,—"अच्छी बात है। पर वहाँ राजा साहब भी जाया करेंगे या नहीं?"

नीलरतन बोले,—"जायेंगे क्यों नहीं? बिना जाये उन्हें कल ही कब पड़ेगी? जहाँ तुम रहोगी, हर समय उनका मन वहीं रहेगा। कल प्रातःकाल वे तुम्हारे मन्दिरमें अवश्य उपस्थित होंगे। और एक बात विचारनेकी है। वह यह, कि अपने प्रेमिकसे दूर रहनाही अच्छा होता है। क्योंकि यदि प्रेमिक और प्रेमिका सदा एकही जगह रहें, तो प्रेमिका घाटेमें रहती है। राजा, मालदार आदमी हैं। उनकी सालाना आमदनी चार लाख रुपये हैं। इसके सिवा सोना, चाँदी, हीरा, मोती आदिकी तो कुछ गिनती ही नहीं। यदि उसका यथेष्ट भाग तुम्हारे घरमें न जाये, तो राजाके साथ प्रेम करके लाभही क्या हुआ? लेकिन भई! मैं फिर याद दिलाये देता हूँ, कि सुखके समय मुझे भूल मत जाना। मैं जैसे तुम्हें आज अच्छी सलाहें दे रहा हूँ, उसी तरह आगे भी देता रहूँगा। मैं राजासे उम्रमें बहुत बड़ा हूँ। उनके पास रहते-सहते मुझे जितने दिन होगये, उतने किसीके भी नहीं हुए होंगे। मैं उनके स्वभाव-से भली भाँति परिचित हूँ। अगर तुम मेरे परामर्शके अनुसार काम करोगी, तो एक न एक दिन तुम्हीं सर्वेश्वरी हो जाओगी।"

तरङ्गिणीने कहा,—"तुम्हारे जैसा आदमी मैंने कभी नहीं देखा। न मालूम तुम पूर्व-जन्मके मेरे कौन हो? ख़ैर, यह बात तुम अच्छी तरह याद रक्खो, कि मेरे लाभमें तुम्हारा भी

काफ़ी हिस्सा है। पर भाई, आज रातको तो मैं उस मकानमें नहीं जाऊँगी।"

नीलरतनने कहा,—"क्यों? डर किस बातका है? तुम्हें हमलोग अकेले तो भेजेंगे ही नहीं? तुम्हारे साथ दो बरक़न्दाज़ जायेंगे, मैं ख़ुद चलूँगा। तुम्हें उस मकानमें पहुँचाकर, सारे इन्तज़ाम कर, पहरेकी तैनाती करनेके बाद मैं यहाँ लौट आऊँगा? इन बातोंका तुम तनिक भी ख़याल मत करो।"

तरङ्गिणीने कहा,—"जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो, वैसा करो। मैं तुम्हारी सलाहके ख़िलाफ़ कोई काम न करूँगी।"

कुछ देर बाद तरङ्गिणी, नीलरतन और दो बरक़न्दाज़ उस गंभीर रात्रिकालमें, राजभवनसे निकले।

पांचवां परिच्छेद।

हरिदास।

शान्तिपुरके उत्तर-पश्चिम कोणमें गोपीनाथपुर या नया गाँव नामकी एक छोटीसी बस्ती है। यह शान्तिपुरकी म्युनिसिपैलिटीमें ही शामिल है। इसमें कितनेही घर दरिद्र लोगोंके हैं। बस्ती एकदम उदास और उत्साह-वर्जित है। शाकान्न-भोजी एकाहारी ग्राम-वासियोंसे म्यूनिसिपैलिटीके अधिकारी टैक्स वसूल करनेमें कभी दया नहीं करते एवं उनका टूटा लोटा और फूटी थाली नीलाम करनेमें भी तनिक आगा-पीछा नहीं करते। लेकिन ग़रीब ग्रामीणोंके चलने-फिरनेके

लिये ठीक रास्ता है या नहीं, उनको पानीय जलकी सुविधा है या नहीं एवं उनकी स्वास्थ्य-रक्षाकी सुव्यवस्था है वा नहीं, इत्यादि विषयोंपर किसीकी भी दृष्टि नहीं। इस लिये गोपीनाथपुरमें अच्छा रास्ता नहीं, स्वच्छ जल नहीं और सारा गाँव मलिनतासे परिपूर्ण है। अधिवासी लोग स्वास्थ्य-विहीन हैं। किन्तु वहाँके दरिद्र, अस्वस्थ और कातर अधिवासियोंके लिये एक आनन्द-जनक, उत्साह-प्रद और प्रीतिकर सामग्री भी गाँवमें है। वहाँ 'गोपीनाथजीका' एक मन्दिर है। वही मन्दिर उनके परमानन्दका स्रोत एवं सब प्रकारसे प्रीतिका निकेतन-रूप है। गोपीनाथ-देवकी मूर्त्ति दारुमय है; किन्तु सुविशाल और अलौकिक शोभा-युक्त है। यह देवमन्दिर कब बना, इसका आदि-प्रतिष्ठाता कौन है? इसकी प्रतिष्ठा किस तरह हुई? इसका पता हमें नहीं मालूम। पहले शान्तिपुरके जिस भागमें यह मन्दिर प्रतिष्ठित था, उस भागको भागीरथीमें डूबते देख उस समयके पुजारियोंने उस मूर्त्तिको वहाँसे हटाकर आधे कोसकी दूरीपर इस गाँवमें ला स्थापित किया। उसके पहले यहाँ बस्ती नहीं थी। तभीसे यह गाँव बसना शुरू हुआ और 'नया गाँव' कहलाने लगा। शान्तिपुरके लोगोंको इस मन्दिरके आविर्भाव और स्थापनाका इतिहास भली भाँति नहीं मालूम। इधर-उधर जो बातें किम्वदन्तीके रूपमें फैली हुई हैं, उनसे इस मन्दिर-की अपूर्व महिमा और देवताकी अलौकिक शक्तिका परिचय प्राप्त होता है। इसकी इस दैवी शक्ति और महिमाका लोगोंको

इतना प्रवल विश्वास है और ऐसे-ऐसे चमत्कार लोगोंने देखे हैं, कि अव उनको किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रही। कोई-कोई इसे 'दाऊजीका मन्दिर' भी कहते हैं। इस मन्दिरके वर्त्तमान पुजारी दरिद्र हैं। मन्दिरकी अवस्था भी दरिद्रही है। वह वड़े बुरे स्थानमें है, शोभाहीन है, आडम्वर-शून्य है और उत्साह-वर्जित है। परन्तु यह आडम्वर-शून्य देवालय, यह वसन-भूषण-विहीन देव-प्रतिमा, ग्रामवासियोंके गौरवकी सामग्री है। वे इसे देखकर वड़ा आनन्द और वड़ी शान्ति लाभ करते हैं।

इस गाँवके एक किनारेपर हरिदास नामक एक हिन्दू जुलाहेका मकान है। उसकी अवस्था प्रायः पचास वर्षकी है। उसके परिवारमें स्त्री, चौदह वर्षका एक वालक, दो अविवाहिता कन्याएँ और एक विधवा वहन है। हरिदासके दो कच्चे मकान हैं, जो इस समय वड़ी बुरी दशामें हैं। दरिद्रता सदा उसे ग्रास किये रहती है, अभाव दिन-रात मुँह वाये उसको निगलनेके लिये उसके सामने खड़ा रहता है। उसकी वह हड्डी-चमड़े भर वची हुई देह, फटे-पुराने कपड़े, रूखे वाल और उदास चेहरा आदि सभी वातें उसकी वड़ी भारी दरिद्रताकी सूचना देती हैं। हरिदास सारे दिन कपड़ा बुनकर भी अपने परिवार-वालोंको भरपेट भोजन नहीं दे सकता। वह जैसा अथक परिश्रम करता है, उसे देखकर पास-पड़ोसके आदमियोंकी आँखोंमें भी आँसू आजाते हैं। पर इतनेपर भी उसे एक-वार आधा पेट भोजन मिलनेके सिवा प्रायःही पूर्णाहार नहीं मिलता।

मैञ्चेष्टर! तुम्हारी प्रतियोगितासे आज भारतके वहुतसे मनुष्य अन्न-हीन और जीवन्मृत होगये हैं। भारतका वस्त्र-व्यवसाय नष्ट हो गया है। भारतके कपड़ा बुननेवाले जुलाहे एकवारगी मर गये हैं। भारतकी अशेष शिल्पोन्नतिके परिचायक, सूतके वस्त्रोंकी अव विक्री नहीं होती। समस्त देश तुम्हारे स्थूल वस्त्रोंसेही छा गया है। जो लोग भारतोद्धारका वीड़ा उठाये हुए हैं, उनकी दृष्टि इस तुच्छ विषयपर नहीं आकर्षित होती। इसलिये इस दारुण दुर्गतिके प्रतिकारका उपाय साधारण मनुष्य भी नहीं सोचते। इस प्रकारका दुःख-दारिद्र्य होते हुए भी जो व्यक्ति वक्तृता देना जानते हैं, उनके रसना-रूपी घोड़ेको कोई चतुर सवार भी लगाम देनेका साहस नहीं कर सकता!

और हरिदासकी स्त्री और वहन क्या ख़ाली वैठी रहती हैं? वे भी, गृहस्थीके काम-धन्धोंसे फुर्सत पाकर एकमनसे चर्खा काता करती हैं। इतना होनेपर भी जो कुछ प्राप्त होता है, वह कुछ नहींके वरावर है। पर सन्तोषकी वाततो यह है, कि वे इसेही कुवेरकी सम्पत्तिका विपुल भाग समझकर संतुष्ट होजाते हैं। पर हमारे अनुमानसे उपर्य्युक्त उपायोंसे जो कुछ भी अर्ज्जन होताहै, उससे कुटुम्वका पालन किसी तरह नहीं होता। वालक-वालिकाओंको भरपेट और कभी-कभी हरिदासको भी सन्तोष होने योग्य भोजन मिलजाता है; पर उसकी स्त्री और वहनको तो सदैव नाम मात्रको ही भोजन मिलता है।

हरिदास वड़ा साधु पुरुष है। इतना दुःख-दारिद्र्य

होनेपर भी वह अपनी सत्यताका कभी त्याग नहीं करता। हरिदास कभी किसीको नाराज़ नहीं करता। पड़ोसमें प्रायः अनेक प्रकारके झगड़े हुआ करते हैं, पर वह कभी उनकी ओर ध्यान नहीं देता। लोग कहते हैं, कि उसके द्वारा कभी किसीका अपकार नहीं हुआ। इतनेपर भी वह परोपकार करनेकी चेष्टा करता है। लोग सुनें या न सुनें, पर वह सभीको सुपरामर्श देता है; पड़ोसमें जब कभी किसीको हानि होती है, तब हरिदास तत्काल उत्कण्ठित हो उठता है एवं मिथ्या सहानुभूति नहीं प्रकट करता। इसी लिये कहते हैं, कि हरिदास परम साधु है। हमारे पाठकोंमेंसे कोई-कोई सज्जन कह सकते हैं, कि हरि-दासमें ऐसा कौन सा सद्गुण देखा गया, जिससे यहाँ उसकी प्रशंसाके पुल बाँध दिये गये? जिन बातोंका ऊपर उल्लेख किया गया है, वे तो प्रायः सभी मनुष्योंमें होनी चाहियें। यदि हरिदासमें वर्त्तमान हैं, तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या? बात ठीक है; पर हमने आजतक कभी किसीके मुखसे यह नहीं सुना, कि अमुक व्यक्ति बड़ा मातृ-भक्त है, इस लिये बड़ी प्रशंसाके योग्य है या अमुक महाशय बूढ़े बापकी नित्यप्रति सेवा-शुश्रूषा किया करते हैं किम्वा अमुक महात्मा विपद्में पड़े हुए भाईको दो रुपये देकर उसके कुटुम्ब-पालनमें सहायता दिया करते हैं, अतएव बड़ी बड़ी प्रशंसाके योग्य हैं। आजकलके ज़मानेमें जब मातृ-भक्ति, भ्रातृ-स्नेह आदि अवश्य पालनीय धर्म्म भी प्रशंसाके योग्य होगये हैं, तब हम क्षुद्र हरिदासकी साधुताकी

प्रशंसा क्यों न करें? हमारा साधु हरिदास, आजकलकासा नव्य सभ्य व्यक्ति नहीं है और न आगेको होनेकी आशाही है। उसके पास 'गुप्त चरित्र' और 'सार्वजनिक चरित्रों'का भाण्डार नहीं है। इसलिये सभ्यता-सम्मत मार्ज्जनीय प्रतारणा वह नहीं जानता। आप लोग भलेही ऐसे आदमीको नितान्त मूर्ख कहें, पर हमारी दृष्टिमें वह साधु है।

शान्तिपुरके पास रामनगरमें अद्वैत नामके एक महाजन रहते हैं। वे जातिके कायस्थ, किन्तु व्यापारमें पूरे बनिये हैं। रुपयेका लेनदेनही उनका व्यवसाय है और इस विषयमें वे दया-धर्म्मका नाम भी नहीं जानते। वे झूठमूठ आँसू गिराने और बातें बनानेमें बड़े चतुर हैं। उन्होंने इस हीन व्यवसायके द्वारा खूब रुपया जमा करलिया है। परन्तु उनकी धन-तृष्णा किसी तरह शान्त नहीं होती। वे बड़ेही निष्करुण भावसे कारो-बार चलाते हैं। उनकी उम्र इस समय लगभग साठ वर्षके है, देह बड़ी गठीली और तोंद बड़ी ऊँची है। नाकके ऊपरसे ललाट-पर्य्यन्त गोपीचन्दनका तिलक और देहके नाना स्थानोंपर राधा-कृष्णके नाम सदा अंकित रहते हैं। कण्ठमें तुलसीकी माला, मुखमें कृष्ण-कृष्णकी ध्वनि और मधुर हास्य भी विराजमान रहता है। अद्वैत परम वैष्णव हैं। फलतः उनमें वैष्णवोंके अनेक लक्षण हैं। उनमें क्रोध नहीं है। असामी भलेही उनको गाली देजाये, तोभी वे उसपर नाराज़ नहीं होते। हाँ, वे उसके सूदका एक पैसाभी नहीं छोड़ते। ब्राह्मण-देवताकी सूरत देखतेही अद्वैत

महाभक्तिके साथ झट प्रणाम कर लेते हैं। किसीकी विपत्तिकी बात सुनतेही वे हाय-हाय करके सारे मुहल्लेको सिरपर उठा लेते हैं। मृदंग, खरतालके साथ गोपियोंका कृष्णके प्रति उलाहना आदि गीत सुनकर वे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगते हैं। अद्वैत निःसन्तान हैं। अभी कुछ ही दिन बीते, कि उनका तीसरा विवाह हुआ है। गृहिणी मञ्जरी-दासी सुन्दरी हैं। उनकी अवस्था भी अधिक नहीं, केवल बाईस सालकी है। कहना व्यर्थ है, कि यह मञ्जरी-दासी वैष्णव-चूड़ा-मणि अद्वैत घोषके सात जन्मोंकी तपस्याका धन हैं!

कई वर्ष पहले भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था। उस समय सारी वस्तुएँ महँगे दामोंपर भी मिलनी दुश्वार थीं। सैंकड़ों आदमी निराहार मरते थे। हरिदासने सन्तानको भोजनाभावसे मरते देख अद्वैतसे १५) रुपये उधार लिये थे। पर इन हज़रतने हरिदासका मकान तो एकतरफ़, उसके कुल बर्त्तन-भाँडे गिरवीं रखवा लिये।

हरिदासको आशा थी, कि दुर्भिक्ष दूर हो जानेपर व्यवसायमें उन्नति होगी, रात-दिन परिश्रम करके जैसे होगा, वैसे ऋण चुका दूँगा। इसके अलावा उसे एक और बातका भी बड़ा भारी आसरा था। वह यह, कि उसकी बड़ी कन्या विवाह-योग्य होगयी थी। बङ्गालके जुलाहोंमें कन्याके विवाहमें वरका पिता कन्याके पिताको कुछ रुपया भेंट करता है। तदनुसार हरिदासको उस रुपयेसे भी ऋण-परिशोध होजानेका विश्वास

था। किन्तु दुःखकी बात है, कि हरिदासके दुर्भाग्यसे कोई मनोनुकूल पात्र न मिला। मिले भी तो ऐसे, जिनके घर चूल्हेपर लोहेका तवा भी नहीं था। हरिदासकी अपेक्षा अधिक उन्नतावस्थाके जो पात्र मिले, वे नितान्त उच्छृङ्खल और असत्-स्वभावके दिखाई दिये। धर्म्म-भीरु हरिदास यह सब देख-भालकर ऐसे अपात्रोंको कन्या-दान करना महापाप समझता था; किन्तु महाजनका रुपया, सूद और असल, सब मिलाकर बहुत अधिक होगया था। अद्वैत घोषने अवधि रहते तो एक दिनके लिये भी रुपयेका तक़ाज़ा नहीं किया; पर अवधिके पूर्ण होनेके एक सप्ताह पूर्व्वसे ही उन्होंने हरिदासके पास आकर पन्द्रहकी जगह पैंतीस रुपयेका हिसाब जोड़ अपना पावना माँगा। हरिदास मारे डरके काँपने लगा। "पैंतीस रुपये? बापरे बाप! इतना रुपया किस तरह चुका सकूँगा!" यह सोच अद्वैतसे हाथ जोड़कर बोला,—"मालिक! इतने दिन बीत गये, और दो महीने ठहरो। मैं इसी महीनेमें कन्याका विवाह करके तुम्हारा सब रुपया दे दूँगा। तुम्हें तो मालूम ही है, भैया! कि मेरी आमदनी थोड़ी है।"

अद्वैत घोषने कहा,—"भाई! अब ठहरनेसे काम न चलेगा। यदि रुपया नहीं दे सकते, तो मैं क्या करूँ? अबतक क्या करते रहे? परिश्रम करके जोड़ा क्यों नहीं? हरे कृष्ण! घोर कलिकाल है!"

हरिदासने कहा,—"भैया, क्या करूँ? रोज़गार चेता नहीं, लड़कीके लिये बड़ी चेष्टा की; पर कहीं अच्छा वर न मिला।

आशा थी, कि लड़कीके विवाहमें जो भेंट मिलेगी, उसीसे मय सूदके सब रुपये चुकता करदूँगा।"

सारी बातें सुनकर अद्वैतने कहा,—"भैया! यदि तुम अपनी कन्याका विवाह न कर सके, तो इसमें मेरा क्या दोष है? अब तुम्हारी दस्तावेज़की अवधि बीत गयी। रुपया न मिलनेसे आख़िर मुझे तुम्हारे ऊपर नालिश करनी पड़ेगी।"

हरिदास चौंक पड़ा। बोला,—"ना भैया! तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, नालिश न करना। नालिशमें तो बड़ा ख़र्च पड़ता होगा?"

अद्वैतने कहा,—"हाँ, नालिश होनेपर बहुत ख़र्चा देना पड़ता है, पर मेरा क्या? तुम्हें ही पैंतीसकी जगह पचास देने पड़ेंगे। अब बताओ, भाई! मैं क्या करूँ? जबतक काग़ज़की मियाद न बीती थी, तबतक तो मैंने एक बार भी रुपयेका तक़ाज़ा नहीं किया। पर अब मैं बिना नालिश किये न मानूँगा।"

हरिदास फिर बोला,—"और दो महीनेके लिये सब्र करो, भैया! जैसे अबतक तुमने सब्र किया, वैसेही और दो महीनोंके लिये सही। मैं अब जैसे भी होगा, शीघ्रही तुम्हारा रुपया देदूँगा।"

अद्वैतने कहा,—"अच्छी बात है। तुम रुपयेका बन्दोबस्त करो। मैं तबतक नालिश दायर करता हूँ; क्योंकि बिना नालिश किये रुपयोंका पाना मुश्किल है। डरही क्या है? तुम रुपये इकट्ठे करके मेरे हवाले करो, मैं तबतक इसका इन्तज़ाम करता हूँ। मुक़द्दमा शुरू होते न होते भी तो एक-दो महीने बीत जायेंगे। उसके लिये डरकी कौनसी बात है?"

हरिदास और कुछ न कह सका; किन्तु उसके मनमें बड़ा भय हुआ। अद्वैत चले गये। हरिदासने भी पड़ोसके और दो-एक व्यक्ति परिचित लोगोंसे आजकी उपर्युक्त बातोंको कहा। लोगोंने उसे बेहद डराया; परन्तु किसीने उसकी सहायता करनेका वचन न दिया। तब वह दाऊजीके मन्दिरमें चला गया। वहाँ जाकर उसने सारी बातें अपने परमाराध्य देव, श्रीदाऊजीके आगे निवेदन कीं। भगवान्‌ने उसे क्या कहकर सान्त्वना दी? सो तो हमें कुछ मालूम नहीं; पर वह जब घर लौटा, तब उसका चित्त शान्त और सुस्थ अवश्य ही था।

अब उसने अगले दिनसे ही कन्याके लिये पात्र खोजना आरम्भ कर दिया। हाथके सब कामोंको उसने बहुत दिनोंके लिये दूर रख दिया। आय और भी कम हो गयी। पेटके लिये भोजन मिलना भी दुर्लभ हो गया।

तीन-चार दिन बाद अद्वैत, प्यादेको साथ लेकर फिर हरिदासके यहाँ आ धमके एवं उसके हाथके दस्तख़त लेकर सम्मन तामील करागये। यह देख हरिदास रो दिया। उसने अद्वैतसे कहा,—"भैया! मैं इन बातोंको एकदम नहीं जानता। मैंने आजतक अदालत नहीं देखी। किसी बड़े आदमीसे मेरा मेल भी नहीं, लिखने-पढ़नेके नाम तो सरासर पशु हूँ। फिर तुमने यह सम्मन मेरे हाथमें क्यों दे दिया? लो, भैया! मैं तुम्हारे पाँव छूता हूँ, तुम अपने इस सम्मनको वापिस लेलो। मैंने लड़कीके लिये वर ढूँढ़ लिया है। विवाह होनेमें अब देर नहीं

है, अधिकसे अधिक एक महीना लगेगा। इसके बाद मैं तुम्हारा सब रुपया चुका दूँगा। लो, तुम इस सम्मनको लेजाओ।"

वास्तवमें हरिदास इस बातको नहीं जानता था, कि सम्मन वापिस लेनेकी चीज़ नहीं है। उसने सोचा, कि इस कागज़के हाथमें लेते ही सत्यानाश हो जायेगा एवं इसे वापिस कर देनेपर आफ़त टल जायेगी।

अद्वैतने कहा,—"भाई! तुम इस कागज़से इतना क्यों डरते हो? मैंने तो तुमसे कही दिया, कि नालिशसे तुम्हारा कोई वैसा नुक़सान न होगा। इस क़र्ज़की आफ़तसे तुम सदाके लिये छूट जाओगे। अगर तुम अदालतमें जानेसे डरते हो, तो अदालत जानेकी तुम्हें कुछ ज़रूरत नहीं। किसी बड़े आदमीसे मेल करनेकी भी ज़रूरत नहीं। तुम मेरे क़र्ज़दार हो या नहीं? तुमने कागज़ लिखकर रुपया उधार लिया है या नहीं? सच कहो।"

सीधा-सादा हरिदास बोला,—"इसमें सच और झूठ बोलनेकी क्या ज़रूरत? मैं इस बातको तो किसी जन्ममें न भूलूँगा, कि तुमसे मैंने रुपया उधार लिया है। और यह भी खुले हृदयसे स्वीकार करता हूँ, कि वह रुपया तुमने मेरे बड़े गाढ़े दिनोंमें दिया है। उससे मेरे बाल-बच्चोंकी रक्षा हुई है। स्टाम्प तो कागज़ही है? श्रीदाऊजी इस बातको देख रहे हैं, कि मेरे हृदयमें तुम्हारे रुपये अदाकर देनेकी बात लिखी हुई है।"

अद्वैत बोले,—"जब यह बात है, तब तुम्हें अदालतमें जानेकी

क्या ज़रूरत है ? यदि झूठी नालिश होती, तो तुम्हें अपने साथ गवाह लेजाकर यह साबित करना पड़ता, कि नालिश झूठी है। जब नालिश झूठी हैही नहीं, तब तुम्हारा अदालतमें जाना और न जाना एकसा है। अगर नालिश ही की गयी है, तो तुम उससे इतना क्यों डरते हो ? रुपया पासमें आजाये, तो उसी समय मेरे पास पहुँचा देना। मैं नालिश उठा लूँगा। बस सारा गोलमाल मिट जायेगा। फिर इतनी चिन्ता क्यों ? मैं तुम्हारे ऊपर किसी तरहका अत्याचार नहीं करूँगा, भैया !"

हरिदासको उपर्युक्त आश्वासन सुनकर भी सन्तोष नहीं हुआ। इधर उसकी भगिनी, घरसे निकलकर अद्वैतके पैर पकड़ बोली,—"हमारी रक्षा करो। तुम्हारी दोहाई है, भैया !" यह कहकर वह कातर स्वरसे रोने लगी। कुछ दूरपर खड़ी हरिदासकी स्त्री भी रो रही थी। दोनों बालक भी, अपनी मा और बुआको रोते देख और यह समझकर, कि अवश्य कोई न कोई आपत्ति आपड़ी है, रोने लगे।

अद्वैतने दो-चार अभय प्रदान करनेवाली बातें सुनाकर हरिदासकी भगिनीको समझा दिया एवं सबको मिष्ट बातोंसे सन्तुष्ट कर वहाँसे प्रस्थान किया। हरिदास, सम्मनको हाथमें ले धीरे-धीरे अपने परम बन्धु, निराश्रयके आश्रय, असहायोंके सहायक, श्रीदाऊजीके पास गया एवं नेत्रोंमें अश्रु लाकर अपनी आपत्तिकी बात उनके चरणोंमें निवेदित की। श्रीहरिने आज कौनसा आश्वासन देकर उसे आश्वस्त किया, मालूम नहीं।

परन्तु वह थोड़ा-बहुत सुस्थ होकर घर लौट आया एवं परिवार-के आदमियोंको आश्वासन देने लगा। अब वह बड़े परिश्रम और यत्नके साथ कन्याका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करने लगा, किन्तु अनवरत यत्न करके भी उसे सन्तोष-प्रद सम्बन्धी न मिल सका। जब आदमीका बुरा समय आता है, तब सब बातें सीधी होकर भी उल्टी हो जाती हैं। हरिदास कन्याके विवाह-की चिन्तामें व्यस्त रहा। अद्वैतने कही दिया है, कि मुक़द्दमेके लिये अदालतमें जानेकी कुछ आवश्यकता नहीं। उसी बातपर विश्वासकर हरिदास मुक़द्दमेकी पैरवीके लिये अदालत नहीं गया। अतएव अद्वैतके मुक़द्दमेमें मय ख़र्चेके एक्यावन रुपये आठ आनेकी एकतरफ़ा डिग्री होगयी।

पांचवां परिच्छेद।

मा-लक्ष्मी।

अद्वैत डिग्री होनेके पाँच-सात दिन बाद, हरिदासके मकानपर आये और डिग्रीकी ख़बर सुनाकर रुपये माँगने लगे। हरिदास डिग्रीकी बात सुनकर एकदम काँप उठा, बोला,—"भैया! तुमने तो कहा था, कि मुक़द्दमा ख़त्म होते न होते एक महीना बीत जायेगा। क्या उस दिनकी बातको एक महीना हो गया?"

अद्वैत बोले,—"हो क्यों नहीं गया? और अगर न भी

हुआ हो, तो मैं इसमें क्या करूँ ? यह तो अदालतकी बात है। वहाँ हमारी और तुम्हारी बातोंको सुनताही कौन है ? खैर, ये सब बातें अब व्यर्थ हो गयीं। कहो, अब रुपया दोगे या नहीं ? अब मैं अधिक दिनतक रुक नहीं सकता। रुकते-रुकते तो इतने दिन होगये !"

हरिदास सजल नेत्रोंसे बोला,—"मैंने तो भैया! तुमसे पहलेही कहदिया है, कि रुपया अगहनके महीनेमें दे सकूँगा, क्योंकि अगहनमेंही मेरी कन्याका विवाह होगा। इससे पहले मुझे रुपया मिलही कहाँसे सकता है, जो मैं तुम्हें देसकूँगा ?"

अद्वैत बोले,—"तुम्हें कहींसे मिल सकता है या नहीं, मैं इन बातोंको क्या जानूँ ? तुम कब अपनी कन्याका विवाह करोगे या न करोगे, इन बातोंकी खोज करनेकी मुझे क्या आवश्यकता है ? तुम अपने बाल-बच्चोंका खुशीसे विवाह करो, आनन्द मनाओ, धूम-धाम करो, मैं क्या मना करताहूँ ? पर अब मेरे रुपये दो-चार दिनके भीतरही चुकाये बिना काम न चलेगा। बोलो, अब कबआऊँ ? दो-एक रुपया तो चाहिये ही नहीं, जो मैं सब्र करके छोड़ बैठूँगा ?"

हरिदासने कहा,—"भैया! सब मिलाकर कितने रुपये हुए ?"

अद्वैत,—"एक्यावन रुपये आठ आने।"

हरिदास चौंक पड़ा; बोला,—"हैं ! यह क्या कह रहेहो ? एक्यानबे रुपये आठ आने !"

अद्वैत बोला,—"अदालतमें हाकिमने न्याय करके डिग्री दी

है। यदि विश्वास न हो, तो डिग्रीकी नक़ल लाकर दिखाऊँ? अब बोलो, रुपया लेने कब आऊँ?"

हरिदास बोला,—"आकर क्या करोगे, भाई! एक रुपया हो या एक्यावन रुपये, बिना लड़कीका विवाह हुए, तो मेरे पास रुपया आनेकी संभावना नहीं। कन्याके विवाहसे पहले मैं एक रुपया भी नहीं देसकता।"

अद्वैतने कहा,—"यह तो मैं पहले ही जानता था, कि तुम मुझे रुपया देनेमें नाकों चने चबवा दोगे। जब और ख़र्चा सिरपर पड़ेगा, तब अच्छा होगा? तुम यह बात अपने दिलमें कभी मत समझो, कि मैं बैठा-बैठा तुम्हारी कन्याके विवाहकी बाट जोहा करूँगा। यदि रुपया चुकता करनेकी मन्शा हो, तो चार-पाँच दिनके भीतरही मकानपर पहुँचा देना। मैं बारम्बार तुम्हारे मकानपर आकर अपनी टाँगें नहीं तोड़ूँगा। कैसा घोर कलियुग आगया! आजकल सीधेका ज़माना नहीं, सब लोग चालाक होगये। मैंने तो यह बात एक दिनके लिये भी नहीं सोची थी, कि हरिदास मुझे इतना कष्ट देगा। हे कृष्ण! ये सब तुम्हारी ही इच्छाके खेल हैं!"

हरिदास अद्वैतके पैर पकड़कर बोला,—"दोहाई है, भैया! मेरे ऊपर क्रोध न करना। तुम्हारे गुस्सा होजानेसे मेरा सत्यानाश होजायेगा। मैं बड़ा ग़रीबआदमी हूँ। मुझे इस आसरेसे दूर न करदेना। तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, भैया!"

अद्वैत बोले,—"दुनियाकी कैसी चाल है? लोगोंका रुपया

लेते वक्त तो और सुर हुआ करता है और देते वक्त और सुर। अरे, तुम्हें आसरेसे बेआसरे करनेवाला मैं कौन हूँ? अब बात क़ानून और अदालतके हाथमें जापड़ी। वहाँ तो घरकी बातें नहीं सुनी जातीं? अब तो अदालत जैसा हुक्म देगी, वैसाही होगा? मुझे बेकार क्यों दोषी ठहराते हो? राधाकृष्ण!" राधाकृष्ण!!

इस बार भी हरिदासकी बहनने आकर आँखोंसे आँसू बहाते हुए अद्वैतसे अपनी बहुतसी हीन-दशा-द्योतक बातें कहीं एवं हरिदासकी स्त्री भी उनके चरणोंपर हाथ रखकर रोया की। दोनों बच्चे अद्वैतको रीछ-भालूकी भाँति भयानक जन्तु समझ, दूरसे ही उनके मुँहकी तरफ़ देख रोने लगे; पर अद्वैत उन लोगोंकी इतनी करुण-प्रार्थनाओंसे भी तनिक विचलित न हुए। एक आश्वास-वाक्य भी नहीं कहा। उलटे कहा, कि चार-पाँच दिनके भीतर रुपया न पानेसे मैं अदालतके हुक्मके मुताबिक कार्रवाई करूँगा। अद्वैतने प्रस्थान किया। हरिदास नितान्त कातर भावसे अपनी अवस्थाका हाल सुनाता हुआ उनके साथ-साथ बहुत दूरतक गया, परन्तु वह पत्थर तनिक भी कोमल नहीं हुआ! अद्वैतका साथ छोड़ हरिदास मकानपर नहीं आया। वह उन्हीं विपद्-भञ्जन श्रीदाऊजीके मन्दिरमें गया एवं कातर-कण्ठसे उनके सामने सारी बातें कहडालीं। श्रीकृष्णने उसे क्या कहकर धैर्य्य दिया, कुछ मालूम नहीं, पर इतना अवश्य देखा गया, कि मकान लौटते वक्त उसकी प्रकृति कुछ शान्त थी। अब वह विहित विधानसे कन्याका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करनेमें प्रवृत्त हुआ।

कुछ दिनों बाद, एकदिन दोपहरके समय, अद्वैत एक सिपाही-को साथमें लेकर हरिदासके मकानमें खड़े आमके पेड़में एक लम्बा काग़ज़ लगा गया। दो-एक दिन पीछे एक ढोलवाला आकर, 'अद्वैत महाजनके पावनेके लिये-हरिदासका मकान अमुक तारीख़को नीलाम होगा' ऐसा ढोल बजाकर कहगया। उसदिन हरिदासकी स्त्री और भगिनीने धूलमें गिर पड़ी-पड़ी रोती रहीं। आज उनकी दुर्दशाकी सीमा नहीं। इतने दिनों बाद उनका सभी कुछ छीन लिया जायेगा। हाय! स्त्री, भगिनी और सन्तानोंको लेकर हरिदास इसके बाद कहाँ जाकर बैठेगा?"

हरिदास उपर्य्युक्त संवादको सुनकर किसीके पास किसी तरहका परामर्श करने भी नहीं गया और न किसीके सामने आधी बात ही कही। जिनके चरण-प्रान्तमें वह सदासे अपने हृदयकी व्यथाको निवेदित करता आया है, आज भी उन्हीं विपद्हारी गोप-विहारीके पास जाकर सारी बातें सुना आया।

मकान नीलाम होगया। अद्वैतने उसे चौबीस रुपयेकी बोली बोलकर अपने आपही ख़रीदलिया। डिग्री-जारी, नीलाम इत्यादि सब मिलाकर अद्वैतका पावना था बासठ रुपया। हरिदासका मकान लेकरभी उनकी रक़मका भुगतान न हुआ। अभी बाईस रुपये और बाक़ी हैं। अद्वैत फिर हरिदासके पास आये। उन्होंने हरिदाससे शीघ्र मकान ख़ाली करदेनेकी बात कही, और बाक़ी रुपया भी निबटा देनेका तक़ाज़ा किया। हरि-दासने पहलेकी भाँति सपरिवार रो-रोकर अपनी हालतका बयान

किया, परन्तु अद्वैत इन बातोंसे विचलित होनेवाले असामी नहीं थे। वे चले गये एवं जाते समय कह गये,—"यह अदालतका काम है। मैं इसमें तनिक भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। हरिदास! यह तुम अच्छी तरह समझ रखना, कि मैं अपने कर्त्तव्यानुसार सारे काम करूँगा।"

और भी एक महीना बीत गया। हरिदासकी कन्याका विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ। बड़ी खोजके बाद उसे एक मन मुआफ़िक़ पात्र मिला। विवाहका दिन भी स्थिर होगया। एक महीने बाद विवाह होगा। हरिदासको अनेक आशाओंने सब्ज़ बाग़ दिखाये। वह सोचने लगा,—'यद्यपि अद्वैतने उसका मकान नीलामपर चढ़ाकर उसे अपने आप ख़रीद लिया है, तथापि नक़द रुपया पानेपर वह निश्चय ही उसे वापिस कर देगा और फिर उससे एक कबाला लिखा लेनेसे काम बन जायेगा। और एकबात है, जब इतना होगा, तब कहने-सुननेसे वह कुछ न कुछ तो छोड़ भी देगा और न भी छोड़े तो क्या? थोड़ासा ही रुपया अधिक जायेगा? फिर तो कुछ झंझट न होगी? अगर ऐसा न करूँ, तो क्या करूँ? कन्याके विवाहमें जो कुछ भेंटमें मिलेगा, उसका अधिकांश अद्वैतके पेटमें ही चला जायेगा। भलेही जाये, मान तो रहेगा? आश्रय-हीन तो न हो सकूँगा?" यही सब मन-मोदक बनाकर हरिदास निश्चिन्त हुआ एवं श्रीदाऊजीको अपने हृदयका भाव जता आया।

इसके बाद और एक आपत्ति आयी। हरिदासका पुत्र स्नान

करके सौदा ख़रीदने गया था। सन्ध्याके बाद एक पड़ोसीके साथ वह काँपता-काँपता मकानको लौटा। उसे बड़ा भयंकर ज्वर होगया था। उस रातको तो किसी प्रकारका इलाज न हो सका। पड़ोसमें एक व्यक्ति नब्ज़ देखना जानते थे। सवेरा होतेही उन्हें बुलवाकर दिखाया गया। वे हाथ देखकर बोले,—"लड़केको बड़ा भयानक ज्वर है। अभी तो कोई डरने-की बात नहीं देखी जाती, पर बादको ऐसा मालूम होता है, कि ज्वर बिगड़ उठेगा। डाक्टरको दिखाना चाहिये।"

वह दिन भी गोलमालमें कट गया। अगले दिन वेही पड़ोसी महाशय हाथ देखकर बोले,—"आज ज्वर और भी ख़राब मालूम होता है।" इसके बाद वेही उद्योग करके एक गरीब डाक्टरको बुलालाये। डाक्टर साहब डाक्टरी पास तो नहीं थे, पर डाक्टरोंके पास बैठ और उनके कम्पाउण्डरोंके मुँहसे दो-चार नाम सुनकर एकदम डाक्टर बन गये थे। पर उनका अनुभव बुरा नहीं कहा जा सकता। डाक्टर दयालु भी थे। उन्होंने हरिदासके पुत्रको देखा। परीक्षा करने बाद बाहर आकर कहने लगे,—"रोग अच्छा नहीं है। वात-श्लैष्मिक ज्वर इसे ही कहते हैं। यदि काफ़ी दौड़-धूप की जाये, तो २१ दिनमें आराम हो सकता है।"

हरिदास नितान्त कातर होकर बोला,—"डाक्टर साहब! मैं तो बेहद ग़रीब हूँ। कैसे क्या करूँगा? हे दाऊजी! अब क्या होगा?"

डाक्टर साहब बोले,—"तुम्हारी ग़रीबीकी बात मुझे मालूम

है। विशेषतः अद्वैत घोषने तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया है, वह मैंने पहलेसे ही सुन रखा है। ख़ैर, मैं मौक़ा देखकर रोज़ रोगीको देख जाया करूँगा, उसके लिये तुम्हें विशेष ख़र्च नहीं करना पड़ेगा। पर औषधिओंकी आवश्यकता ज़रूर पड़ेगी और उनमें ख़र्च भी यथेष्ट होगा। और यह तो तुम जानते ही हो, कि मेरी भी अवस्था अच्छी नहीं है, तथापि मैं जैसे भी होगा, तुमसे औषधिओंके चौथाई दाम लेलिया करूँगा। बाक़ी अपने पाससे ख़र्च कर दिया करूँगा। क्यों, चौथाई दाम भी इकट्ठे कर लिया करोगे या नहीं?"

हरिदासकी अपेक्षा डाकृरकी उम्र बहुत कम थी। हरिदास डाकृरके सिरपर हाथ रखकर परमानन्दके साथ बोला,—"तुम्हारा कल्याण हो, भैया! तुम बाल-बच्चों सहित शतायु होओ। यदि मेरा लड़का बच सकता है, तो तुम्हारी ही दया होनेपर। चौथाई दाम, जैसे भी होगा, इकट्ठा करके देदूँगा।"

हरिदास श्रीदाऊजीके मन्दिरमें जाकर फिर अपना करुण-क्रन्दन सुना आया। पड़ोसी, डाकृरके साथ जाकर औषधि ले आये। रोगीको औषधि दी जाने लगी। दस दिन बीत गये। ग्यारहवें दिन रोग और भी बढ़ गया। डाकृरके यत्नमें त्रुटि नहीं, औषधिको विश्राम नहीं, पर रोगका प्रवाह सीधा न हो सका, एकदम रोग ख़राब हो चला। डाकृरने रोगीकी दशा देख पाँच-पड़ोसियोंको बुलाया और कहा,—"हरिदासदादाके लड़केकी बीमारी बहुत ख़राब हो गयी है। भरोसा छोड़नेकी तो

कोई बात नहीं, पर रोग आगे न बढ़े, तब काम चल सकता है। अधिक बढ़ जानेसे चिकित्सा द्वारा किसी प्रकारका विशेष फल न होगा। ख़ैर, जबतक भरोसा है, तबतक तो चिकित्साका काम जारी रखना ही पड़ेगा, किन्तु अब जो चिकित्सा शुरू होगी, उसका ख़र्च बहुत पड़ेगा और दिन-रात खाना-पीना छोड़, रोगीके पास बैठ कर तदवीर करनेवाले आदमियोंकी भी पड़ेगी। वे आदमी कुछ पढ़े-लिखे और बुद्धिमान् होने चाहियें, यह भी एक शीघ्र और उचित व्यवस्थाकी बात है। अब आपलोग अपनी-अपनी सम्मति दीजिये, कि काम किस तरह चलाया जा सकता है?"

डाकृरके दो प्रस्ताव हैं और दोनों ही असम्भव तथा हरिदासकी शक्तिके बाहर हैं। गाँवमें कोई ऐसा आदमी नहीं, जो दो रुपये देकर अतः उसने सहायता करे, और न कोई ऐसा ही आदमी है, जो ा-लक्ष्मीने कहा,-शय्याके पास बैठा रह सके। सभी-को हि र्तनोंको बेंचने जा रहे थे? पानी पीना पड़ता है। बैठे-बैठे कि आजकल मुझे इनकी बड़ी फिर स्वयं हरिदास तो इतना चतुर नहीं है, कि इन वर्त्तनोंका अधि इसलिये रोगीकी देख-भाल कौन करे ी लड़की हूँ—य औ रुपयेसे न कई दिनोंमें परिश्रम करने दस रुपयेमें तु अवसन्न ह खरीदे हैं। हरिदासने दो-तीन दिनसे कतना कहकर बुना। बच्चोंको भर-पेट भोजन भी नहीं मिलसका का एक मुट्ठी चावल पका दिये थे, उन्हींसे सारे बिना कुछ कहे किस तरह, खाना-पीना चल गया!

आज एक पड़ोसी कृपा करके दोनों बच्चोंको अपने घर खाना खिलाने लेगया है !

हरिदास रोतारोता बोला,—"मेरे पास एक कलसा, दो थालियाँ और दो पीतलके लोटे हैं। इन्हें वेंचकर पाँच-छः रुपये ला सकता हूँ। यदि श्रीदाऊजीकी कृपासे मेरा बच्चा अच्छा हो-जाये, तो मैं उसमें भी कुण्ठित नहीं हूँ। तुम लड़केकी देखभाल करो, मैं इन बर्त्तनोंको बाज़ारमें वेंचकर अभी रुपया लाता हूँ।"

फ़िलहाल इस सलाहको किसीने बुरा नहीं समझा। हरिदास उसी समय सब बर्त्तनोंको इकट्ठा कर लाया और उन्हें कपड़ेमें बाँधकर सिरपर उठा लिया! ठीक उसी समय एक अलौकिक शोभामयी सुन्दरी उस कुटीके आँगनमें आयी। सुन्दरी युवती थी, उसके हाथमें हरी चूड़ियाँ और माँगमें सिन्दूर भरा हुआ था। शरीरमें एक बहुत सुन्दर चौड़े किनारेकी ... होनेप। साड़ी-से उसकी देह अच्छी तरह ढकी हुई ... ा।" हास्यमयी, पर नीचा मुँह किये हुई थी। ... ाकर फिर अपना ... थी, मुख :प्रदीप्त, पर धीर-गम्भीर थ... ्के साथ जाकर औषधि साहब बोल उठे,—"यह लो, मा-लक्ष्... ्मी। दस दिन बीत गये ... या। डाक्टरके यत्नमें ... कर चिल्ला

बालक, वृद्ध, नर और ... रोगक ... उठे। वह स्थान—वह ... ण विपा... ह सीधा न ... त्र, उस समय मानो आनन्दकी ... बनगया! ... गीकी दशा देखोंको यह विश्वास होगया, कि ... यं मा-लक्ष्म... दाके लड़के तब और किसी सोच-विचारकी ... नहीं।" छोड़नेकी तो ...

डाकूरने पूछा,—"बहुत दिनोंसे हम अभागोंको मा-लक्ष्मीके दर्शन क्यों न हो सके ?"

सुन्दरीने कहा,—"भैया! मैं यहाँ थी नहीं। भाग्य वश आज श्रीदाऊजीके दर्शनोंको आयी थी, सो सुना, कि गोपालको कई दिनसे कठिन पीड़ा हो रही है।"

कैसा मधुर स्वर है! कैसी कोमलता है! अनन्तर मा-लक्ष्मीने हरिदासकी तरफ़ देखकर कहा,—"यह क्या भैया? तुम्हारे सिरपर यह क्या रखा हुआ है?"

युवतीके आगमन मात्रसे हरिदास समझ गया, कि श्रीदाऊजीने कृपाकर मेरे इस विपत्ति-कालमें सहायता करनेके लियेही मा-लक्ष्मीको भेज दिया है। जब मा आगयीं, तब साथमें समस्त आशाएँ भी मूर्त्ति-धारण कर आ गयीं। अब कुछ डर नहीं। अतः उसने वर्त्तनोंकी पोटली सिरसे उतार दी।

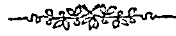
मा-लक्ष्मीने कहा,—"हरिदास! मालूम होता है, तुम इन वर्त्तनोंको बेंचने जा रहे थे? यदि बेंचना ही चाहते हो, तो भाई! आजकल मुझे इनकी बड़ी आवश्यकता है। अन्दाजसे मालूम होता है, कि इन वर्त्तनोंका अधिक दाम न होगा। हो भी तो मैं तुम्हारी लड़की हूँ—दस रुपयेसे अधिक न दूँगी। यह लो, मैंने दस रुपयेमें तुम्हारे वर्त्तन खरीद लिये।"

इतना कहकर युवतीने अपनी साड़ीके आँचलसे दस रुपयेका एक नोट निकाल, हरिदासके हाथमें रख दिया और बिना कुछ कहे-सुने, बासनोंकी पोटली काँखमें दबाकर घरके

भीतर चली गयी! आनन्द और उत्साह, आशा और भरोसा साथमें लेकर सुन्दरी रोगीकी शय्याके पास जाकर बैठ गयी एवं बिना किसी नितान्त आवश्यकताके वह एकबारके लिये भी वहाँसे न उठी! सुन्दरीने अब पूरी मुस्तैदीके साथ रोगीकी सेवा करना आरम्भ करदिया और घरके सब आदमी जिस तरह हो, वक्तपर भोजन करलें, उनका सब उद्योग कम होजाय— इत्यादि बातोंके भी सब उपाय वह वहीं बैठी बैठी करने लगी।



चतुर्थ खण्ड ।



"न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृता ज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।"

अर्थ—निरन्तर दुष्कर्म्म करनेवाले मूढ़, नराधम और मायाके मद्से उन्मत्त व्यक्ति, आसुरिक स्वभावको ग्राहण कर मेरी आराधना नहीं करते ।

तात्पर्य्य ।—जो लोग मायाके प्रभावसे हतज्ञान हो गये हैं; विवेक-अविवेककी द्रष्टिमें शून्य होगये हैं, वे कुकर्मासक्त और नीच, नराधम, इन्द्रियोंके वश होकर असुरोंकी भाँति भगवान्के विरुद्ध आचरण करते हैं। इसलिये उनकी गति, भगवान्का स्वरूप पहचाननेमें कभी नहीं हो सकती ।

(श्रीमद्भगवद्गीता । ७ अध्याय, १५ श्लोक । श्रीकृष्ण-वाक्य)



कर्म फल

पहला परिच्छेद।

प्रायश्चित।

तरंगिणीने कालिदासके मकानको दखल कर लिया है। उसके दरवाज़ेपर दरवान पहरा देता है। नयी रसोईदारिन और टहलिनीकी व्यवस्था की गयी है। पुराने नौकरोंको जवाव मिल गया है। मानो नये सिरेसे घर वसा है। कालिदास चक्रवर्त्ती कहाँ है? कुछ पता नहीं। वह कहाँ गया? कैसा है? यह कोई भी नहीं कह सकता। किन्तु तरंगिणीको उसका वहुत सोच है। राजा और उनके कर्मचारी नीलरतनके, इस विषयमें उसे निश्चिन्त होनेके लिये वारम्वार उपदेश देनेपर भी, तरंगिणी पूर्ण रूपसे निश्चिन्त नहीं होसकी है। इतना सोच क्यों? क्या इसलिये, कि कालिदास आजकल नमालूम कैसे दुःख उठा रहा होगा? किस विपत्तिमें फँस रहा होगा? उसे ठीक वक्तपर खाना-पीना भी मिलताहोगा या नहीं, इसलिये?

राधाकृष्ण ! राधाकृष्ण !! इन सब बातोंसे उसे क्या मतलब ? उसे तो इस बातका सोच है, कि वह कालिदासके मकानपर दख़ल जमाये तो बैठी है, पर कहीं ऐसा नहो, कि वह किसी तरह यहाँ आ धमके और एकही लाठीमें धन्नूकी भाँति उसका भी भेजा निकालकर रखदे। अथवा किसी दिन पुलिसको लाकर उसे बाहर निकाल सब चीज़ोंपर अपना अधिकार न कर ले। यदि उसे कालिदासके मरजानेकी ख़बर मिल जाय, तो वह निश्चिन्त होना तो बातही क्या है, मा-कालीको पाँच बकरे भेंट चढ़ावे।

कालिदास मरगया या ज़िन्दा है ?—"इसकी अबतक कोई ख़बर नहीं मिली। क्योंकि धन्नूकी खोपड़ीपर लाठी जमा, जबसे वह ब्राह्मणको देखकर भागा है,तबसे दो तीन महीने बीत जानेपर भी आजतक उसकी कोई ख़बर नहीं मिली। उसकी बहुत कुछ खोज करनेके बाद, राजा और नीलरतन द्वारा यथेष्ठ अभय पानेपर भी तरंगिणी अच्छी तरह निश्चित नहीं हुई। यहांपर हमें यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत है, कि कालिदासकी आढ़त अब उठ गयी है। दो-चार पावनादारोंने तरंगिणीके मकानपर आकर कुछ गोलमाल किया था, किन्तु घरके दरवाजेपर पहरा देनेवाले पाँड़ेजी महाराजने, मकान मलिकिनके हुक्मसे उन्हें डरा धमकाकर भगा दिया। तबसे आज तक कोई तगादगीर नहीं आया।

तरङ्गिणी खब अच्छी तरह रहती है। उसका घर-द्वार

सब अच्छा है। चीज़-वस्तु सब ज्योंकीत्यों है। है क्या नहीं? कुत्सित काला दूकानदार, अरसिक कालिदास। चलो पाप कटा, बहुत अच्छा हुआ। तरङ्गिणी उसे चाहती भी नहीं थी। वह ऊँचे दरकी सुन्दरी है, अतएव उसे ऊँचे दरकाही प्रेमिक चाहिये। कालिदासके स्थानपर तरङ्गिणीका प्रणय-प्रार्थी आज-कल कौन है, जानते हो? अरविन्द राय,—सुन्दर, सुपुरुष युवा, अतुलऐश्वर्य्य शाली राजा अरविन्द राय, इस समय उसके प्रेमके उम्मीद्वार हैं। वे उम्मीद्वार हैं या तरङ्गिणी? क्योंकि हम राजासाहबके लिये उसको ही अधिक व्याकुल देखते हैं। उन्हें फन्देमें फँसानेके लिये वही तो अधिक उत्सुक है? फिर राजा साहबकी उम्मीद्वारी क्यों चल रही है? बात ठीक तौरसे समझमें नहीं आती, इसलिये ठीक उत्तर भी नहीं दिया जा सकता, कि तरङ्गिणी और राजा अरविन्द रायमें कौन एक दूसरेका उम्मीद्वार है?

राजा अरविन्दराय अभीतक एक दिनके लिये भी सशरीर तरङ्गिणीके यहाँ नहीं आसके हैं। राज-गृहमें उन्हें अनेक काम करने पड़ते हैं, बहुतसे मामले और मुक़द्दमोंमें उन्हें सुबहसे लेकर शाम हो जाती है, पर अवकाश क्षणभरके लिये भी नहीं मिलता। इसीसे वे तरङ्गिणीके श्री-मन्दिरमें अबतक पदार्पण नहीं कर सके।

क्या कहा? दिन-रात कामोंकी झन्झटोंमें फँसे रहनेके कारण उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती, इसीसे वे तरङ्गिणीसे मिलने नहीं आय और अतुल आनन्दसे रहती है है। जिसे वे प्राणोंसे

भी अधिक चाहते हैं, उसे देखने आनेके लिये राजा साहबको चौबीस घण्टोंमें आधे घण्टेकी भी फुरसत नहीं मिलती? हाँ, नहीं मिलती। नहीं तो क्या हम झूठ बोलते हैं? एक बात और भी तो है,—राजाका जैसा मान-सम्भ्रम है, विशेषकर शान्तिपुरमें उनकी स्वधर्म्म-परायणता और निष्ठाकी जितनी सुख्याति फैल रही है, उसे देखते इस स्थानपर, पर-नारीके साथ आमोद-प्रमोद करनेसे उनके अयशकी सीमा न रहेगी। अतएव नितान्त अनिच्छासे उन्हें तरङ्गिणीके साथ साक्षात् करनेसे वञ्चित रहकर, बड़े कष्टसे दिन व्यतीत करने पड़ते हैं।

ऊपर जो युक्तियां दी गयीं हैं, वे सहसाही सुसङ्गत नहीं होसकतीं। कारण? कब और कौनसा ज्ञानवान व्यक्ति समाजके भयसे या लोक-निन्दाके प्रति लक्ष्यकर वाञ्छनीय सुख-भोगसे शान्त रहा है? कौनसे विलासी पुरुषने ज़रासी बदनामीके भयसे प्रेमिका सुन्दरीके साथ सुख-भोग-लिप्साका त्याग किया है? अतएव राजाके लिये दी हुई उपरोक्त युक्तियां सुसङ्गत नहीं मालूम होतीं। किन्तु पाठको! ग्रन्थकारको कारण उपयुक्त और यथेष्ट प्रतीत न होनेपर भी कुछ नुक़सान नहीं है, क्योंकि स्वयं तरङ्गिणीने ही उपरोक्त दलीलोंको बिना किसी प्रकारकी ना-नुकर किये मान लिया है। वह अपनी इसी अवस्थामें परितृप्त और सुखी है। फिर हमें अधिक कहने-सुननेकी क्या आवश्यकता? राजाके दीवान नीलरतन चौधरी सदा तरङ्गिणीके पास आते-जाते हैं। उनके मुखसे [illegible] रहती है। उसका घर भी अच्छी

तरह समझ गयी, कि राजा उसके प्रेममें बेतरह मतवाले होगये हैं। वे बहुत शीघ्र यहाँके काम-काजोंको समाप्तकर और कृष्णनगरके मुक़द्दमोंको योंही छोड़, देश चले जायेंगे। उनकी इच्छा तरङ्गिणी-को भी अपने साथ लेजानेकी है। वहाँपर वे स्वाधीन और प्रकाश्य-भावसे उसके साथ आमोद-प्रमोदकर समय व्यतीत करेंगे। ये बातें तरङ्गिणीके मनमें जगह कर गयीं। वक्ताके कौशलसे इस बारेमें तरङ्गिणीको किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहा।

बातोंको छोड़, कामोंसे भी तरङ्गिणीको काफ़ी सुबूत मिल गया है, कि राजा उसके रूप-गुणपर बेतरह मोहित हैं। वे प्रायः नित्य-प्रति उसके पास नाना प्रकारके मूल्यवान् उपहार भेजा करते हैं। जड़ाऊ कड़े, अँगूठियाँ, बनारसी रूमाल, ढाकेकी मलमल, पारसी साड़ियां इत्यादि बहुतसी चीज़ें तरङ्गिणीके चरण-कमलोंमें आकर उपस्थित होती हैं। विविध और अति उपादेय खाद्य-पदार्थ प्रायः प्रतिदिन राज-भवनसे तरङ्गिणीके पास आते हैं। इसके अलावा इन कई-एक दिनोंके भीतर राजाने उसके पास दो सौ रुपये भी भेजे हैं। अब हम अपने पाठकोंसेही पूछते हैं, कि बिना अपरिमित प्रेम-बन्धनके, इतने बढ़िया-बढ़िया उपहार कौन किसके पास भेजता है? तरङ्गिणी यह बात अच्छी तरह जानती है, कि राजा अरविन्द-रूपी भारी मछली उसके रूप-गुणके जालमें ऐसी फँस गई है, कि अब उसके निकलकर भाग जानेकी तनिक भी सम्भावना नहीं है। अतएव तरङ्गिणी परम सुख और अतुल आनन्दसे रहती है।

आज तीन दिन हुए, धनुआँ, उर्फ़ धन्नूबाबू, उसके मकानपर आया था। धनुआँ मरा नहीं, वह मरता-मरता बच गया है। तरङ्गिणीके दरवानने उसे मकानके भीतर नहीं घुसने दिया! इससे धन्नूको बड़ा विस्मय हुआ। गृह-स्वामिनी इस व्यवहारका पता पाजानेपर निश्चयही दरवानको नौकरीसे बर्ख़ास्त कर देंगी, इत्यादि तरह-तरहके भय भी दिखाये। पर पाँड़ेजी महाराज किसी तरह भी नहीं डरे; आख़िर धन्नूने कहा, कि उसके आनेका संवाद गृह-स्वामिनीको दिया जाये। पाँड़ेजी भीतर गये और सारीबातें तरङ्गिणीके सामने कह सुनायीं। तरङ्गिणीने स्पष्ट शब्दोंमें हुक्म देदिया, कि उसे मारकर निकाल दो!

दरवान द्वारा अर्द्धचन्द्र-लाभकी सम्भावना देख, धन्नू अपने चित्तमें महा दुःखित हुआ एवं इस प्रकारका अभावनीय परिवर्त्तन किस लिये हो गया? यह कुछ भी स्थिर न कर सका। वह थोड़ी देर वहीं खड़ा खड़ा सोचता रहा। इसके बाद एकबार ऊपर छतपर ही खड़े होकर उसकी विनय-प्रार्थना सुननेके लिये, बहुत कह-सुनकर दरवानको तरङ्गिणीके पास भेजा। प्रार्थनाको सुन और यह सोचकर, कि कहीं राजा साहब धन्नूके साथ बातें करनेका हाल सुन नाराज़ न हो जायें, तरङ्गिणी ऊपर छतपर खड़ी होकर बातें करनेके लिये भी राज़ी न हुई। हार मानकर दरवान लौट आया। धनुआँ निराश हो गया। उस समय धन्नूमें ज़रा भी शक्ति नहीं थी। वह महा दुर्बल, बड़ा कातर और अत्यन्त खिन्न होगया था। विशेष कर भूखों रहनेके कारण उसके

समस्त अङ्गोंमें शिथिलता आगयी थी। उसे इस बातका स्वप्नमें भी गुमान नहीं था, कि तरङ्गिणी उसकी सूरततक न देखना चाहेगी! उसने कातर भावसे, दूर खड़े हो, ऊँचे स्वरसे अनेक अनुनय-विनय की, अपनी दुरावस्थाकी बात विशेष करके जतायी और अन्तमें यहाँतक कह दिया, कि तरङ्गिणी उससे भलेही बातें न करे, पर उसे दो रुपये तो दिलवा दे। पर तरङ्गिणीने इन बातोंको सुनकर भी नहीं सुना! धन्नूको दूर खड़े हो चिल्लाते देख, दरवानने उसे वहाँसे भी धक्का देकर भगा दिया! सारांश यह, कि धनुआँ तेली नितान्त कातर और यत्परोनास्ति मर्म्मपीड़ित होकर चलागया।

अगले दिन वेहया धनुआँ फिर आया! दरवानने उसे भगा देनेकी अनेक चेष्टा की, पर वह न भागा; केवल निरन्तर विनय-प्रार्थनाओं द्वारा मालकिनीके पास अपने आनेकी सूचना देनेका अनुरोध करता रहा। दरवानने जब देखा, कि धन्नू किसी तरह नहीं टलता, तब लाचार होकर तरङ्गिणीके पास आया। तरङ्गिणीने अत्यन्त क्रोधके साथ कहा,—"कौन है धनुआँ? मैं तो उसे जानती भी नहीं। क्या तुमने मुझे ऐसे छोटे आदमियोंके साथ बातें करते कभी देखा है? वह तेली है, छोटी जातिका है। फिर वह मेरे साथ बातचीत क्यों करना चाहता है? तुम उसे यहाँसे अभी भगा दो।"

दरवानने वापिस आकर सब बातें धन्नूसे कह सुनाईं और उससे सीधी तरह चुप-चाप चले जानेका अनुरोध किया।

धनुआँ, सारी बातें सुन, मन-ही-मन बड़ा क्रुद्ध हुआ। बोला,—"अच्छा, देखा जायेगा।" यह कह धनुआँ चला गया। तरङ्गिणीने राजा साहबके पास यह संवाद भेज दिया। राजाने कहला भेजा,—"आज शामके बाद दीवानजी वहाँ जाकर इसकी भी उचित व्यवस्था करदेंगे।" तरङ्गिणी दोपहरके भोजनके बाद अपना शृङ्गार करने लगी। बड़े यत्नसे उसने अपने बालोंकी वेणी बाँधी, गालोंपर पाऊडर लगाया और पानसे ओठ लाल किये। इसके बाद कोठरीके भीतर रखे हुए लोहेके सन्दूकके भीतरसे एक बढ़िया बनारसी साड़ी निकाली। कुछ दिन हुए, राजा साहबने उसे जो एक कामदानीकी कुर्त्ती भेजी थी, उसे पहन लिया। इसके सिवा तरह-तरहके गहनोंसे शरीरको खूब सजा, कपड़ोंमें एसेन्स लगा, सोलहो शृङ्गार कर, दर्पणमें मुख देखा, उसने देखा, कि रूप ख़ासा बना है।

इस प्रकार खूब सज-सजाकर तरङ्गिणी दीवानजीकी बाट जोहने लगी। इसी समय नीलरतन चौधरीने उसके भवनमें प्रवेश किया। चौधरी महाशयके आतेही, तरङ्गिणी उत्कण्ठाके साथ उठकर उनके पास आयी और बड़े आग्रहके साथ बोली,—"आओ, दीवानजी! अच्छे तो हो? कहो, क्या ख़बर है? कई दिनोंसे दिखाई नहीं पड़े?"

नीलरतनने कहा,—"अच्छी ख़बर है, बहुतही अच्छी। अब फिर तुम्हारे लिये बीस हज़ारके हारकी फ़र्मायश हुई है। तुमपर लक्ष्मीकी बड़ी कृपा है। क्यों, मैं जो कहता था, वही हुआ न?"

तरङ्गिणी कुछ अभिमानके साथ हँसी। जिन बातोंका वह कई दिनोंसे अनुमान कर रही थी, वही सत्य हुईं। अरे, दुनियामें ऐसा कौन आदमी है, जो उसके रूपको देखकर अपने घरका रास्ता न भूल जाये? मन-ही-मन इसी तरहके मन-मोदक बनाती हुई तरङ्गिणी बोली,—"क्यों नहीं, जब तुम मेरी तरफ़ हो तब जो कुछ हो जाय, सो थोड़ा है। पर भाई! सच बात तो यह है, कि अगर राजा साहब मुझसे जल्द न मिल सके, तो मैं यहाँ एक क्षण भी न रहूँगी। जब वे मुझसे मिलने आवेंगे, तब मैं इस बातके लिये उनसे ख़ूब लड़ूँगी।"

नीलरतनने कहा,—"तुम मालिकिन हो। राजा तुम्हारे बिना दामके गुलाम हैं। मैं जहाँ तक समझता हूँ, राजा तुम्हें देखनेके लिये पागल हो रहे हैं। वे सदा तुम्हारे ही बारेमें बात-चीत करते रहते हैं और उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं, कि हाथका कामतक भूल जाते हैं। और एक शुभ-समाचार सुनो। राजाने अब रानी साहेबासे बातचीत करना भी बन्द कर दिया है। अगर रानी साहेबा किसी समय उनके सामने आजाती हैं, तो वे उनपर बेहद नाराज़ होते हैं। आजकल रानी साहेबाके दिन रोतेही बीतते हैं। मैंने राजासे ऐसा करनेका कारण पूछा, तो वे बोले,—'मैं क्या करूँ? मुझे तो अब सिवा तरङ्गिणीके साथ बात-चीत करनेके, दूसरेसे बोलनेमें भी कष्ट होता है। बातें करनेका जी ही नहीं चाहता।' इसीसे तो कहता हूँ, कि रानी तरङ्गिणी! राजा तुम्हारे पूरे गुलाम हो गये हैं।"

तरङ्गिणी फिर हँसी। जिस बातकी चिन्ता उसे हर घड़ी, हर पल बनी रहती है, उसके सफल होनेके स्पष्ट लक्षण उसे देख पड़ने लगे। उसके रूपका क्या कहना है? उसका वर्णन इस दुनियाँमें कौन कर सकता है? अब उसने इस प्रसङ्गको छोड़कर धनुआँके सम्बन्धकी बात उठायी। उस समय उसकी सूरत देखनेमें नितान्त दुःखित और उत्कण्ठित मालूम होती थी। मानो इस घटनासे वह बेहद डर गयी हो। वह भौंहें सिकोड़, मुँह भारी कर, इस व्यापारका भलीभाँति वर्णन करती हुई बोली,—"देखो भाई! राजाके सामने मन-वचन और कर्म्मसे अधीनेश्वरी बननेकी शक्ति मुझमें नहीं है। न मालूम, राजा साहब कब मिलने आजायें, इसीसे उसके लाख बकने-झकनेपर भी मैं न तो उससे मिली और न किसी तरहकी बात ही की। न जाने, कब क्या हो जाये?"

नीलरतनने कहा,—"होगा क्या? ज़रा सी बातके लिये तुम इतना सोच-विचार क्यों करती हो? जिसकी मुट्ठीमें एक राजा है, उसे एक तेलीके बेटेसे डरनेकी ज़रूरत ही क्या? तुम किसी तरह मत डरो। मैं अब ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा, कि वह तुम्हारी गलीमें भी न आने पायेगा। इन बातोंसे तुम एकदम निश्चिन्त रहो। अब यह बतलाओ, कि मेरे बारेमें तुमने क्या सोचा है? मैं तो तुम्हारे लिये दिन-रात सोच-विचार किया करता हूँ और जिस तरह तुम्हारा काम बने, उसके लिये जीतोड़ परिश्रम करता हूँ, मगर अब तुम बतलाओ,

कि इन सब बातोंके बदलेमें तुमने मेरा कौनसा उपकार करना विचारा है ?"

तरङ्गिणी समझती है, कि नीलरतन वास्तवमें उसका शुभाकांक्षी है। उसमें रूपकी कमी न होनेपरभी, वह इस बातको अच्छी तरह समझती है, कि एक धनवान् राजासे अपनी प्रीति बनाये रखनेके लिये, नीलरतन-जैसे एक चुस्त, चालाक आदमीकी बड़ी ही ज़रूरत है। नहीं तो फिर लाभालाभकी सुविधा न रहेगी। तरङ्गिणी यह भी अच्छी तरह समझती है, कि नीलरतन राजाका एक प्रधान कर्म्मचारी है। अतएव उसे हाथमें रखना नितान्त आवश्यक है। उसने कुछ देर सोच-विचार कर, नीलरतनको अपना चेला बनानेके लिये, एक सर्व-श्रेष्ठ उपाय शीघ्रही स्थिर करलिया। नीलरतनके पास कुछ और खसककर एक कटाक्ष-मिश्रित हँसी हँसते हुए उसने कहा,—"तुम्हें क्या दूँ, भाई ? मेरे पास ऐसी कौनसी वस्तु है, जो मैं तुम्हें नहीं देसकती ? सच तो यह है, कि मैं तुमपर मर रही हूँ। राजाके डरके मारे तुमसे खुलकर आमोद-प्रमोद न कर सकनेमें मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। लाचार हूँ करूँ क्या ?"

नीलरतन मन-ही-मन खूब हँसे। कुछ देर पहले तरङ्गिणीकी बेमुरव्वती देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ था ! उसने धनुआँको अपने पास फटकने नहीं दिया, उसके साथ एक बात तक नहीं की ! यहाँतक, कि न तो उसे अपनी ही सूरत दिखायी और न उसीकी देखी ! क्यों ? इसलिये न, कि पीछे राजाको ख़बर हो

जानेपर राजा साहव उसे अविश्वासिनी समझेंगे ? और अव वह स्वयं इच्छा-पूर्वक नीलरतनके चरणोंमें अपनी देह उत्सर्ग करना चाहती है ! एकान्तमें आमोद-प्रमोद न कर सकनेके कारण मनमें दुःखित होती है ! यह क्यों ? इसीलिये, न कि कहीं ऐसा न हो, कि राजा अपनी मुट्ठीसे निकल जायें। इसीसे तो हमें कहना पड़ता है, कि तरङ्गिणी वड़ी ही सरल-हृदया है।

नीलरतन मन-ही-मन ख़ूब हँसनेके वाद वोले,—"ख़ैर, इन वातोंके लिये फिर कभी देखा जायेगा,मैं तो तुम्हारा दास ही हूँ। तुम क्या इस वातको नहीं जानतीं ? हाँ, तो मैं इस वक़् क्यों आया हूँ, जानती हो ? वड़ी भयानक वात है। उसीके लिये इस समय, इतनी दूरसे दौड़ा आ रहा हूँ। राजा साहवको इस वक़् मेरे आनेका कुछ भी पता नहीं है। आज मैंने कालिदासको देखा था, वह—"

वातको वीचमें ही काटकर तरङ्गिणी एकदम वोल उठी,—"ऐं ! क्या कहा ! कालिदास ! तव क्या वह अभी तक ज़िन्दा ही है ? अव क्या होगा ?"

नीलरतन वोले,—"पहले सुन तो लो, इसके वाद क्या होगा और क्या होना चाहिये ? यह सव परामर्शद्वारा ठीक कर लिया जायेगा। हाँ तो, जव वह मुझे मिला, तव मैं उसकी वातें सुन, समझ गया, कि वह कभी-न-कभी दल-बल सहित, यहाँ आयेगा और तुम्हें कुत्तोंकी तरह दुत्कार कर मकान और कुल माल-असवाव पर क़ब्ज़ा कर लेगा।"

तरङ्गिणी घवराकर वोली,—"हाय ! हाय ! तव तो वड़ा

ग़ज़ब हुआ! तुम्हारी और उसकी कहाँ भेंट हुई थी? उसने तुमसे क्या क्या कहा था? हाय! मैं अब क्या करूँ!"

नीलरतन बोले,—"बड़ी ही ख़राब जगह मिला था। वह गाँजेकी दूकानपर बैठा हुआ चिलम पी रहा था, कि सहसा मैं उधरसे आ निकला। मुझे देखतेही वह मेरे पास आकर बोला,—'आपही न राजा साहबके दीवान हैं? आप लोगोंने तरङ्गिणीको जो मकान दिलवा दिया है, वह मेरा है। मेराही नाम कालिदास चक्रवर्त्ती है। मैं उस मकानको योंही न छोड़ दूँगा। मैंने एकका तो सिर फोड़ही दिया है, अगर चार-पाँचके और फोड़ने पड़ें, तो भी मैं नहीं डरता। आप ही सोचिये, मैं अपनी चीज़ें सहजही दूसरेको कैसे दे डालूँ? आप इस बातको अच्छी तरह समझ रखिये, कि मेरे पास भी आदमियोंकी कमी नहीं है। इस अड्डेपर जितने आदमी आया-जाया करते हैं, वे सब मेरे पक्षपाती हैं। हरवक़ मेरे लिये जान देनेको तैयार रहते हैं। मैं उस चाण्डालिनीको घरसे निकालकर ही दम लूँगा।' उसकी बातें सुन मैं भी इस बातको खूब समझ गया, कि आजकल उसकी जैसी संगति है,—उसके साथ जिस तरहके आदमी रहते हैं, उन्हें देखते, उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।"

तरङ्गिणी बोली,—"तो अब क्या करना चाहिये?"

नीलरतन बोले,—"मैं तो, भाई जल्दी जल्दी यह कहकर इस पास ख़बर देने आया हूँ—" इसी समय दरवाज़ेकी दूसरी ओर

उपाय न सोचा हो! मेरी समझमें तो यही आता है, कि तुम्हारे घरमें जो-जो क़ीमती और अच्छी चीज़ें हैं, उन्हें किसी विश्वासी आदमीके पास रख दो और इस मकानको अपने किसी हितूके नाम करदो। इसके बाद यदि कालिदास आयेगा, तो हमारे आदमी उसे यहाँसे मारकर निकाल देंगे। और यदि वह मुक़द्दमा करेगा, तो उस समय उसके सभी रास्ते बन्द हो जायंगे क्योंकि मकान तुम दूसरेके नामपर बैहो कर दोगी, माल-असबाब कुछ होगा ही नहीं। फिर वह लेगा किस चीज़को? मैंने तो भाई बहुत सोच-विचारके बाद यही ठीक समझा है। आगे जो तुम्हारी समझमें आये, सो करो।"

तरङ्गिणी कुछ देर नीचा मुँह किये सोचती रही। इसके बाद बोली,—"तुमने बहुत अच्छी बात सोची है। पर यह तो बताओ, कि सिवा तुम्हारे मेरा ऐसा आदमी ही कौन है, जिसके नामपर मैं मकानका बैनामा लिखूँ और चीज़-वस्तु छोड़ दूँ? राजा साहब तो अपने सिरपर इस झंझटको लेंगे ही नहीं! अगर वे ही इस बातके लिये राज़ी हो जायें, तो फिर रोनाही क्या है? और मेरा अपना आदमी यहाँ कौन है? दीवानजी! तुम किसी तरह उन्हें राज़ी करदो न।"

नीलरतनने कहा,—"तुम्हारे बारेमें उन्हें राज़ी करनेके लिये मुझे ज़ियादा सिरपच्ची नहीं करनी पड़ेगी। इस प्रस्तावको असबाब पर क़ब्ज़ा शायद राज़ी न होंगे, क्योंकि यह एक ऐसी

तरङ्गिणी घबराकर बोली,—"हाय! है। सम्भव है, कि

उन्हें अदालत जाना पड़े और उससे तुम्हारे और उनके प्रेमकी बात भी लोगोंको मालूम होजाये। पर आशाकी बात इतनी ही है, कि वे तुम्हें बहुत चाहते हैं, इससे उनका राज़ी हो जाना भी कोई कठिन बात नहीं है। ऐसी कौनसी बात है, जिसके लिये तुम हुक्म दो और वे अथवा उनका कोई आदमी न करे?"

तरङ्गिणी अबकी बार फिर हँसी। नीलरतनने कहा,—"मैंने तुम्हें समय रहते सावधान कर दिया है। अब मैं विदा होता हूँ। ऐसा काम करना, जिसमें चारों ओरसे तुम बेखटके हो जाओ।"

थोड़ी देरके बादही विहित विधानसे विदा होकर नीलरतन मकानसे बाहर निकले।

नीलरतन चौधरीके, सदर दरवाज़ेपर आतेही, बाहर खड़े एक नितान्त दरिद्र-वेशधारी क्षीण-कलेवर मनुष्यने उन्हें प्रणाम किया। आगन्तुकको न पहचान सकनेके कारण, दीवानजीने पूछा,—"तुम कौन हो?"

आगन्तुकने नितान्त कातर स्वरसे उत्तर दिया,—"आप क्या मुझे नहीं पहचानते, दीवानजी? क्या करूं मेरी क़िस्मतही फूटी है। मेरा नाम धन्नू है।"

चौधरीने चकित भावसे कहा,—"क्या कहा? धन्नूबाबू! तुम्हारी ऐसी हालत किस तरह होगयी?"

धनुआँने कहा,—"सरकार! अब धन्नूबाबू? कहकर इस अभागेको मत लजवाइये—" इसी समय दरवाज़ेकी दूसरी ओर

खड़ी तरङ्गिणी भय-सहित बोल उठी,—"अरे ! यह मुआ फिर आगया !"

धनुआँ बोला,—"चौधरी साहब! जो इस समय मेरी आवाज़ सुनकर डरसे काँप उठी है, किसी समय मैं उसका प्राण-पति था। वह मुझे एक दिन भी बिना देखे नहीं रह सकती थी और मेरे न रहनेपर उसे चौदहों भुवनमें अन्धकार ही अन्धकार दिखलायी देता था। उस समय वह जिसके आश्रयमें रहती थी, वह ब्राह्मणका बेटा, बड़ा बेवक़ूफ़, सीधा और लम्पट था, इसलिये उसकी आँखोंमें धूल झोंक देना, इसके बाँये हाथका खेल था। पर इसकी क़िस्मत अच्छी है। अब इसे आपका सहारा मिल गया है। सिर्फ़ सहारा ही नहीं, इसने अनायास ही मेरी बहनके हाथसे राजाको भी छीन लिया है। ख़ैर, कुछ डरकी बात नहीं है। इसका भला देखकर मैं अपने मनमें कुढ़ता नहीं। पर ऐसा आजतक कहीं नहीं देखा गया, कि कोई आदमी धनवान होकर अपने प्यारेको भूल जाय। यह बात मैंने तरङ्गिणीके ही शास्त्रमें देखी है। मैं तो उसका पुराना प्रेमी हूँ, यदि वह आजकल एक बड़े आदमीके पास है, तो उसे मुझे एक दम नहीं भुला देना चाहिये। यह ठीक है, कि आजकल वह परदेके भीतर रहती है; हरएक आदमीकी सामर्थ्य नहीं, जो दरबानोंकी आँखोंमें धूल झोंककर अन्दर जासके। पर इससे क्या यह बात साबित होती है, कि अपना आदमी भी उससे बातचीत न कर सके? मेरा समय आजकल बुरा है, उसकी

क़िस्मतका सितारा बुलन्द है, यह माना। पर यदि पुरानी बातोंका ख़याल कर वह मेरी कुछ सहायता करदे, तो इसमें उसका नुक़सान ही क्या है?"

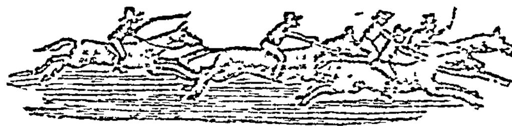
चौधरीने कहा,—"नुक़सान क्या होता? यह तो करना ही चाहिये। (भीतरकी तरफ देखकर) क्यों तरङ्गिणी बाई! तुम इनकी सहायता क्यों नहीं करतीं? ये तो तुम्हारे ही आदमी हैं। इन लोगोंका उपकार करना तुम्हारा धर्म्म है।"

तरङ्गिणी दरवाज़ेकी ओटसे बोली,—"अजी, यह मुआ झूठ बोलता है। जरा इसकी बातें तो सुनो? कहता है, मेरा और इसका मेल था! मरेका हौसला तो देखो। चौधरीजी! मैं इसे पहचानती ज़रूर हूँ, पर क्या पहचाननेसे ही मेल हो जाता है—मुहब्बत हो जाती है? बस इसे अभी मेरे मकानसे निकाल दो और कहदो, कि आजसे यह मेरे घरके पास कभी न आये।"

चौधरी महाशयने कहा,—"सुनो, धन्नूबाबू! तरङ्गिणी बाईके साथ बेकार झगड़ा ठाननेसे कोई फल न होगा। मैं तरङ्गिणी-बाईकी बातकी उपेक्षाकर तुम्हारी बात मानलूँगा, ऐसा कभी ख़याल भी न करना। अगर तुम इनकी, इस तरह फज़ीहत करते फिरोगे, तो ये तुम्हारे ऊपर कभी दया न कर सकेंगी। ठीक-ठीक और सच बातें कहो, झूठी बातें कहकर किसीको अपमानित मत करो। ऐसा करो, जिससे वे तुम्हारे ऊपर कृपा करें। मेरा विश्वास है, कि वे तुम्हारी इस दुर्दशाको देख अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगी। मैं अब जाता हूँ। यदि आगेको

फिर कभी यह बात सुनाई दी, कि तुमने तरङ्गिणी बाईको किसी तरहके दुर्वाक्य कहे हैं, या उनके साथ झगड़ा-टण्टा किया है, तो मैं राजा साहबसे कहकर ऐसा प्रबन्ध करदूँगा, कि तुम उनके मकानके पाससे होकर भी न जा सकोगे और तुम्हें बुरी तरह अपमानित होना पड़ेगा। इतनेपर भी यदि तरङ्गिणी बाई तुम्हारी सहायता न करें, तो मुझसे आकर कहना, मैं तुम्हारा प्रबन्ध करादूँगा।"

चौधरी महाशय चलेगये। अब धन्नूने फिर तरङ्गिणीसे मीठी-मीठी बातों द्वारा सहायता करनेकी प्रार्थना की। तरङ्गिणी-ने उसे बहुतेरी भद्दी-भद्दी गालियाँ दे, अपने दरबानको उसके मुँहपर जूता मारनेका आदेश दिया! दरबान मालिकिनका हुक्म पा पैरका जूता निकाल धनुआँको मारने चला! यह देख धन्नूने प्राण बचाकर भाग जाना ही उचित समझा। जाते समय इसबार भी वह यही कहता गया, कि,—"अच्छा, देखा जायेगा।"



दूसरा परिच्छेद

फिर निराशा।

धनुआँ तेली महा मर्म्माहत होकर घर लौटा। रास्तेमें उसने भूत-भविष्यत्‌के सम्बन्धमें अनेक विचार किये। इस समय उसकी उमर पैंतीस सालकी है। अपनी इतनी उम्रमें आजतक उसने कोई दुष्कर्म्म किया या नहीं? यह बात उसे अनेक चिन्ता करनेपर भी नहीं सूझी। उसने अपने जीवनको बिल्कुल निष्कलङ्क, पाप-रहित और परम उज्ज्वल समझा। अतीत जीवनके जो काम उसे अन्याय-पूर्ण मालूम पड़े, उन्हें फ़ौरन दूसरोंके कन्धोंपर डाल वह अपनेको निष्कलङ्क समझने लगा। उसने स्वयं अपनेको साधुताका भाण्डार समझा और मनुष्य-समाज नितान्त अत्याचारी, अविचारी और पक्षपाती है, यही स्थिर किया। अब उसे यही मालूम होने लगा, कि संसार मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता, समस्त मनुष्य मेरे साथ दुष्टता करते हैं। अतीत घटनाओंकी वह जितनी ही आलोचना करता गया, उतना ही उसका यह विश्वास दृढ़ होता चला गया। कहना व्यर्थ है, कि उसने सिवा इन बातोंके, कि किसने मेरे साथ क्या अन्याय किया, और किसी मार्मिक बातपर विचार नहीं किया। संसारमें धनुआँ ही एकमात्र ऐसा आदमी

नहीं है; अधिकांश मनुष्य ऐसाही विचार करते हैं। अपने सम्बन्धमें सब अच्छाईही देखते हैं; बुराई कोई नहीं देखता। ऐसे आदमी सिवा अपनी बात कहनेके, दूसरेकी एक भी नहीं सुनते। वे लोग संसार-भरके मनुष्योंकी बुद्धि और विवेचनाको तुच्छ समझ, अपनी ही बुद्धिको सर्वोपरि समझते हैं। इनके सब काम निर्दोष, और दूसरोंके निर्दोष होनेपर भी सरासर सदोष होते हैं। आईन, अदालत, तर्क, झगड़ा, सभी इस पक्षपात-पूर्ण विचारके नमूने हैं।

इस प्रकार चिन्ता करता-करता धन्नू संसारके ऊपर बड़ा विरक्त हुआ। सुरेन्द्र महा पापात्मा था, उसने मेरी भगिनीका सर्वनाश किया, पर ईश्वरने कुछ भी नहीं। कालिदास चक्रवर्ती बड़ा भारी मूर्ख है, उसने तरङ्गिणीको राजीवपुर जानेही क्यों दिया? राजा लोग महा पापी हुआ करते हैं; क्योंकि राजा अरविन्दरायने मेरी एकमात्र प्रेमिका तरङ्गिणीको छीन लिया। तरङ्गिणी बड़ी ख़राब औरत है। वह मेरे प्रेमको एकदम भूल गयी और गिरिबाला एकदम बेवक़ूफ़ है, क्योंकि वह राजाको अपने हाथमें नहीं कर सकी, इत्यादि। इस प्रकार धनुआँ तेली, संसारके लोगोंको दोषी ठहराता हुआ, अपने मकानपर लौटा।

रात बहुत कुछ जा चुकी थी, चारों ओर घना अन्धकार फैला हुआ था। चलिये पाठक! उस सामनेके घरमें चल-कर देखें, कि वहाँ क्या होरहा है? घर मामूली और कच्चा है। रोग-शय्यापर सोयी हुई एक स्त्री यन्त्रणा-सूचक ध्वनि

कर रही है। घरकी ज़मीनमें बेहद सील है; कोनेमें दीवटके ऊपर एक धुँधला चिराग़ जल रहा है। वह एक चटाईके ऊपर फूलके मुट्ठे पर सिर रखे पड़ी हुई है। उसके कपड़े बेहद मैले और इतने छिन्न-भिन्न तथा पुराने हैं, कि उनसे समस्त अङ्गोंका ढकना भी एक प्रकारसे कठिन हो रहा है। घरमें कोई चीज़-वस्तु नहीं है। पीड़िताकी शय्याके पास एक मट्टीके घड़ेमें जल भरा है, जिसे वह समय-समयपर पी लेती है। स्त्री गर्भिणी मालूम होती है। पाठक! आपने पहचाना·· कि यह स्त्री कौन है? यह स्त्री गिरिबालाके सिवा और कोई नहीं है। किन्तु हाय! इसकी वह रूप-राशि कहाँ गयी? वह अहङ्कार और तेज कहाँ गया? इस समय गिरिबालाकी देह अस्थि-चर्म्मावशेष होरही है। निदारुण क्षयरोगने उसको ग्रास कर लिया है। पथ्य और शुश्रूषाके अभावसे पीड़ा क्रमशः बढ़तीही जाती है। वह इस समय मरणापन्न होरही है, दिन-रात भूख और प्याससे छटपटाया करती है। शीतने उसे कातर बना डाला है। भयके मारे वह अवसन्न हो गयी है। उसे चारों ओर मृत्यु दिखाई देरही है। सारांश यह, कि उसकी दुर्दशाकी सीमा नहीं है। इस समय उसके पास कुछ भी नहीं है। घरके वर्त्तन-भाँड़े और कपड़े-लत्ते सब धन्नू द्वारा बेंच दिये गये हैं। अब उसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। आजकल धन्नू कुछ नहीं करता। अभावसे बेतरह तङ्ग आकर वह उसकी पूर्त्तिकी फ़िक्रमें

इधर-उधर घूमता है, पर अभाव किसी तरह दूर नहीं होता, वरन् दमपर दम बढ़ताही चला जाता है। यह तरङ्गिणीके दरवाज़ेपर भीख माँगने गया, पर मार खाकर लौट आया। वह जहाँ कहीं भिक्षा माँगने गया, वहींसे उसे अपमानित होकर लौट आना पड़ा। वह राजाके निकट भी सहायताकी प्रार्थना करने गया था, पर उनसे मुलाक़ात न होसकी। दरवानने उसे मकानके पास भी न फटकने दिया। धन्नूने गिरिबाला द्वारा चुराये हुए गहनोंको भी प्राप्त करनेकी चेष्टा की, परन्तु कुछ भी फल न हुआ। आखिरकार उसने चोरीकी ठहरायी। दो-चार जगह कई दफ़े ताक-झाँकके लिये गया भी; पर मौक़ा न लगा। एक दिन मौक़ा भी लगा, तो सहसा पकड़ गया और इतने जूते लगे, कि खोपड़ी पिलपिली होगयी। धन्नू बाबूने इन सब नीच उपायोंका अवलम्बन तो किया, पर कभी नौकरी या मज़दूरी करनेकी फ़िक्र नहीं की। जो 'धन्नूबाबू' के सिवा, कभी किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा 'धनुआँ' भी नहीं कहा गया, वह आज बाबूत्वके विरोधी कार्य्योंको क्यों करेगा? इसीलिये उसके घरमें दरिद्रता-देवी साक्षात् मूर्त्ति धारण कर विराज रही हैं।

धनुआँ बड़ी आशा करके गिरिबालाको साथ ले आया था। उसे आशा थी, कि वह असतपथपर चलकर रुपया पैदा करेगी। पर वह गर्भिणी और पीड़िता है, उपार्जन क्या ख़ाक करेगी?

जहाँ इतने अभाव हैं, वहाँ विवाद होना तो अवश्यम्भावी ही

है। तदनुसार कुल-ध्वज भाई और कुल-पाविनी भगिनीके बीच निरन्तर कलह विराजमान रहता है। भाईका कहना है, कि अगर मुझे यह मालूम होता, कि तुम्हें साथ लानेसे ऐसे-ऐसे पाप मेरे सिरपर पड़ेंगे, तो मैं कभी तुम्हें साथ न लाता।

गिरिबाला कहती है, कि सुरेन्द्रबाबूके पास रहनेसे मुझे खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, तरह-तरहके ऐशो-आराम मिलते थे, पर जबसे मैंने तुम्हारा कहना माना, तभीसे मेरा सत्यानाश हुआ। दुःख और दारिद्र्यके बीचमें सद्भाव और सम्प्रीति रहने-पर कष्टकी कठोरता कभी अनुभूत नहीं होती। पर इन अभागों-को यह सौभाग्य भी नहीं प्राप्त था।

जिस समय गिरिबाला यातनाओंसे 'आह, ओह!' कर रही थी, उसी समय घरके किवाड़ खोलकर धन्नूने प्रवेश किया। पीड़िता दूसरी तरफ़ करवट दिये पड़ी थी। घरमें कुत्ता आगया, ऐसा समझकर वह उसे दुरदुराने लगी।

धन्नू बोला,—"अरे! तू अभीतक जीती ही है? यमराजके दूत तुझे अभीतक लेने नहीं आये? गिरि! तू मरे और तेरी देहको कुत्ते खायें, ऐसा दिन भगवान् जल्दी लायें।"

बड़ी मर्म्मान्तक बात है! बड़ी निष्ठुर और अस्वाभा-विक उक्ति है! गिरिबाला बोली,—"कौन? भैया! आगये क्या? मैंने देखा नहीं था। देखती भी कैसे? एक तो रोगकी ज्वाला, तिस-पर मारे भूखके मैं मरी जाती हूँ। कुछ खाना भी लाये, कि नहीं?"

धन्नू बोला,—"मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, वहाँ क्या खानाही

माँगने जाता हूँ ? दिन-रात भी खाऊँ-खाऊँ ? अरे, सबसे अच्छा तो यह है, कि तू मुझेही खाकर पेट भरले। क्या खायेगी ?"

गिरिबाला बोली,—"ख़ैर, मैं तुम्हें खाऊँ या न खाऊँ, पर तुमने तो मुझे सब तरहसे खालिया ? मेरी आगसे अब तुम बहुत दिन न जलोगे। बहुत तो, एक दिन या दो दिन। पर भगवान् इस बातको अच्छी तरह जानते हैं, कि मेरे सब दुःखों और बेमौत मरनेके कारण तुम्हीं हो।"

धन्नू यह सुनकर सिरसे पैरतक जल उठा, बोला,—"मैं ही हूँ ? किस तरह, ज़रा बता तो सही ?"

गिरिबाला बोली,—"तुम नहीं तो और कौन है ? सुरेन्द्रबाबूके पास मेरे दिन ख़ूब अच्छी तरहसे बीतते थे। सुखसे कहो या दुःखसे, मेरा खाना-पीना तो चलाही जाता था। तुम्हारी सलाहसेही मैंने बहुतसी चीज़ें चुरायीं। अगर वह भी अपने पास रहतीं, तो मुझे ये दिन देखने नसीब न होते। तुमने अपनी तरङ्गिणीकी सलाहसे सबकुछ न जाने कहाँके राजाको दे दिया। मरा ससुरा राजा!"

धन्नूने कहा,—"मैंने ही देदिया ? मैं क्यों देता ? तूनेही तो राजाके सामने रख दिया था ?"

गिरिबाला बोली,—"मैं इसे मानती हूँ, कि मैंने रखा था; पर यदि तुम तरङ्गिणीकी बातोंमें न आते, तो वे गहने कभी राजाके हाथमें न जा फँसते। इसके बाद तुमने लाठीसे सिर फुड़वा लिया। तुम्हारी दवा-दारूके ख़र्चमें हाथके दोनों कड़े, कानकी

वालियाँ और जो कुछ कपड़ा-लत्ता था, वह सब सत्यानाश होगया। अगर ये चीज़ें भी रहतीं, तो इस असमयमें मेरा उनसे, न मालूम कितना, उपकार होता।"

धन्नू बोला,—"जब तुम ऐसा जानती थीं, तब तुमने मेरे लिये इतना ख़र्च क्यों किया? ख़र्चही कितना हुआ, जिसका तुम रोज़ ताना देती हो? क्या दो-चार शीशी दवा मँगानेमेंही तुम कङ्गाल हो गयीं?"

गिरिबालाने कहा,—"केवल दोचार शीशी दवाही नहीं; क्या-क्या हुआ, सो तुम क्या जानो? ये पास-पड़ोसके लोग अच्छी तरह जानते हैं। ख़ैर, उस वक्त तो मैंने यही सोचा था, कि तुम्हारे अच्छे होजानेपर सारी फ़िक्र दूर हो जायगी। अब तुम अच्छे भी हो गये; पर करते कुछ भी नहीं। इधर-उधर टप्पे मारते फिरते हो। तरङ्गिणीके पास गये, उससे मददके लिये बहुत मिन्नतें कीं; पर उस दईमारीने कुछ न सुना। मुँहसे एक बात भी नहीं कही। इसके अलावा बेइज़्ज़ती भी करायी। अब दुःख और तकलीफ़ोंकी कोई हद नहीं। कहती हूँ, कि जाओ, राजासे मेरे उन गहनोंको माँग लेआओ; पर तुम [illegible] आपही डरके मारे दुबले हुए जाते हो, लाये तो कौन? यह [illegible] पास कि राजाजी इस बातको जान गये वा समझ गये हैं, [illegible]में सोचा गहनोंको हम चुराकर लाये हैं। तब क्या तुम्हें इस कुछ न कुछ है, कि अगर तुम उन गहनोंको राजासे माँगनेकी कुछ ज़रूरत राजाजी तुम्हें पकड़वा देंगे? वे क्यों पकड़ना होसकी, बेइज़्ज़ती

तो उनके पास धरोहरके ही रूपमें रखे गये थे ? वे क्यों न लौटा-येंगे ? फिर तुम तो मर्द हो। साहस करके लेआओ। अगर न दें, तो झगड़ा करो। और बताऊँ, कि तुमने मेरा क्या-क्या नुक़सान किया ? जहाँतक हो सकता था, वहाँतक तुमने मेरा सत्यानाशही किया। अब मैं अधिक दिन न जीऊँगी। दुःखोंका अब जल्दीही अन्त होगा। जब मैं इतने दिनोंसे तरह-तरहके कष्ट भोग रही हूँ, तब क्या ये दो-तीन दिन नहीं बीत सकेंगे ? मेरा अन्तिम समय है। इस समय मैं तुमसे किसी तरहका झगड़ा-टण्टा नहीं करना चाहती। यदि ईश्वर है, और वह सबका ठीक-ठीक विचार करता है, तो तुम्हारा न्याय उसीके यहाँ होगा।"

धन्नू थोड़ी देर विचारकर बोला,—"अच्छा, अच्छा, मैं कल सवेरेही राजाके पास जाकर तुम्हारे गहने माँगूँगा। हमारे ऐसे बुरे समयमें भी क्या वे धरोहर न लौटायेंगे ?"

गिरिबालाने कुछ जवाब नहीं दिया। यंत्रणाके मारे वह फिर 'आह'-'ऊह' करने लगी। इस प्रकार अनाहार और कष्टसे वह रात बीत गयी। प्रातःकाल होतेही धन्नू सचमुच राज-नकी तरफ़ चला। जाते समय उसने गिरिबालासे कुछ राजा० और न उसकी कुछ ख़बरही ली।

गिरिगृहके पास पहुँच वह बड़ा साहस कर द्वारके पास यदि तुम तब्बी मुश्किलोंसे उसने अपने आनेकी ख़बर राजाके हाथमें न जा फ॰ पहले नीलरतन चौधरीने उसके साथ भेंट लिया। तुम्हारी दे-सूरत देखतेही राजासाहबसे मिलनेके लिये

प्रार्थना करने लगा। नीलरतनने कहा,—"अगर तुम राजासे मुलाक़ात करने आये हो, तो पहले यह बतलाओ, कि तुम किस लिये मिलना चाहते हो?"

यह सुन धनुआँने अपनी वर्त्तमान अवस्थाका समस्त संवाद कह सुनाया और राजाके पास रखी हुई अपनी धरोहरको वापिस लेनेकी भी बात कही। नीलरतन उसे साथ लेकर राजाके सामने जा पहुँचे।

राजाके पास पहुँच जानेपर उन्होंने धनुआँसे बहुतसी बातें पूछीं और धनुआँने भी उनका उचित उत्तर देते हुए अपनी दुर्दशा-का हाल कह सुनाया। कल उसके साथ तरङ्गिणीने जैसा व्यवहार किया था, राजासाहबने उसे भी सुना। सारी बातें सुनकर राजासाहब कहने लगे,—"अच्छा, अब तुम जाओ, हम अपने आदमीको तुम्हारे पास भेजते हैं। वह इस समय तुम्हें जिन-जिन चीज़ोंकी आवश्यकता है, सब लादेगा। इसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। जो कुछ ख़र्च होगा, वह मैं दूँगा। तुमने इतने दिनोंतक ये सब हाल हमसे आकर क्यों नहीं कहे?"

धन्नू, राजासाहबका ऐसा दयापूर्ण भाव देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ। बोला,—"राजासाहब, मैं तो कई दफ़े आपके पास आया, पर मुलाक़ातही न हो सकी। मैंने अपने दिलमें सोचा था, कि तरङ्गिणी मेरी इस हालतको सुनकर कुछ न कुछ सहायता अवश्य करेगी, आपको तकलीफ़ देनेकी कुछ ज़रूरत नहीं। पर उसने तो मेरी, जहाँतक उससे होसकी, बेइज़्ज़ती

ही करायी। जब मैं एकदम निरुपाय होगया, तब आपके पास आया हूँ।"

इसके बाद धन्नूने अपने गहनोंकी बात उठाकर उन्हें वापिस लेना चाहा। यह सुनकर राजाने कहा,—"तुम्हारी धरोहर मेरे पास जैसी-की-तैसी रखी है। मैंने एक चीज़ भी नहीं खोयी और न कभी उन्हें व्यवहारमेंही लाया। इससे तुम निश्चिन्त रहो। पर धन्नूबाबू! यह बात मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानते हो, कि वे गहने तुम्हारे नहीं, दूसरेके हैं। दूसरेकी चीज़ें लेकर तुम क्या करोगे? जिसकी चीज़ें हैं, उसके पास पहुँच जानी चाहियें। इससे वह भी सन्तुष्ट होगा और तुमपर भी किसी तरहकी विपत्ति नहीं आयेगी। उन्हें वापिस लेकर क्या तुम बेचना चाहते हो?"

धन्नू बोला,—"माल चोरीका हो या डकैतीका, इस समय हमारी हालत बड़ी ख़राब है। मैंने आपके पास उन्हें धरोहर रखा था, अब मैं उन्हें वापिस लेना चाहता हूँ। आपको उन्हें मुझे दे देना चाहिये।"

राजाने हँसकर कहा,—"सुनो धन्नूबाबू! चीज़ें अब वापिस नहीं हो सकतीं। मैं स्वयं भी उनका व्यवहार या विक्रय न करूँगा और न किसी तीसरेको ही दूँगा। जिसकी चीज़ें हैं, उसीके पास आवश्यकताके अनुसार पहुँचवा दूँगा। पर वे अब तुम्हें कभी नहीं मिल सकेंगी। अगर तुम इस बारेमें अधिक गोल-माल करोगे,तो मैं पुलिसको बुलाकर इसी दम तुम्हें हवालात

भिजवा दूँगा । रही तुम्हारी दुरवस्थाकी बात, सो उसकी तुम तनिक भी चिन्ता न करो । मैं उसके लिये सब प्रबन्ध कर दूँगा । अब तुम अपने घर जाओ ।”

धन्नूको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ । थोड़ी देर चुप-चाप

आया। अभागे धन्नूने चिल्लाकर गिरिबालाकी अवस्था एवं अपनी दीन दशाकी बात तरङ्गिणीको सुनायी और कातरताके साथ दो-चार आने पैसे माँगे; पर प्रार्थना अस्वीकृत हुई। पहलेसे भी अधिक अपमानित हो अभागेको घर लौट आना पड़ा। आनेके समय वह फिर, 'अच्छा, देखा जायेगा' कहता आया।

घर आकर धन्नूने देखा, कि आपत्ति और भी अधिक बढ़ गयी है। गिरिबालाने विना दिन पूरे हुए, आठवें महीनेमें ही, एक पुत्र-रत्न प्रसव किया है और आप मरणापन्न हो रही है। धन्नू बहनके पास गया एवं बारम्बार उसका नाम लेकर पुकारने लगा; पर कुछ जवाब न मिला। गिरिबाला उस समय बेहोश थी। धन्नूने सोचा,—"यह तो बड़ी बुरी बात हुई! अब क्या करूँ? कैसे गिरिबाला और उसके पुत्रकी रक्षा करूँ? ख़ैर, भगवान् मालिक हैं, वे सब व्यवस्था करदेंगे। अगर इन दोनोंकी और कुछ देरतक ऐसी ही अवस्था रही, तो भगवान् इन दोनों पवित्रात्माओंको अपने पास बुला लेंगे। पर परमात्माका यह कैसा अविचार है! मेरी गिरिबाला क्या तरङ्गिणीसे भी अधिक पापिनी है? तरङ्गिणीको दिनपर दिन सुख प्राप्त होते जाते हैं और मेरी बहन इस तरह कष्टसे मर रही है। भगवान्के राज्यमें क्या इसी तरहका न्याय होता है?"

धनुआँने इस बार फिर अपनी बहनका नाम लेकर पुकारा; पर गिरिबालाने उत्तर नहीं दिया! इस समय वह अज्ञान अवस्थामें पड़ी हुई थी। धनुआँने अबके आँखें गड़ाकर अपने

भानजेको देखा। देखा, कि वह सौली ज़मीनपर पड़ा हुआ अपने हाथका अँगूठा मुँहमें लेकर चूस रहा है। वह कुछ देर निश्चेष्ट भावसे उस सुकुमार बालकको देखता रहा। इसके बाद बोला,—"भगवन्! मैंने माना, कि मेरी बहन पापिनी है, पर यह सुकुमार बच्चा तो पापी नहीं? इसको इतने कष्ट क्यों देते हो, भगवन्?"

स्नेह-हीन, हृदय-हीन, वर्बरके हृदय-कोणमें भी जो थोड़ीसी कोमल प्रवृत्ति छिपी हुई थी, वह इस समय अत्यन्त प्रखर हो उठी। जो असम्भव था, वही सम्भव हुआ—धन्नूकी आँखोंमें आँसू आगये।

इसी समय गिरिवाला होशमें आकर बोल उठी,—"भैया! आगये क्या? मैं मरनेही वाली हूँ; मेरे मरनेमें अब कुछ भी देर नहीं है। अब मैं अधिक दिन तुम्हारे सिरका बोझ बनकर कष्ट न दूँगी। पर भैया! मैं तुम्हारे पाँव पड़कर विनती करती हूँ, कि तुम मेरे इस अभागे पुत्रको यत्नके साथ पालना। पापके फलसे पैदा होनेपरभी यह स्वयं किसी तरह पापी नहीं है। यदि इसे किसी तरह बचा सको, तो अच्छा है। मेरे भाग्यमें जो था, वह हुआ। तुम इसपर कृपा करना।"

धन्नू बोला,—"मुझे चाहे जितना कष्ट हो, पर मैं तुम्हारे इस बच्चेको अवश्य बड़े यत्नसे पालूँगा। जिस तरह होगा, इसे बचाऊँगा। इसे सुखपूर्वक रखूँगा। पर गिरिवाला! तुम मुझे कहाँ छोड़े जाती हो? क्षमा करो, मैं अब तुमसे कभी झगड़ा न करूँगा।"

गिरिबाला बोली,—"भैया! अब इस अवस्थामें मेरा बचना असंभव है। तुमने जब इस बातको हृदयसे स्वीकार कर लिया, कि मेरे बच्चेको सुख-पूर्वक रखोगे, तब मुझे मरनेमें तनिक भी कष्ट न होगा। मैं बड़ी पापिनी हूँ। माँसे कहदेना, कि वह मेरे लिये न रोये। मेरा पापी जीवन पूरा होगया। भगवान्‌के यहाँ मुझे बड़ा भीषण दण्ड मिलेगा। तुम मुझे क्षमा करना।"

इससे आगे गिरिबाला कुछ भी न कह सकी। उसका मुँह बिगड़ गया। उसका प्राण-पक्षी शून्यमें उड़ गया। असमयमें ही बड़े कष्टके साथ गिरिबालाकी मृत्यु हो गयी।

घन्नू चुप-चाप खड़ा रहगया। सहोदराकी शेष अवस्था, किंकर्त्तव्य-विमूढ़की भाँति स्थिर दृष्टिसे देखते-देखते उसे गिरिबालाके शेष जीवनकी समस्त कष्ट-कथाएँ एक-एक करके याद पड़ने लगीं। उसने गिरिबालाको जैसी-जैसी बुरी, घृणित और कुत्सित गालियाँ दीं और दुर्वाक्य कहे थे, सब एक-एक करके याद आने लगे। इसके बाद उसने कहा,—"तरंगिणी! तुम्हारे ही लिये मेरी इस बहिनने अपने प्राण खोये। तुम्हारीही सलाहसे मैं इसे घरसे भगा लाया। तुम्हारी ही सलाहसे इसकी चुरायी हुई चीज़ें राजाके पास गिरों रखीं, तुम्हारे ही वाक्य-जालमें फँसकर मैंने कालिदासकी लाठी खायी। जो कुछ पल्ले था, उसे तुम्हारेही भरोसेपर खो दिया। दो-चार आने पैसे बतौर भीखके माँगे, सो भी तुमने नहीं दिये! तुमने जिसका ऐसा सत्यानाश किया, उसकी ज़रा भी ख़बर नहीं ली! भिखमङ्गेकी

तरह दरवाज़ेपर आया देखकर उल्टे तुमने मुझे पिटवाकर भगा दिया! हे जगदीश्वर! वहन मरी पड़ी है, चारों ओर भयङ्कर कष्ट मुँह फाड़े मुझे निगल जानेके लिये खड़े हैं, पासमें वहनके क्रिया-कर्मके लिये एक पैसा भी नहीं है, और यह सोनेके चाँद जैसा वच्चा ज़मीनपर पड़ा बिलख रहा है, अभी नाड़ी भी नहीं कटी! जो पापिनी इन सब कष्टोंकी जड़ है, क्या मैं उसे दण्ड नहीं दे सकता? क्यों नहीं देसकता? अवश्य दे सकता हूँ।"

इसके वाद धन्नू अपनी आँखोंके आँसू पोंछता हुआ भानजेके पास गया और उसे गोदमें उठाकर चूमने लगा।

इसी समय दो स्त्रियाँ और पाँच पुरुष उस कुटीमें घुस आये। प्रथमागता रमणीकी रूप-राशिसे घर जगमगाने लगा। उसके कपड़े अति शुभ्र थे। चौड़े किनारेकी साड़ी, हाथमें चूड़ियाँ, और माँगमें सिन्दूर भरा हुआ था। इस देवीको हम और भी एक वार देख चुके हैं। हरिदासके घर आकर जिस देवीने उसके मृत्यु-शय्या-शायी पुत्रकी सेवा-शुश्रूषा की थी, यह तो वही देवी है। विगत परिच्छेदमें इस देवीको मा-लक्ष्मीके नामसे पुकारा गया है। पाठक याद रखें, जवतक इसका प्रकृत परिचय न मालूम होगा, तवतक हम इसे मा-लक्ष्मीके नामसे ही सम्वोधित करेंगे। मा-लक्ष्मीके साथ एक धायभी थी। धायके हाथमें एक वड़ीसी पोटली थी।

धन्नू इस रूप-राशि-सम्पन्ना देवीको देखकर अवाक् रहगया। उसने थोड़ी देर वाद पूछा,—"मा! मेरी इस दारुण विपत्तिमें

सान्त्वना प्रदान करनेवाली तुम कौन हो ? देवी हो या मानवी ?"

मा-लक्ष्मी मधुर स्वरसे बोलीं,—"भैया! जो तुम हो, वही मैं भी हूँ।"

धायने कहा,—"इनका नाम मा-लक्ष्मी है।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"भैया ! घबराओ नहीं, विपद्-आपद् संसारमें प्रत्येक मनुष्यपर आती है। उसके लिये सोच करना वृथा है।"

यह कह मा-लक्ष्मी धन्नूके पास जाकर बोलीं,—"लाओ, दो, भैया! इस बच्चेको मेरी गोदमें दो। तुम मर्द हो, बच्चोंका लालन-पालन तुम लोगोंसे नहीं हो सकता।"

धन्नूकी गोदसे बालकको लेकर देवी वहीं बैठ गयीं। धायने हाथकी पोटलीसे यन्त्रादि निकालकर नाड़ी काट दी एवं बच्चेका समस्त अङ्ग गरम कपड़ोंसे ढाँक दिया। इसके अतिरिक्त और जो-जो क्रियाएँ, तत्कालके जन्मे हुए बच्चेके लिये की जाती हैं, वे भी कीं।

इसके बाद मा-लक्ष्मीने कहा,—"धन्नू बाबू! मैं तुम्हारे भानजेको अपने साथ ले जाऊँगी। मैं इसका ख़ूब यत्नके साथ पालन-पोषण करूँगी, तुम्हें जब कभी देखनेकी इच्छा हो, तब मेरे यहाँ आकर देख जाया करना।"

धन्नू बोला,—"मा! आप दयाकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं। मैं इस बच्चेको देख-देखकर बड़ा व्याकुल हो रहा था। मा! क्या

मेरा यह सोनेका चाँद बच जायगा? यह बड़े कुसमयमें पैदा हुआ है।"

मा-लक्ष्मी बोलीं,—"न बचनेकी क्या बात है? अवश्य बचेगा। तुम भगवान् दाऊजीकी प्रार्थना करो। वे अवश्य तुम्हारे इस भानजेको बचा देंगे।"

धन्नूने भक्ति-भावसे भगवान् दाऊजीसे भागिनेयके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनकी बहुत देरतक प्रार्थना की। इस जीवनमें उसने अभीतक ऐसा काम कभी नहीं किया था। अब भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे उसके हृदयको बड़ी शान्ति मिली। वह मानों निश्चिन्त होगया। मानों उसके हाथ-पाँवोंके बन्धन खुल गये।

मा-लक्ष्मी बोलीं,—"धन्नू बाबू! यह संसार पञ्च-भूतोंका बना है, इसमें विचरण करनेवाले जीव पञ्चभूतात्मक हैं। जिन वस्तुओंका इस संसारमें निर्माण होता है, उनका एक दिन विनाश होना अवश्यम्भावी है। तुम्हारी बहन मर गयी है, अब उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। मरनेके बाद तुम्हारे यहाँ जो-जो काम होते हों, उन्हें करनेका प्रयत्न करो। मेरे साथमें आये हुए ये लोग मुर्देको गङ्गा किनारे लिये जाते हैं, तुम इनके साथ जाकर यथा-नियम इसका दाह-संस्कार कर आओ।"

धन्नू बोला,—"मैं बड़ा ग़रीब हूँ। मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। अतएव उसका दाह किस तरह करसकूँगा?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"उसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। भैया! धन्नूको पाँच रुपये देदो और तुम सब परिश्रम करके

शीघ्रतासे मुर्देको घाट-किनारे ले जाओ। विलम्ब करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। धन्नू! तुम इस रुपयेको लेकर इस समयका काम तो चलाओ। बादकी व्यवस्था फिर देखी जायेगी।"

एक आदमीने आगे बढ़कर धन्नूके हाथमें पाँच रुपये दिये।

पाठक! इस आदमीको आप पहचानते हैं या नहीं? यह क्या यदुनाथ हालदार है? हाँ—यह कृष्णनगरका वही मूर्ख दूकानदार, यदुनाथ हालदारही है।

खटिया और कफ़न मँगाया गया। उसपर गिरिबालाके शवको रख सब लोग "श्री राम नाम सत्य है" कहते हुए गंगाकी तरफ़ चल पड़े। नीचा मुँह किये धन्नू भी पीछे-पीछे चला।

गङ्गाके किनारे चिताकी अग्निपर गिरिबालाकी पाप-काया भस्मीभूत हो गयी! उसकी समस्त भावनाएँ, समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ, सदाके लिये समाप्त हो गयीं! जब उसकी देह भस्ममें परिणत हो गयी, तब धन्नू एक दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोला,— "जिसके लिये,जिसके कुपरामर्शसे और जिसकी निष्ठुरतासे मेरी इस सहोदराने प्राण गँवाये हैं, उसको अवश्यमेव इसका प्रतिफल भोगना पड़ेगा।"

चिता बुझ गयी। जो लोग शव लाये थे, वे सब चले गये। यदु हालदार धन्नूके पास आकर बोला,—"धन्नू बाबू! अब आप कहाँ जायेंगे? आपकी मा और स्त्री-बच्चे अच्छी तरहसे हैं, क्या आप उनसे मिलियेगा?"

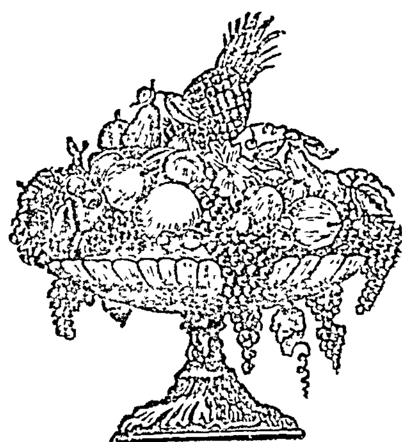
धन्नू बोला,—"अब मैं उन लोगोंको अपना यह काला मुँह न दिखाऊँगा। मेरा भानजा कहाँ रहेगा? मैं उसे केवल कभी-कभी देख आया करूँगा। मा-लक्ष्मी कहाँ रहती हैं?"

यदु,—"आप मा-लक्ष्मीका पता श्रीदाऊजीके मन्दिरमें जाकर पा सकेंगे। जब इच्छा हो, तभी आप अपने भानजेको बेरोक-टोक देख आ सकते हैं। इस समय आपके पास कुछ ख़र्च-वर्च है?"

धन्नूने कहा,—"मेरे पास डेढ़ रुपया है। यही काफ़ी है। मैं भीख माँगकर खालूँगा। और यह भी कौन कह सकता है, कि मैं जीऊँगा या मरूँगा? ख़र्च-वर्चकी कुछ ज़रूरत नहीं है। यदि मैं जीता रहा, तो मा-लक्ष्मीके चरणोंमें अवश्य आकर सिर झुकाऊँगा। मैं उनका दास हूँ। आप मेरे भानजेके ऊपर सदा दया-भाव रखियेगा। मा-लक्ष्मीके चरणोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम कह दीजियेगा।"

इतना कह धन्नू, बिना किसी प्रकारके उत्तरकी प्रतीक्षा किये, वहाँसे चलदिया। यदुनाथ उसकी अवस्था देख डर गया।





पञ्चम खण्ड ।



"या निशा सर्व-भूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥"

अर्थ—जो समस्त प्राणियोंके लिये रात्रि अर्थात् सोनेका समय है, उस समय जितेन्द्रिय व्यक्ति जागते रहते हैं। जिस समय समस्त प्राणी जागते रहते हैं, उसे मुनिलोग रात्रि समझते हैं।

तात्पर्य्य—अविवेकी मनुष्य ज्ञानोन्नतिके अभावसे, तत्त्व-विषयक व्यापारोंको रात्रिकी भाँति अन्धकारसे घिरा हुआ देखते हैं एवं मायासे ढके विषय-व्यापारोंको असली समझकर उनका उपभोग करते हैं। मुनि, अर्थात् माया-विहीन मनुष्य विषय-व्यापारोंको रात्रिके समान समझकर तत्त्वालोचनामें सन्निविष्ट-चित्त रहते हैं।

(श्रीमद्भगवद्गीता । २६ अध्याय, ६९ श्लोक । श्रीकृष्णवाक्य)



कर्म फल

पहला परिच्छेद।

कृपणकी स्त्री।

शान्तिपुरके श्यामबाज़ारमें अद्वैतका मकान है। मकान सामान्यसा है। दो ईंटोंकी बनी कोठरियाँ और एक दालान छप्परका है। मकान चहारदिवारीसे घिरा हुआ है।

दिनके ११ बजे अद्वैत घोष गंगा-स्नानसे निवृत्त होकर मकानपर लौटे। कपड़े उतारकर उन्होंने सारे शरीरको गोपी-चन्दनसे पोता। कहीं राधाकृष्ण, कहीं रामानन्दी तिलक, कहीं शंख-चक्र, और कहीं गदा-पद्मकी छाप लगायी। उस समय वे पूरे बगुलाभगत मालूम पड़ने लगे। इसके बाद वे गौमुखीमें हाथ डालकर माला हिलाने लगे, मानो जप कर रहे हों। किन्तु सचमुच ही वे भगवान् चक्रपाणिका स्मरण कर रहे थे या क़र्ज़दारोंसे मिलने वाले सूदका हिसाब? इस प्रश्नका उत्तर वेही देसकते हैं, जिनके हाथमें मालाकी गौ-मुखी है।

जिस समय अद्वैत माला जप रहे थे, उस समय उनकी गृहिणी, एक पत्थरकी रकाबीमें थोड़ेसे भुने हुए चने, एक सन्देश और एक लोटेमें पानी लाकर उनके सामने रख गयी। अद्वैत घोष नित्य-प्रति चने और गुड़ द्वाराही जलपान किया करते थे। इसलिये आज इस फ़िज़ूल-ख़र्चीको देखकर उनके बदनमें आग लग गयी। वे गोमुखीको दूर फेंककर बोल उठे,—"आज मैं यह क्या देख रहा हूँ ? सन्देश खिलाकर क्या मुझे गंगामें डुबाया जायेगा ? अरे! यह कहाँकी बुद्धिमानी है, जो तुमने बाज़ारसे सन्देश ख़रिद्वा मँगाया ?"

गृहिणी अनंगमञ्जरी बड़े क्रोधित स्वरसे बोली,—"मर जलमुँहे! तुझे डुबाकर मेरा क्या बड़ा फ़ायदा हो जायगा ? तू मरने क्यों लगा ? बहत्तर वर्षका बूढ़ा होजानेपर भी यमराज डरके मारे तेरे पास नहीं आते। पैसे दो पैसे ख़र्चही होगये, तो क्या प्राण निकल गये! मेरा भाग्यही फूटा है, जो अच्छी चीज़ देकर बुरी बनती हूँ। यदि सन्देश खानेमें दुःख मालूम होता हो, तो उसे रख दे। अरे अभागे! मरनेके समय पैसा क्या साथ लेजायेगा ?"

इतनी तीव्र गालियोंका अद्वैतने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तनिक भी गुस्सा नहीं किया। वरन् वे जहाँतक होसका, एक मीठी हँसी हँसकर बोले,—"पैसा मेरे साथ जाय या न जाय, पर जिसकी मुझे दिन-रात चिन्ता लगी रहती है, उसके काम तो आवेगा ? मैं सत्तर वर्षका बूढ़ा होगया, तभी तो तुम्हारे

लिये पैसा बचानेकी इतनी फ़िक्र है! अभी तुम्हारी उम्रही कितनी है? सारा जीवन सामने पड़ा है। मैं कुछ अमर होकर तो आया ही नहीं हूँ? यदि मेरे पीछे तुम्हारे पास पैसा न रहेगा, तो तुम्हारी क्या दशा होगी?"

मञ्जरी बोली,—"मेरे लिये इतनी चिन्ता करनेकी कुछ ज़रूरत नहीं। तू किसी तरह मर भी तो जा। मुझे तेरे सुखोंकी भी आवश्यकता नहीं है। तेरा मुँह काला हो, तो मेरा पाप कटे—मैं इस जंजालसे छूट जाऊँ। मेरे ऐसे फूटे भाग्य हैं, तभी तो तेरे जैसे बूढ़ेके पल्ले पड़कर दुःख भोग रही हूँ?"

अद्वैत ऊपर कही बातोंका कुछ जवाब न देकर कहने लगे,—"तुमने सन्देश क्यों मँगवा लिया? इतनी फ़िज़ूल-ख़र्ची क्या कोई अच्छी बात है? तुम अभी निरी बच्ची हो, पैसेकी क़द्र क्या जानो? न मालूम, मेरे पीछे तुम्हारी क्या दशा होगी!"

मञ्जरी बोली,—"डरो मत, मैंने पैसा देकर संदेश नहीं मँगवाया है। भगवान् ऐसे कंजूससे सदा बचाये। यदि ऐसे कंजूसोंका सवेरे उठतेही मुँह देख लिया जाये, तो दिनभर भूखों मरना पड़े। मैं तो ऐसाही ख़याल करती हूँ, औरोंकी भगवान् जाने। इन लोगोंको जितना रुपया प्यारा होता है, उतना और कोई प्यारा नहीं होता। बेटा मर रहा है, तो मर जाने दो, पर पैसा एक भी ख़र्च न होने पाये! जब तुम्हारा ऐसा हाल है, तो तुम्हारी कोई ख़बर भी न लेगा। कोई तुम्हारी लाशपर थूकेगा भी नहीं। मेरे तो चारों तरफ़ अपनेही अपने

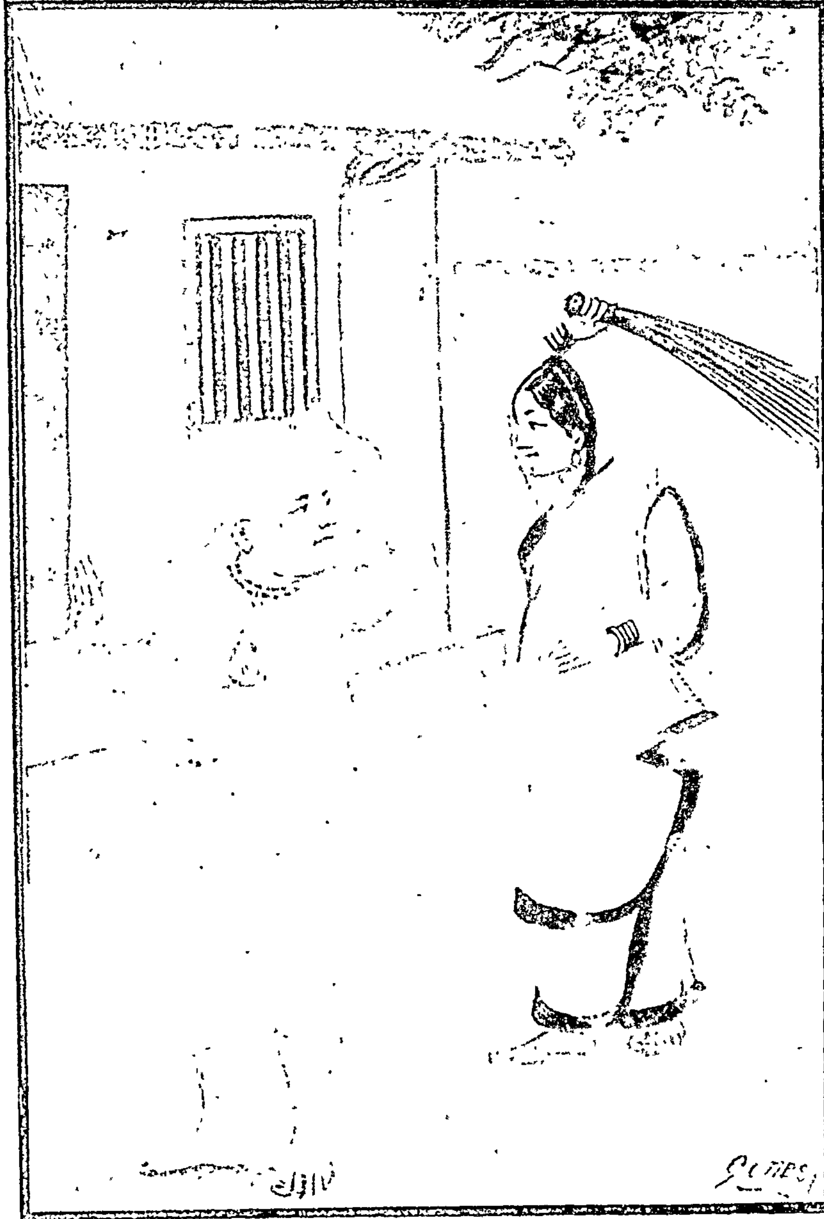
हैं। सब लोग सदा चिन्ता करते रहते हैं। मेरे लिये फ़िक्र छोड़ दो। देखो न, मेरे मँझले चाचाने आजही एक रुपयेके सन्देश मेरे पास भेजे हैं। ये तुम्हारे पैसेसे नहीं ख़रीदे गये।"

इतनी देर बाद अद्वैतके दममें दम आया। बोले,—"ऐं, तुम्हारे मँझले चाचाने भेजे हैं? कितने भेजे है? होंगे कोई चार-पाँच सेर? देखूँ, कहाँ हैं? यदि चार-पाँच सेर हों तो, इतनेकी ज़रूरत ही क्या है? कुछ थोड़ेसे रखलो, बाक़ी मैं हलवाईके यहाँ बेंच आऊँ।"

मञ्जरी इस बातको सुनकर एकदम जल गयी। बोली,—"वाह, क्या ख़ूब! ज़रा मुँह तो धो आओ। बुड्ढा कैसा चालाक है! मेरे चाचानेतो इतने शौक़से सन्देश भेजे और यह मुआ उन्हें बेचकर पैसे पैदा करना चाहता है! अपना सिर न बेच आ—ख़ूब दाम मिलेंगे!"

अद्वैत बोले,—"गुस्सा क्यों करती हो? मैंने ऐसी गुस्सेकी कौनसी बात कहदी? कोई बुरी बात थोड़े ही है? पाँच दिन सड़ाकर न खाये, न सही। सड़ी चीज़ खानेकी अपेक्षा उसे बेंचकर पैसा बनालेना क्या कोई बुरी बात है? सब सन्देश कहाँ हैं? लाओ, ज़रा देखूँ तो। अगर पाँच सेर हों, तो झट एक रुपयेके हो जायेंगे। अभी तुम्हारी कच्ची बुद्धि है, बातको बिना समझे-बूझेही गुस्सा करने लगती हो। यह बूढ़ा जो कुछ कहता है, सब तुम्हारे भलेके लिये ही कहता है।"

अब मञ्जरी सह न सकी; किटकिटाकर बोली,—"खड़ा



मञ्जरीका कोप ।

"झाड़ू क्यों फेकूँ ? पहले तुम्हारी इस कञ्जूसीकी सज़ा तो दे दूँ ।"

Burman Press, Caicuta.

[पृष्ठ—२५१]

रह चुप! तुझे अभी सन्देश दिखाती हूँ। कहाँ गयी झाड़ू? अच्छा ठहर, मारे झाड़ुओंके तेरा मुँह न सुजा दिया, तो मेरा नाम नहीं।"

मञ्जरी चली गयी और कुछ ही देर बाद, हाथमें झाड़ू लिये रण-रंगिनीके वेशमें वहाँ लौट आयी। उसे देखतेही अद्वैतने कहा,—"अरे, तुम तो सचमुच ही झाड़ू लेआयीं। मैं तो समझा, था, कि तुम सन्देश लेने गयी हो। अच्छा, अब इन झगड़ोंको दूर करो। जाओ, झाड़ू फेंककर सन्देशवाली थाली लेआओ। मैं अभी नव्वू हलवाईकी दूकानपर जाता हूँ। फिर मुझे रानाघाट जाना है।"

मञ्जरी कड़ककर बोली,—"झाड़ू क्यों फेंकूँ? पहले तुम्हारी इस कञ्जूसीकी सज़ा तो देदूँ।"

इतना कह उसने रण-रंगिनीकी भाँति अद्वैतके पास जा, उसके मुँहपर तड़ातड़ झाड़ू मारते हुए कहा,—"मुँहझौंसे! राना-घाट जायेगा, या श्मशानघाट! मुआ मुझे रातदिन जलाता ही रहता है।"

अद्वैत मुँह सहलाने लगे। उनके सारे चेहरेपर झाड़ूके दाग़ उभर आये। वे रोनी सूरत बनाकर कहने लगे,—"माफ़ करो, अब माफ़ करो, दोपहर होनेको आया, इस समय हिन्दुओंके घरमें लड़ाई होना बहुत बुरी बात है। अच्छा, तो—मिठाईका अब क्या होगा?"

मञ्जरी झुँझलाकर बोली,—"अरे सत्यानाशी! अब भी वही बात? झाड़ू अच्छी तरह नहीं खायी क्या?" इतना कह सम्मा-

र्जिनी-हस्ता पति-प्रेम-मुग्धा, अनंग-मञ्जरी फिर अद्वैत घोषको मारनेके लिये लपकी। खड़े रहकर मारखाना न्यायसंगत न समझ, इस बार अद्वैत घोषने भाग जाना ही स्थिर किया। तोभी उनकी प्रणयिनीने पीठमें दो-चार हाथ जमाही दिये। अद्वैतने किसी-किसी तरह भागकर जान बचायी। किन्तु झाड़ूकी मारके दाग़ उनकी पीठपर अच्छी तरह उभर आये थे।

अद्वैतके भाग जानेपर अनंगमञ्जरी दरवाज़ा बन्दकर आयी। इसके बाद हाथकी झाड़ू फेंककर घरमें घुसी। क्रोध और श्रमसे इस समय वह सुन्दरी बेहद रूप-ललामा देख पड़ती थी। वास्तवमें अनंगमञ्जरीका रूप परम सुन्दर था। उसके अंगोंकी गठन, शरीरका वर्ण, केशोंकी विपुलता, नेत्रोंका विशालत्व—सभी उसके सौन्दर्य्यके परिचायक थे। मञ्जरी आजकल मातृ-पितृ-हीना है। उसके वृद्ध पिताने, धनके लोभमें पड़कर इस कृपण वृद्धके हाथमें अपना कन्या-रत्न अर्पण कर दिया था। अद्वैतने अपने तीसरे पनमें इस सुन्दरीको पत्नी-रूपमें ग्रहण किया था। अद्वैतकी अवस्था लगभग ६५ वर्ष और मञ्जरीकी ११ वर्षकी थी। एकदम आकाश-पातालका अन्तर था। मञ्जरीका स्वभाव सदासे ऐसा नहीं था। वह ग्यारह वर्षकी उम्रमें अद्वैतके पल्ले पड़ी थी। तबसे पाँच वर्षतक तो वह अद्वैत-के आदेशानुसार चलती रही और उसने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था, कि सदा पतिकी आज्ञानुवर्त्तिनी होकर रहूँगी। किन्तु अद्वैतका दुर्व्यवहार सहन करना उसके लिये क्रमशः असह्य

होगया। अनंगमञ्जरी सुन्दरी और युवती थी। अद्वैत उसको भरपेट अन्न खाते देखकर भी नाराज़ होजाते थे। वह उसे अच्छा और बढ़िया कपड़ा नहीं पहनने देते, अच्छी तरह सिरमें तेल नहीं डालने देते, थोड़ेसे ख़र्चका काम बता देनेपर मारने दौड़ते थे। इन सब कारणोंसे स्वामी और स्त्रीमें विवाद होना शुरू होगया। पहले तो मामला कहा-सुनीतक ही रहा; पर अब मारपीट भी होने लगी। इसमें अद्वैतको सदा हार माननी पड़ती थी। एक तो वृद्ध, तिसपर बेतरह मोटे—वह युवतीको अपने वशमें न कर सके। विशेषकर उनके मित्रोंने कह रखा था, कि—"अद्वैत, ख़बरदार! अपनी इस बुढ़ापेकी लकड़ीको मारना-पीटना मत। तुम्हारी स्त्रीपर पड़ौसके बहुतसे लोगोंकी नज़र है। बहुतसे रसिया तुम्हारे जैसे बन्दरके गलेसे इस मुक्ता-मालाको निकाल लेनेकी चेष्टामें हैं। यदि तुम्हारी स्त्री एक बार भी मकानके बाहर निकल आयी, तो ताड़ना मिलनी तो दूर रही, उल्टे बहुतसे नव्य-सभ्य बाबू लोग उसे छातीसे लगानेके लिये तय्यार हो जायेंगे। समझ गये? सावधान!" बन्धुओंके कहे हुए इन उपदेश-वाक्योंने अद्वैतके मांस, मेदा और मज्जातकमें प्रवेशकर लिया है। उस दिनसे, वह बाहर भलेही सात चोरोंका मुक़ाबिला करलें, पर घरमें अपनी प्राण-प्रियाको मारना तो दूर, कभी गालीतक देनेकी हिम्मत नहीं करते। वरन् उस दिनसे उन्होंने उसके खाने-पीनेकी भी कुछ अच्छी व्यवस्था करदी है और थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा स्त्रीके पास रहने देते हैं। अद्वैत-

ने स्त्रीको खुश रखनेके लिये इतना तो कर दिया, तिसपर भी वह हाथसे बाहर हो चली। वह, वशमें आनेकी कौन कहे, अपनी बातके खिलाफ़ बात निकलतेही, ज़रासा मतभेद होतेही, झट झाड़ू हाथमें लेकर सामने आ खड़ी होती है और ठोक-पीटकर अद्वैतको अच्छी तरह दुरुस्त कर देती है। अद्वैतकी विजातीय हृदय-हीनताके कारण मञ्जरीकी श्रद्धा-भक्ति उनपरसे एकदम हट गयी है। वह उनको कटु-वाक्य और सम्मार्जनीका पुरस्कार प्रायः ही प्रदान करती है।

मार खाकर अद्वैत घोष भागे तो ज़रूर, पर फिर शीघ्र ही आकर मकानके दरवाज़ेकी कुण्डी खड़काने लगे! बारम्बार आघात करनेके बाद, अनंगमञ्जरी किवाड़ोंके पास आती दीख पड़ी और किवाड़के झरोखेमेंसे अद्वैतको देखकर बोली,—"फिर आगया जल-मुँहा? यदि इस बार मकानमें पैर रखा, तो तेरी बोटी-बोटी काट डालूँगी। समझा?"

अद्वैत बोले,—"मैं रानाघाट जाऊँगा। यदि खाना हो गया हो, तो लाओ, दो कौर खाताही जाऊँ। दरवाज़ा खोलो। बड़ी भूख लगरही है।"

मञ्जरी बोली,—"खाना खायेगा या चूल्हेकी ख़ाक? क्या मुझे कोई दासी समझ लिया है, जो मैं तेरे लिये खाना-पीना लिये हरदम तय्यार बैठी रहूँगी?"

अद्वैत गिड़गिड़ाकर बोले,—"राम राम! यह कैसी बात है? तुम दासी नहीं, राज-रानी हो। देखो, सारा दिन बीत

गया। कामसे जानेके लिये तय्यार खड़ा हूँ। किवाड़ खोलो, दो कौर मुँहमें देकर अभी चला जाऊँगा। खाना तय्यार है न? लौटते-लौटते रात हो जायेगी, कुछ खिलादो।"

मञ्जरी बोली,—"चाहे जब लौटो, मेरा क्या? तुम्हारा न लौटनाही अच्छा है।"

अद्वैत बोले,—"इसीसे तो कहरहा हूँ, कि सारा दिन भूखों रहना पड़ेगा। अच्छा, अब किवाड़ खोलदो। क्या नहीं खोलोगी? तब मैं जाता हूँ। हे हरि! तुम्हारी इच्छा। अच्छा, तो मेरी चादर ही ला दो। किवाड़ क्यों नहीं खोलतीं?"

मञ्जरी बोली,—"चादर तो मैं लाये देती हूँ, पर किवाड़ अब नहीं खुलेंगे।"

मञ्जरीने चादर लाकर दीवारके ऊपरसे फेंकदी। अद्वैतने कहा,—"अच्छा, मैं रानाघाट जाता हूँ। सावधान रहना। मैं बहुत रात गये लौटूँगा।"

उनकी गुणवती गृहिणीने कहा,—"भाड़में जाओ, मुझसे कहनेकी क्या ज़रूरत है? लौटना, चाहे न लौटना। तुम्हारा लौटनाही मेरे लिये बुरा है। भगवान् करे, तुम कभी न लौटो।"

मञ्जरी उत्तरकी अपेक्षा किये विना ही घरके भीतर चली गयी। अद्वैत कुछ देर चिन्ताकर रानाघाटकी ओर चलदिये।

अद्वैतके चले जानेके प्रायः दो घण्टे बाद फिर किसीने दरवाज़ा थपथपाया! मञ्जरी उस समय घरके भीतर सो रही थी। शब्द सुनतेही वह दौड़कर बाहर आयी और दरवाज़ेके पास आ पहले-

की भाँति झरोखों द्वारा देखने लगी। अबकी बार उसने दरवाज़ा खोल दिया।

साथही 'नमो नारायण' कहतेहुए एक दण्ड-कमण्डलु-धारी केश-श्मश्रु-विहीन योगी भीतर आ पहुँचे। मञ्जरी उन्हें देखतेही बड़ी प्रसन्न हुई और आदरके साथ उन्हें भीतर लाकर घरमें बिछे हुए एक आसनपर बैठाया।

योगी-वेशधारी पुरुषने आसन ग्रहणकर मञ्जरीका कुशल-संवाद पूछा। मञ्जरी आजकी समस्त घटनाएँ सुनाकर बोली,—"प्रभो! मैं क्या उपाय करूँ? नीचके संसर्ग और सह-वाससे मैं भी नितान्त घृणित होती जा रही हूँ। मैं समझती हूँ, कि उसकी अपेक्षा मेराही अपराध अधिक है। पर क्या करूँ, प्रभो? उसकी बातें अब मुझसे तनिक भी नहीं सही जातीं। उसकी भली बातें भी मेरे शरीरमें आग लगा देती हैं। उसको विना अपराध मारकर भी सन्तोष नहीं होता, उसको अनर्थक गालियाँ देकर भी मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो उसका इतनेसे कुछ भी तिरस्कार नहीं हुआ! उसकी सूरत देखतेही मेरे बदनमें आग लग जाती है। वह ज़रासे सूदके लिये ग़रीबोंके पानी पीनेका लोटातक लेआता है। एक पैसेके लिये लाख बार झूठ बोलता है। वह मनुष्यके समय-कुसमयका ख़याल किये विना ही उसका सत्यानाश कर डालता है। पैसा ख़र्च होजानेके भयसे भर-पेट अन्नतक नहीं खाता। जाड़ोंमें गरम कपड़ा नहीं पहनता, पैरोंमें जूता नहीं पहनता, कितनी भी धूप पड़े, पर

उसे छाता ख़रीदकर लगाना पाप मालूम होता है। जब इन सब बातोंपर मेरा ख़याल जाता है, तब मैं उसे बिल्ली-कुत्ते से भी अधम समझती हूँ। उसके संसर्गसे मेरा स्वभाव भी नितान्त मन्द हो गया है। अब मैं क्या करूँ? प्रभो! उसे स्वामी समझना तो दूर रहा, उसके साथ मेरा कभीका परिचय भी है या नहीं, यह बात याद आतेही मन चाहता है, कि फाँसी लगाकर मर जाऊँ। कहिये, प्रभो! ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्त्तव्य है?"

योगीने कहा,—"मञ्जरी! तुमसे मैं पहलेही इस बातको कह चुका हूँ, कि समय उपस्थित होनेपर मैं तुम्हें समुचित उपदेश दूँगा। आज वह समय उपस्थित है। आज मैं तुम्हें कर्त्तव्यका पथ दिखाये देता हूँ।"

दूसरा परिच्छेद।

देवताकी दया।

हरिदासके पुत्र गोपालकी पीड़ा अभी उसी प्रकार चली जाती है। मा-लक्ष्मी समान यत्नसे रोगीकी शुश्रूषा करती हैं। यह ठीक है, कि दो-एक दिनके लिये वे कहीं चली गयी थीं, किन्तु फिर यथासमय आकर रोगीके समीप आसन जमाकर बैठ गयी हैं। उनके यत्नोंमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है, तथापि सत्रह दिन बीत जानेपर भी रोगीके रोगमें उत्तरोत्तर वृद्धि

ही होती जाती है! एक दिन डाकृर साहबने रोगीकी परीक्षा करके कहा,—"आजका दिन बड़ा ख़राब है। कोई भरोसा नहीं है। मैंने इस अवस्थामें मुश्किलसे रोगीको बचते देखा है। जान पड़ता है, कि मेरा इतना परिश्रम, इतना उद्योग, इतना व्यय सभी बेकार गया। आजका दिन भी कट सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है।"

इतना सुनतेही घरभरमें रोनेकी आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। हरिदासकी स्त्री और भगिनी ज़मीनपर गिर, पछाड़ें खा-खाकर, रोने लगीं। पड़ोसभरमें हाहाकार मच गया। बहुतसे आदमी दाऊजीकी मन्नतें करने लगे। हरिदास नीचा मुँह किये, हाथपर सिर रखे आमके पेड़के नीचे जाकर बैठ गया और हृदयसे उन्हीं विपत्ति-भञ्जन श्रीदाऊजीको मनहीमन पुकारने लगा।

जिस समय इधर ऐसा हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित था, उसी समय वहाँपर अद्वैत आता दिखाई दिया। अद्वैत इस समय अकेला नहीं था, उसके साथ अदालतका नाज़िर, दो चपरासी और दो साधारण आदमी भी थे। नाज़िरने आते ही हरिदाससे कहा,—"यह मकान तुम्हें अभी ख़ाली कर देना पड़ेगा। मकान नीलाममें बिक गया है। आज-कल तुम दूसरेके मकानमें रहते हो। अतः जल्द ख़ाली करदो; क्योंकि जिसने इसे ख़रीदा है, वह तुम्हें मुफ़्तमें क्यों रहने देगा?"

कैसा सर्वनाश है! ऐसी विपत्तिके समय यह वज्राघात! हरिदास चित्र-लिखित पुतलेकी भाँति एक दृष्टिसे नाज़िरकी

तरफ़ देखता रह गया। क्रमशः एक-एक करके वहाँ बहुतसे आदमी जुटने लगे। डाक्टर भी आ पहुँचे। उस समय हरिदासने नाज़िरसे कहा,—"महाशय! इस समय मेरे ऊपर बड़ी आपत्ति आ पड़ी है। मेरा पुत्र बहुत बीमार है, डाक्टरने जवाब दे दिया है। अवस्था बड़ी ख़राब है। ऐसी हालतमें आपही बताइये, कि मैं कहाँ उठकर जाऊँ? यद्यपि मैं यह नहीं कहता, कि यह मकान मेरा है, अब मुझे इसे छोड़नाही पड़ेगा, तथापि ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?"

नाज़िर बोला,—"हमें इन बातोंसे कुछ मतलब नहीं, कि तुम कहाँ जाओगे और कैसे जाओगे? हम सरकारी आदमी हैं; क़ानूनके मुताबिक़ काम करनेके लिये हम लाचार हैं। तुम्हें अभी इस मकानको ख़ाली करदेना होगा।"

हरिदास बड़ी आजिज़ीके साथ रोता-रोता बोला,—"ऐसी हालतमें मैं जाऊँगा ही कैसे? मेरे पास कोई दूसरी जगह भी नहीं है, ग़रीबनिवाज़! मेरा लड़का मर रहा है। आप इस वक़ जायँ, मैं बड़ी आफ़तमें हूँ।"

नाज़िर बोला,—"तुम्हारे मकानको नीलाममें ख़रीदकर इस अद्वैत बोसने ख़ास दाख़लेकी अर्ज़ी दी थी, जोकि अदालतसे मञ्ज़ूर होगयी। मैं इसे दख़ल दिलाने आया हूँ। अगर तुम सीधी तरहसे मकान ख़ाली न करोगे, तो मैं तुम्हें ज़बर्दस्ती निकाल दूँगा और मकान-मालिकका उसपर दख़ल करादूँगा।"

हरिदास फिर उन्हीं बातोंको दुहराने लगा और नाज़िरके

पैर पकड़कर रोता हुआ बोला,—"महाशय! मेरा सत्यानाश हो रहा है। मकानको दख़ल कर रहनेकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। अद्वैत आनन्दके साथ मकानपर दख़ल करलें, मेरा सर्वस्व लेलें, मुझे किसी वातमें भी उज्र नहीं है, पर कृपाकर आपलोग मुझे केवल दो दिनके लिये और क्षमा करें। जबतक मेरा बच्चा बीमार पड़ा है, तबतक मुझे यहीं रहने दें। उसके मरतेही मेरी भी समाप्ति होजायगी! उस समय मैं और कुछ भी न कहूँगा। आप दयाकर मुझे दो दिनकी मुहलत और देदें। देखिये, ये डाकृर साहब खड़े हैं। आप इनसे पूछलें, कि मेरे लड़केकी इस समय कैसी हालत है।"

डाकृर बाबूने नाज़िरको रोगीकी नितान्त संकटापन्न अवस्था-का हाल अच्छी तरह समझा दिया और ऐसी भयानक अवस्थामें रोगीको दूसरे स्थानपर लेजाना असंभव है, यह भी अच्छी तरह बतला दिया। इस समय लड़केको स्थानान्तरित करनेसे वह तत्काल मर जायगा, यह आशंका भी प्रकट करदी; और यदि आपको मकानपर,नये मालिकको दख़लही दिलाना है,तो दो रोज़ बाद दिलादेना, यह अनुरोध भी किया।

नाज़िर बोला,—"आपकी बातें सुनकर मैं यह अच्छी तरह समझ गया, कि समयको देखते कुछ दिन इन्तज़ार करनाही मुनासिब है, मगर इस बारेमें मुझसे कुछ कहना एकदम बेकार है। अगर इस बातके लिये अद्वैत घोष राज़ी हो जायँ, तो लीजिये, मैं अभी वापिस चला जाता हूँ। वे कहीं इस

मज़मूनकी दर्ख़ास्त देदें, कि—'नाज़िर आये थे, पर लोगोंके कहने-सुननेसे या घूस लेकर वापिस लौटगये, वल्कि और कुछ काम नहीं किया,' तो मेरी नौकरीपर भी आफ़त आ जायगी। इस लिये विना अद्वैतकी आज्ञाके मैं कुछ भी नहीं कर सकता। आप ये बातें अद्वैत वोपसे कहिये। इसमें मुझे कुछ उज्र नहीं है।"

अद्वैत बोले,—"हे कृष्ण! सब तुम्हारी इच्छाके खेल हैं। भाइयो, यह संसार है। इसमें नित्य सम्पत्ति और विपत्तिसेही सामना करना पड़ता है। सदैव रोग-शोकमें पड़कर क्या अपना काम-काज बन्द कर देनेसे कुछ होता है? हरिदासका पुत्र बीमार है, तो भगवान्‌की जो इच्छा होगी, वह होगा, उसमें मैं या आपलोग क्या करसकेंगे? मैं जो इतनी दूर—रानाघाट जाकर नाज़िरको लाया, सो क्या ख़ाली हाथ वापिस लौट जानेके लिये? नाज़िर साहब! आप अपना काम कीजिये। लोगोंकी बात सुननेसे कुछ काम न होगा।"

नाज़िर बोला,—"देखिये डाक्टर साहब! मेरा इसमें कोई दोष नहीं है?"

डाक्टरने कहा,—"अद्वैत भैया! तुम प्रवीण और विवेचक व्यक्ति हो, विशेष कर तुम्हारी भगवान्‌में अटल भक्ति है। ऐसे असमयमें यदि तुम दया न करोगे, तो और कौन करेगा?"

अद्वैतने कहा,—"दया किसे कहते हैं, भैया? यदि दया-धर्म्मकी तरफ़ही ख़याल किया जाय, तो सांसारिक कार्य्य एकदम रसातलको चले जायँ। सांसारिक कार्य्योंमें दया-धर्म्म

करनेसे काम नहीं चलता। फिर मैं तो ग़रीब हूँ, दया करना क्या मुझ जैसे ग़रीबोंका काम है?"

डाक्टरने कहा,—"ऐसी बातें मत करो। भगत्‌जी! तुम दया न करोगे तो और कौन करेगा? हरिदास तुम्हारी दयासेही इस विपत्तिसे बच सकता है। हम सबलोग तुमसे अनुरोध करते हैं, कि इस विषयमें तुम्हें फ़िलहाल अवश्य शान्त होना पड़ेगा।"

अद्वैत बोले,—"कैसी विलक्षण बात है! मैंने तो रुपया ख़र्च करके मकान ख़रीदा, दख़ल करनेके लिये रानाघाटसे चपरासी और नाज़िर साहबको लाया, अब गाँव-भरके आदमी अनुरोध करते हैं, कि तुम्हें शान्त रहना पड़ेगा। जब हरिदासने रुपया लिया था, जब तक़ाज़ा करते-करते मेरे पैरोंमें छाले पड़ गये थे, नालिश करनेके लिये रातदिन रानाघाट दौड़ना पड़ता था, रुपयेपर रुपया ख़र्च करते-करते मेरा दीवाला निकलनेपर आ गया था, उस समय आपलोग कहाँ थे? उस समय तो किसीने मेरी ओरसे हरिदाससे रुपया चुकादेनेके लिये अनुरोध नहीं किया! उस समय आपलोगोंने इस ग़रीबका रुपया दिलवानेकी कोशिश की थी? आज सबके सब परम धार्म्मिक, दयाके सागर और कृपाकी मूर्त्ति बने हुए मुझे शान्त रहनेका अनुरोध कर रहे हैं! नहीं भैया, आप लोग इस बारेमें मुझसे कुछभी न कहें। मैं व्यापारके मामलेमें किसीका अनुरोध नहीं मान सकता। नाज़िर साहब! आप अपना काम कीजिये।"

नाज़िर,—"अब आपलोग मुझे दोषी न ठहरायेंगे। चपरासी! घरमेंसे इनका असबाब निकालदो।"

यह सुन गाँवके एक और वृद्ध आदमीने अद्वैतका हाथ पकड़ लिया और बोला,—"ऐसा काम मत करो, भैया! इससे तुम्हारे हक़में अच्छा न होगा। तुम मेरी बात सुनो, नाज़िर और चपरासियोंके लानेमें तुम्हारा जो ख़र्च पड़ा हो, उसे हम चुकाये देते हैं, तुम इस कामसे बाज़ आओ।"

अद्वैत बोला,—"कैसे मज़ेकी बात है? आज तुम्हारी बातोंसे बाज़ आऊँ, कल दूसरेकी बातोंसे शान्त होऊँ। इस तरह तो मुझे घर-मकान कुछ भी न मिले। महाशय! मैं अब किसीकी बात नहीं सुनना चाहता। नाज़िर साहब! ये बातें तो शुरूसे अख़ीरतक चलती ही रहेंगी। आप जिस कामके लिये आये हैं, उसे जल्दी-जल्दी समाप्त कर डालिये।"

नाज़िर चपरासीको लक्ष्य करके बोला,—"अरे, तू खड़ा-खड़ा किसका मुँह ताक रहा है? जल्दीसे काम ख़तम कर न?"

सर्वनाशको सामने खड़ा देख, समस्त उपस्थित व्यक्ति नीचा मुँह किये चिन्ता करने लगे। चपरासी हरिदासके आँगनमें घुस गया। डाक्टर साहब रोगीको धर-पकड़कर किसी पड़ौसीके मकानमें ले चलनेकी सलाह देने लगे। चारों तरफ़से भीषण क्रन्दन-ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

इसी समय, पासवाले मकानकी बग़लसे निकलकर एक भद्रवेशधारी वृद्ध पुरुष उस स्थानपर आये। वृद्धकी छातीतक

लटकती हुई सफ़ेद दाढ़ी, सिरपर श्वेत केशराशि और वर्ण गौर था। वे दुर्बल या कमज़ोर नहीं थे। युवाओंकी भाँति उनका शरीर समुन्नत, गति क्षिप्र, दन्त-पंक्ति शोभामय, नयन ज्योतिष्मान् और अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुगठित थे।

उस अपरिचित वृद्धको देखकर सभी लोग एकदम विस्मित हो गये। वृद्ध उसी भीड़के बीचमें आकर आदेश-व्यञ्जक और प्रभुता-पूर्ण स्वरसे कहने लगे,—"यह कौन व्यक्ति हरिदासके घरमें घुस रहा है? तुम कौन हो? मैं मना करता हूँ, कि वहाँ कोई न जाय। ख़बरदार! उल्टे पाँव लौट आओ। यदि भला चाहते हो, तो अभी, योंही, विना आना-कानीके पीछे लौटो।"

चपरासीने एक शब्द भी कहनेका साहस नहीं किया। वह चुपचाप लौट आया और भीत भावसे उस वृद्ध व्यक्तिकी तरफ़ देखने लगा। नाज़िर भी चपरासीको फिर किसी प्रकारका हुक्म न देसका। वह थोड़ी देर कुछ सोचकर बोला,—"आप कौन हैं? मैंने तो कभी आपको नहीं देखा। ख़ैर, महाशय, आप चाहे जो हो, पर यह सरकारी काम है, सरकारी काममें बाधा डालनेका आपको कोई अधिकार नहीं है।"

वृद्ध बोला,—"सरकारी कामके नामपर कलंक मत लगाओ। तुम मूर्ख हो, नितान्त हृदय-हीन हो। इसीसे विना समय-कुसमय-का ख़याल कियेही ज्ञानसे शून्यहो, इस तरह सरकारी काम-को बदनाम करने आये हो! ऐसे कुसमयमें आँखोंसे बिना दी

आँसू गिराये जो शख़्स सरकारी काम करनेके बहाने लोगोंका सर्व-नाश कर सकता है, वह पिशाच,डाकुओंकी अपेक्षा भी अधम है। तुम जैसे नर-पिशाच कर्मचारियोंके अत्याचारोंसे ही राजाके ऊपर प्रजाकी अश्रद्धा हो जाती है, राजाके नामपर कलङ्क लगता है। अरे पापी! ऐसा कौनसा राजा है, जो अपनी प्रजाके ऐसे सङ्कट-समयमें उसपर इस तरह अत्याचार करनेकी आज्ञा देगा? मैं तुमसे फिर कहता हूँ, कि बिना तनिकसी देर किये अपने दल-बलके साथ यहाँसे चले जाओ। सरकारी काम पूरा करना है, तो और कभी आकर पूरा करलेना।"

नाज़िर बोला,—"मुझे इसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है। परन्तु करूँ क्या? मकानका ख़रीदार बिना इसी वक्त दख़ल लिये मानता ही नहीं।"

वृद्ध, अद्वैतकी तरफ़ फिरकर बोले,—"क्यों रे अद्वैत घोष! दो दिन सब्र करलेनेसे क्या तेरे कृष्णनाममें कलङ्क लग जायगा? जा भाग, पाखण्डी! आज इस मकानपर तेरा किसी तरह दख़ल न हो सकेगा।"

वृद्धकी भाव-भंगी, उनके वाक्योंका तेज और निर्भीकता इत्यादिकी मनही-मन आलोचना कर अद्वैत महाभीत हुए। किन्तु डरजानेसे सांसारिक काम नहीं चलते, इस सुनीतिका स्मरण कर कहने लगे,—"आप चाहे जो हों, महाशय,! पर आपकी बातें सरासर अन्याय-पूर्ण हैं। मैंने रुपया बर्बाद किया, मुक़द्दमा लड़ा, मकान ख़रीदा; पर मकानपर दख़ल न कर

सकूँगा ? मेरे रुपयोंको क्या आपने मट्टी-कंकड़ समझ रखा है ? यह आपकी कैसी व्यवस्था है ?"

वृद्ध बोले,—"यह ठीक है। अच्छा, तो तुम रुपया लोगे ? कितने रुपयेमें तुमने मकान ख़रीदा है ? तुम्हारा कितना पावना है ?"

इतना कह वृद्धने, अपनी जेबसे बहुतसे नोट निकालकर कहा,—"बोलो, सब मिलाकर तुम्हारा कितना रुपया चाहिये ?"

अद्वैत बोला,—"मैंने चौबीस रुपयेमें तो मकान ख़रीदा है और उसके ख़रीदनेमें ख़र्च हुए हैं, चार रुपये। इसके सिवा, अड़तीस रुपये क़र्ज़के बाक़ी हैं।"

वृद्ध जेबसे एक स्टाम्पका काग़ज़ निकालकर बोले,—"अच्छा, तुम अपना सब रुपया समझ-बूझकर लेलो और स्टाम्पके काग़ज़पर तुम्हारी तरफ़से जो कबाला लिखा है, उसपर दस्तख़त करके ख़ुश-कबाले द्वारा हरिदासके हाथ यह मकान बेच दो। हाँ, भाई ! ज़रा दावात-क़लम तो लाना।"

एक आदमी दावात-क़लम लेने गया। उपस्थित मनुष्य इस अपरिचित वृद्धका व्यवहार देखकर अवाक् होगये। अद्वैत बोले,—"तो-तो महाशय ! मैंने इस मकानको रुपया ख़र्च करके ख़रीदा था, क्या इसे बेचनेके ही लिये ?"

वृद्ध बोले,—"देखो, अद्वैत ! यदि तुम दश-पाँच रुपये अधिक लेना चाहो, तो भलेही ले सकते हो, मैं वह भी देनेको तय्यार हूँ, पर तुम्हें इस खुश-कबालेपर दस्तख़त करके मकान अवश्य बेच देना पड़ेगा।"



. परोपकारी वृद्ध ।

"अच्छा, तुम अपना सब रुपया लेलो और हरिदासको यह मकान बेच दो ।"

Burman Press, Calcuta.

[पृष्ठ—२६६]

अद्वैतने सोचा,—"यह मौक़ा तो बड़ा अच्छा हाथ लगा। ज़रासा रूपक दिखलानेसे ही अधिक लाभ होनेकी संभावना है।" अतएव बोले,—"महाशय, मैं इस मकानको किसी तरह नहीं बेंच सकता। मुझे इसकी सख़्त ज़रूरत है।—"

वृद्ध क्रोधके मारे काँपने लगे। उनका मुँह लाल हो गया। यह देखकर सब मनुष्य डरगये। वृद्धने क्रोध-कम्पित स्वरसे कहा,—"क्या कहा? तू इस मकानको किसी तरह नहीं बेंच सकता? तू इस खुश-कबालेपर दस्तख़त नहीं करेगा? तू तो बच्चा एक तरफ़ रहा, यदि तेरे चौदह पुरखे भी उतर आयें, तोभी मैं तुझसे इस मकानको विकवाये विना न रहूँगा।"

यह कह कर वृद्धने पासवाले आमके पेड़की एक डाल तोड़ ली और डपटकर कहा,—"पापी, दुष्ट! तुझ जैसे पाखण्डीको मारनाही उचित है। आज मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा। इसी डालकी मारसे तुझे अधमरा करदूँगा।" इतना कह वृद्ध व्याघ्रकी भाँति अद्वैतके ऊपर टूटपड़े। अद्वैत काँपता-काँपता ज़मीनपर गिर पड़ा। वृद्ध उसकी छातीपर पैर रखकर बोले,—"अब देखूँ, कौन तुझे बचाता है? तू महा पापी है। तेरा वध करनाही उचित है।"

वृद्धने उनकी छातीपर रखे हुए पैरपर ज़ोर देकर अद्वैतको बेतरह दबा दिया। अद्वैत,—"अरे मार डाला रे,—बापरे" आदि कहकर चिल्ला पड़े। वृद्धने फिर कहा,—"अब भी मेरी बात मान ले। रुपया लेकर दस आदमियोंके सामने इस खुश-कबालेपर सही लिख दे।"

अद्वैत गिड़गिड़ाकर बोले,—"अच्छा, तो लिखता हूँ। आप मुझे छोड़दें।"

वृद्धने पैर हटा लिया। डरते-डरते नाज़िरने कहा,—"महोदय! यदि आज्ञा हो, तो हम लोग चले जायँ?"

वृद्धके सम्मति-सूचक सिर हिला देनेपर नाज़िर और चपरासी लोग दुम दबाकर सीधे चले गये। उन लोगोंको पीछे फिरकर देखनेतकका भी साहस न हुआ। अद्वैत देहकी धूल झाड़ते हुए बोले,—"महाशय! यदि आप बीस रुपये अधिक दें, तो मुझे सब तरहसे सुविधा होजाय, और मैं क्या कहूँ? आप इस ग़रीबपर रहम करें।"

वृद्धने कहा,—"यह हो सकता है, पर ख़िलाफ़ बात मुँहसे निकालतेही मैं तुझे सीधा यमलोक पहुँचा दूँगा।"

इतना कह वृद्ध डाक्टरकी ओर देखकर बोले,—"आपही न यहाँके डाक्टर हैं? आप इन रुपयोंको लेकर इस नराधमका झंझट मिटा दें। बीस रुपये अधिक देकर क़ाग़ज़पर दस्तख़त करालें और तीन जनोंकी गवाही भी करालें। इसके बाद अद्वैतका जो बाक़ी रुपया निकले, उसे चुकाकर एक रसीद लिखवालें। नोटोंके बीचमें रसीदी टिकिट भी है। इन सबमें रुपया ख़र्चकर देनेपर भी कुछ रुपया बच रहेगा, उसे आप हरिदासके लड़केकी चिकित्साके लिये अपने पास रखें। आज रोगीकी अवस्था कैसी है?"

डाक्टरने कहा,—"बड़ी ख़राब है।"

वृद्ध बोले,—"हरिदास! तुमने समस्त औषधियोंकी सार वस्तु भी अपने लड़केको दी है या नहीं? अब तुम भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीदाऊजीका चरणामृत अपने लड़केको पिलाओ, उसके सर्वाङ्ग-में मलो, वह अवश्य नीरोग हो जायगा। जानते हो, प्रभुकी महमाका पार पाना बहुत कठिन है? डाक्टर साहब, आप इन पड़ोसी महाशयके वैठकेमें वैठकर इस पाखण्डीका पाप काटदें।"

हरिदास हाथ जोड़कर बोला,—"जब आपने अपने दर्शनोंसे कृतार्थ किया है, तब मेरा लड़का अवश्य बच जायगा। किन्तु दयामय! अपना परिचय देकर हम मूर्खोंकी उत्सुकता तो निवृत्त कीजिये। आप कौन हैं?"

वृद्धने कहा,—"फिर देखी जायगी। पहले तुम श्रीदाऊजीका चरणामृत लाकर अपने लड़केको पिलाओ।"

हरिदास वृद्धकी आज्ञा पालन करनेके लिये चलदिया एवं शीघ्रही लौट आकर देखा, कि तेजस्वी वृद्धका कहीं पता नहीं है। वे कौन थे? कहाँ चले गये?

उस दिन सायंकालके समय, अपरिचित वृद्धसे हरिदासका रुपया चुकता कर अद्वैत मकानपर आये। अनंगमञ्जरीने उनसे मुँह खोलकर भी बोलना ठीक न समझा, झगड़ा-टण्टा करना तो एक तरफ़। अद्वैत स्नान-भोजनादिके बाद, बाज़ारमें जिन लोगोंके पास उन्हें नित्य-प्रति तक़ाज़ा करने जाना पड़ता था, उनके सन्धानमें निकल गये। उनके साथ झगड़ाकर, हिसाबमें भुच्ची बता, कलके दिन पाया हुआ रुपया आज

अस्वीकार कर और दूकानदारोंपर पावने रुपयोंका सूद-दर-सूद निकाल, बदलेमें गली-सड़ी काली मिर्चें और पान लेकर सन्ध्याके बाद फिर मकानपर लौटे। दूकानदार ऐसे शुहदे थे, कि बाज़-बाज़ तो अद्वैत घोषको मुँहपर गाली देनेसे भी नहीं चूकते थे। अद्वैतके मकान लौटनेपर उनकी स्त्रीने इसबार भी किसी तरहका लड़ाई-झगड़ा नहीं किया। अद्वैत घरमें पैर रखतेही बोले,—"देखो जी, आज मैं बाज़ारसे बहुतसी चीज़ें लाया हूँ, तुम उन्हें समझ-बूझकर सावधानीके साथ रखदो।"

मञ्जरीने कुछ नहीं कहा, यहाँतक कि, उनकी तरफ़ नज़र फेरकर भी नहीं देखा। अद्वैत बोले,—"ये सब चीज़ें क्या यहीं पड़ी-पड़ी चूहोंके पेटमें जायेंगी! यह तो सोचा नहीं, कि मैं इन्हें कितने कष्टोंसे इकट्ठा करके लाया हूँ?"

मञ्जरी हँसकर बोली,—"वाहरे कष्ट! बड़े कष्टसे लाये हो! यों नहीं कहते, कि लोगोंसे लड़-झगड़कर लाया हूँ? क्यों? बड़े पक्के आदमी हो न? कुत्ते-बिल्लियोंकी तरह ललकारें खाते हो, तब भी नहीं हिलते? हज़ारों गालियाँ खाते हो, पर बिना एक दमड़ी लिये दूकानदारका पीछा नहीं छोड़ते। कोई तुम्हारी सूरत देखतेही अपना मुँह फेर लेता है, कोई तुम्हारे मरनेकी कामना करता है, कोई तुम्हारे पल्लेसे बचनेके लिये मा-कालीका प्रसाद चाँटनेकी प्रतिज्ञा करता है। किसीकी तुम ज़बर्दस्ती चीज़ ले भागते हो—इत्यादि बहुतसे कष्ट तुम्हें नित्य-प्रति उठाने पड़ते हैं। पर ये कष्ट औरोंके लिये भलेही कष्टकी कोटिमें गिने

जा सकें, पर तुम्हारे लिये तो नित्यके खेल हैं। तुम्हारा तो व्यवसायही यही है! फिर तुम आज उन्हें कष्टोंके नामसे क्यों पुकारते हो?"

अद्वैत हँसते हुए बोले,—"तुम्हारा यह कहना अक्षरशः सत्य है। पर किया क्या जाय? सांसारिक जीव होनेके कारण बिना ऐसा किये कामही नहीं चलता। पर आज नित्यके कामोंमें ज़रा अधिक तरक्की देदी गयी थी। ये सामने जो सुपारियाँ रखी हैं, वे ख़राब नहीं हैं, अच्छी हैं, साफ़ हैं। इन्हें मैं हरनामकी दूकानसे लाया हूँ। बहुत दिन हुए, हरनामने मुझसे कुछ रुपया उधार लिया था। वह रुपया मय सूदके बहुत दिन बीते, तभी वसूल हो चुका था। पर रुपया चुकता करते समय मैं सूदमेंसे, कुछ पैसे, रोज़ उसकी दूकानपर आने-जानेका सम्बन्ध बनाये रखनेके लिये छोड़ आया था। उसी बहाने मैं उसके यहाँसे रोज़ ही कुछ न कुछ अवश्य ले आता हूँ। यद्यपि वह अपने पैसे लेजानेके लिये बार-बार कहता है और चाहता है, कि किसी तरह इस बूढ़ेकी सूरत फिर देखनेके लिये न नसीब हो; पर मैं उतने पैसोंकी नित्य एक न एक चीज़ लेआता हूँ और कह देता हूँ, कि तुमपर अभी सूदके पैसे बाक़ी ही हैं, यह चीज़ मैं उन पैसोंके सूदमें लिये जाता हूँ। मञ्जरी, सच पूछो तो वह छोरा महा बेवकूफ़ है। रोज़ मुझे मारनेके लिये तराजूकी डण्डी उठाता है और सरेआम हज़ारों गालियाँ देता है; पर बन्दा उसका सात जन्मभी पीछा न

छोड़ेगा। आज जिस वक्त मैंने उसकी सुपारियोंकी टोपलीमें हाथ डालकर कहा,—"भैय्या, ये दो सुपारियाँ मैं सूदके दरसूदमें लिये जाता हूँ, तो बेटा एकदम चिढ़ उठा और मेरी खोपड़ीमें एक चपत जमा धक्का देने लगा। मैं उसकी उँगलीका स्पर्श होतेही ज़मीनपर लोटगया और 'मरारे बाप!' कहकर चिल्लाने लगा। उसे सुन बाज़ार भरके आदमी इकट्ठे हो गये। बाज़ारके जितने दूकानदार थे, उन्होंने तो हरनामकी इस कारवाईकी सैकड़ों मुखसे प्रशंसा की, पर रास्तेके चलने वाले लोग क्रोधसे हरनामसे कहने लगे,—'अबे, अपने बापकी उम्रके बराबर आदमीको मारते हुए तुझे शर्म नहीं लगती?' ख़ैर, बहुतसे तर्क-वितर्कके बाद हरनामही दोषी ठहरा। अब क्या था? अब तो हरनामके सिरपर शर्मके टोकरोंपर टोकरे पड़ने लगे एवं बहुतसे आदमियोंके अनुरोधसे उसने एक मुट्ठी सुपारी देकर मुझे विदा कर दिया। सुपारियाँ अच्छी हैं। सम्हाल रखदो। छै महीने इन्हीं सुपारियोंसे काटने पड़ेंगे।"

मञ्जरीने कहा,—"छः मासही क्यों, इन सुपारियोंसे तुम छः सालका काम चलाओ, मेरा उसमें क्या नुक़सान है? अगर तुम मेरे कोई सम्बन्धी होते, तो तुम्हारी इन बातोंको सुनकर मेरे हृदयमें बेतरह दुःख होता। पर अब मेरा और तुम्हारा तो किसी प्रकारका सम्बन्धही नहीं। तुम डाका ही क्यों न डोलो, उसमें मेरा क्या जाता है?"

अद्वैत बोला,—"यह कैसी बात में?"

मञ्जरी बोली,—"बात नयी नहीं है। मैं तो छः सालसे तुम्हें ग़ैर समझ रही हूँ और अब तो तुम एकदम मेरे कोई नहीं हो। जब कभी दिलमें सोचने लगती हूँ, कि तुम कौन हो? मैं तुम्हारे घर किस लिये आयी? तो मेरा शरीर एकदम काँप उठता है।"

अद्वैत बोले,—"यह क्या मञ्जरी? तुम मुझे ग़ैर क्यों समझती हो? मेरा तो तुम्हारे साथ विवाह हुआ है, तुम मेरी स्त्री हो, मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मुझसे बढ़कर और कौन अपना आदमी होगा?"

मञ्जरी,—"तुम्हारे साथ मेरा विवाह अवश्य हुआ था, पर उस विवाहको मैं किस दर्जेका मानती हूँ; यह मैं ठीक तौर-से नहीं बता सकती। तुमही बताओ, अगर किसी मनुष्यकी लड़कीका विवाह नर-घाती भालूके साथ होजाय, तो वह कन्या उस भालूको कहाँतक अपना आदमी समझ सकती है? तुम्हारे शरीरपर मनुष्यका चमड़ा है, चेहरा भी मनुष्य जैसाही है और यह मैं अस्वीकृत नहीं कर सकती, कि तुम्हारे साथ मेरी शादी हुई। पर मुझसे यह कभी न हो सकेगा, कि मैं किसी शेर-चीतेको अपना स्वामी समझने लगूँ।"

अद्वैतने कहा,—"मञ्जरी! स्त्रियोंको ऐसी बात अपने पतिके लिये कभी अपने मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये।"

मञ्जरी बोली,—"मुँहसे निकालनी ही नहीं, वरन् मनमें सोचनी भी नहीं चाहिये। इन सब धार्मिक कर्त्तव्योंको मैं

समझती हूँ। पर तुमको अपना स्वामी समझना मेरे लिये असंभव है। अगर मैं तुम्हें अपना स्वामी समझूँ, तो पतित हो जाना पड़ेगा। यह एक पाप है, पतिपर अश्रद्धा करना महा अपराध है; पर मैं इस पापका, इस अपराधका, प्रायश्चित्त करनेके लिये पूरी तरहसे तैयार हूँ।"

अद्वैत बोले,—"मञ्जरी, तुम्हारे मनमें ऐसी बातें क्यों पैदा होती हैं? क्या इसीलिये तुम मुझे अपना पति समझनेमें लज्जित होती हो, कि मैं वृद्ध हूँ, कुत्सित हूँ?"

मञ्जरी बोली,—"राधाकृष्ण! यदि तुम गलित कुष्ठके रोगी भी होते, तोभी मैं तुम्हारे चरणोंको अपनी जिह्वासे चाटती। यदि तुम काने, कूबड़े, काले, हब्शी आदि सभी क्यों न होते, तोभी मैं तुम्हारी चरण-सेवा करके सुखी होती। लेकिन तुम मेरी बद-क़िस्मतीसे मनुष्य नहीं, वरन् मनुष्यकी खाल ओढ़े हुए शेर हो, नर-हन्ता बाघ हो। इन जीवोंको देखकर जिस प्रकार मनुष्य उन्हें मारनेका उपाय करता है, उसी प्रकार मेरा भी तुमसे शत्रुता करनेको जी चाहता है। इस लिये मैं तुम्हें अपना स्वामी कहकर अपनी जिह्वाको कलंकित नहीं करना चाहती।"

अद्वैत बोले,—"मैं इस बातको अभीतक नहीं समझ सका, कि तुम मुझे ऐसा क्यों समझती हो? मैंने तुम्हारा क्या नुक़सान किया है? अगर किया है, तो अब आगेको कभी न करूँगा।"

मञ्जरीने कहा,—"मैं तुम्हें ऐसा क्यों समझती हूँ, इस बात-को तो मैं तुम्हें सैंकड़ों दफ़े बता चुकी हूँ। तुम्हें अपना

स्वामी बनाने या समझनेके लिये मैंने अनेक बार यत्न किया; पर कुछ फल नहीं हुआ। और कुछ फल न होनेकी आशासे ही मैंने तुमसे अपना सम्बन्ध छोड़ दिया। तुमने जितना मेरा नुक़सान किया है, वह अधिक होनेपर भी मैं उसे तुच्छ समझती हूँ। केवल मेरा नुक़सान करकेही तुम यदि मनुष्य बन जाते, शेर-चीतोंकी भाँति प्राणि-हिंसा न करते, तो मैं तुम्हें देवता समझकर तुम्हारी पूजा करती।"

अद्वैत बोले,—"ऐसे मैंने किस आदमीके खेतके पके धान काट लिये? किस आदमीकी दौलत लूट लाया? सांसारिक व्यवसायको चलानेके लिये, जिन कामोंको बिना किये कामही नहीं सरता और जिन्हें प्रायः दुनियाके सभी लोग करते हैं, उन्हें मैं भी करता हूँ। इससे मैं शेर-चीता किस तरह होगया, यह कुछ भी समझमें नहीं आता!"

मञ्जरीने कहा,—"तुम्हारी किन-किन करतूतोंको बताऊँ? कौन-कौनसे अत्याचारोंकी बातें कहूँ? आजकी ही बातको ले लो। आज तुमने श्रीदाऊजीके गाँवमें जैसा व्यवहार किया है, वह मनुष्योंके जैसा व्यवहार कभी नहीं कहा जा सकता। अभी-अभी तुम हरनामके साथ जैसी करतूत कर आये हो, वह भी मनुष्यके योग्य नहीं। मुझे तुम्हारे यहाँ आये दस वर्ष हुए तुम नित्य ऐसेही काम किया करते हो। सब एकसे एक चमत्कारिक होते हैं। उनका स्मरण करनेपर ऐसा मालूम होता है, कि शेर-चीते भी तुम्हारे जैसे भयानक जीव नहीं। तुमने

जाली स्टाम्प बनाकर चटर्जीके बड़े बाबाका सर्वनाश कर उन्हें पथका भिखारी बना दिया। ओफ़! ब्राह्मण कन्या आजकल अपने बच्चोंको गोदमें लिये भीख माँगकर पेट भरती है। तुमने झूठा मुक़द्दमा चलाकर बड़े बाज़ारके रायसाहबका सारा धन लूट लिया। वे आजकल पान बेचकर अपना गुज़ारा करते हैं। तुमने रामलालके घरभरका सत्यानाश करडाला, वे तुम्हारे नाम-मात्रके क़र्ज़दार थे। तुम उन्हें, उनके घर जाकर, नित्य मकान नीलाम करा लेनेकी धमकी दिया करते थे। यद्यपि वे नित्य तुम्हारे पाँव पकड़कर विनय-प्रार्थना किया करते थे, तथापि तुमने उनका भी ख़ूब सत्यानाश किया। रुपयोंका भय दिखाकर तुमने कई सतियोंका सतीत्व-नाश किया। अतएव निःसंकोच होकर कहना पड़ता है, कि तुम नराधम, पिशाच हो। ऐसी अवस्थामें एक मैं ही क्या, तुम्हें अपना कही कौन सकता है? यदि कह सकते हैं, तो वेही कह सकते हैं, जो तुम्हारे जैसे नर-पिशाच हों। परन्तु मैं तो तुमसे हृदयसे घृणा करती हूँ। न मालूम, मेरे कौनसे पापका उदय होगया, जो तुम्हारे पल्ले पड़ गयी। मैं अपने भाग्यको सैकड़ों बार धिक्कारती हूँ।"

अद्वैतने बहुत देरतक मुँह नीचा किये सोच-विचार किया। इसके बाद बोले,—"मञ्जरी, संसारिक कार्योंका जिस तरह निर्वाह करना चाहिये, मैंने उसी प्रकार किया है। उसके द्वारा मैं शेर-चीता कैसे बनगया, यह अभीतक समझमें न आसका। तुम रूपसी हो, युवती हो; इसीसे मुझ जैसे कुत्सित वृद्धसे

घृणा करती हो। असल बात क्यों नहीं कहतीं ? बातको बदल-कर उसे नया रूप क्यों देती हो ? तुम्हारा भाग्य अवश्य ख़राब है,—नहीं तो इतनी रूपसी होकर एक वृद्धकी स्त्री क्यों होतीं ? सारांश यह, कि यह बूढ़ा तुम्हें अब अच्छा नहीं लगता, किसी रसिक विहारीसे मन लग गया है। मैं तो इन बातोंको बहुत दिनोंसे ताड़ रहा हूँ और मुझे इस बातका अच्छी तरह विश्वास है, कि तुम एक दिन मेरे इस उज्ज्वल कुलको अवश्य कलंकित करोगी। ख़ैर,जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो। नाहक़ ही बेकार बातें कहके मुझे दोषी मत बनाओ। बस माफ़ करो।"

मञ्जरी थोड़ा हँसकर बोली,—"तुम जैसे आदमियोंको ऐसा ही समझना चाहिये। तुम्हारी इन दलीलोंको सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य्य नहीं होता। तुम विश्वास करो या न करो, इस संसारमें मैं किसीको भी प्रेमकी दृष्टिसे नहीं देखती। जिस लिये स्त्रियाँ पुरुषके प्रति आसक्त हो जाती हैं, उस प्रवृत्तिका मैं बहुत दिन हुए,कि दमन कर चुकी। संसार-में बड़ी उम्रके जितने भी आदमी हैं, वे सब मेरे पिता हैं और जितने छोटे पुरुष हैं, वे सब पुत्र हैं। तुम उनसे भिन्न हो,—नीच, अधम और पशु हो। यदि तुम मुझे कुलटा कहकर सम्बोधन करना चाहते हो, तो इसका तुम्हें सोलहो आना अधिकार है, कि चाहे जो समझो। मैं तुम्हारे अनुग्रह या निग्रहकी प्रत्याशिनी नहीं हूँ। इसलिये तुम्हारे भला-बुरा कह देनेसे मेरा कुछ नहीं बनता-बिगड़ता।"

अद्वैत बोले,—"अब मैं यह बात अच्छी तरहसे समझ गया, कि तुममें यथेष्ट धर्म-निष्ठा है। तो अब क्या करनेका विचार है?"

मञ्जरी बोली,—"क्या करूँगी, क्या न करूँगी, यह मैं तुहें अभी नहीं बता सकती। लेकिन एक काम निस्सन्देह करूँगी। तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ था,—मैं तुम्हारी सहधर्म्मिणी हूँ। विधि-विधान के अनुसार चेष्टा करके भी जब मैं तुम्हें श्रेष्ठ पथपर न लासकी, तब अन्यान्य सदुपायोंका अवलम्बन कर, तुम्हारे किये समस्त अनिष्टोंका निवारण कर, तुम्हारी प्रकृत सहधर्म्मिणीका कार्य्य करूँगी। जिससे तुम्हारा परकाल सुधरे, उसकी चेष्टा करूँगी। तुमने लोभमें पड़कर जिन-जिन लोगोंका नाश किया है, मैं साध्यानुसार चेष्टा द्वारा उन सबका उपकार करूँगी। उनकी अवस्था जिस प्रकार पूर्वमें थी, उसी प्रकार कर देनेका उपाय करूँगी। यही मेरा एकमात्र संकल्प है। दूसरा संकल्प यह है, कि संसारमें मैं एकही महापुरुषको प्यार करूँगी। उसके सिवा मरण-पर्य्यन्त और किसीको प्यार न करूँगी। मेरे प्राण, प्रेमदानका विनिमय किये विना, किसी तरह नहीं रह सकते।"

अद्वैत बोले,—"यह तो मैं अच्छी तरह समझ गया। असल बात तो यही है! अबतक तुमने इस बातको छिपा किसलिये रखा था? हाँ—वह कौनसा प्रेमिक है? कौनसा रसिक नागर है?"

मञ्जरी बोली,—"तुम नीच आदमी, सामान्य व्यक्ति हो। मूर्ख ! उनका नाम जाननेकी तुम्हें अवश्यकता ही क्या ? तथापि मैं उनका नाम बताये देती हूँ। मेरे वे प्राणके नाथ, भगवान् हैं। यदि होसका, तो मैं भगवान्‌को आत्म-समर्पण करूँगी। उन्हींके श्रीचरणोंमें मैं यह जीवन और यौवन न्यौछावर करूँगी। वहाँ प्रेमका अभाव नहीं है, दयाकी सीमा नहीं है, सुखकी समाप्ति नहीं है और आनन्दका पार नहीं है। मैं उन्हींके चरणोंसे प्रेम करूँगी एवं उन्हींके चरणोंसे प्रेम लूँगी।"

अद्वैत एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए बोले,—"मैं समझ गया, कि किसी पाखण्डी संन्यासीने तुम्हें बहँकाकर मेरी गृहस्थी चौपट करनेका बाँधनू बाँधा है। तुम्हारी बातें तो कुछ ऐसेही ढङ्गकी हैं। बोलो, किसने इस तरह तुम्हारा सिर फेर दिया ?"

मञ्जरीने कहा,—"तुम मूर्ख हो। मैं तुमसे क्या कहूँ ?"

अद्वैतने कहा,—"मैं मूर्ख भलेही होऊँ, पर इसमें सन्देह नहीं, कि यह सब किसी वैरागी बाबाकी माया है। किसी ससुरेने अवश्यही तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर डाला है। वह आपही भगवान् बन बैठा है और तुम्हें भगवान्‌की प्रीति करनेकी बात सिखा गया है।"

मञ्जरीने कहा,—"जाकी रही भावना। हरि-मूरति देखी तिन तैसी॥' तुम जिस तरह तिलक-छापा लगा, तुलसीकी माला खटखटाया करते और छिपे-छिपे सब तरहके पाप करते

हो, वैसाही सबको समझते हो। तुम्हारे जो जीमें आये, कहो। मेरा उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मुझे कहना तो नहीं चाहिये था, तोभी मैंने तुमसे साफ़-साफ़ कह दिया।"

यह कह मञ्जरी जाने लगी। यह देख अद्वैतने उसके पास जाकर कहा,—"अच्छा, तो अब चलीं कहाँ? तुम्हारी बातें ठीक-ठीक समझमें नहीं आतीं। यह सब बातें बिल्कुल व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी तरह हैं। तुम क्या मेरे मुँहमें कालिख लगाना चाहती हो? देखो, अब भी चेत जाओ।"

मञ्जरीने कहा,—"तुम्हारे जो जीमें आये, करो। अगर तुम मुझे व्यभिचारिणी समझते हो, तो मेरे साथ कोई सम्बन्ध न रखो। तुम मुझे अपने घरसे निकाल दोगे, तोभी कोई चिन्ता नहीं—मैं तुमसे इसके लिये लड़ाई-झगड़ा न करूँगी। तुम कहो, तो मैं अभी चली जाऊँ। नहीं तो कल सोच-विचारकर कहना, इस समय मैं खाने-पीनेका प्रबन्ध करने जाती हूँ।"

यह कह मञ्जरी दूसरे कमरेमें चली गयी और अद्वैत घोष हथेलीपर सिर रख सोचने लगे।



तीसरा परिच्छेद।

मा-लक्ष्मीका निवास कहाँ है ?

उस अपरिचित वृद्धके कहे अनुसार दाऊजीके चरणामृतके पान और लेपनसे हरिदासका पुत्र, गोपाल, धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। पाँच दिन वाद डाकृरने आकर कहा,—"भैया! अव मेरे आनेका कोई काम नहीं है। तुम्हारा लड़का श्री दाऊजीकी दयासे अच्छा हो गया।"

हरिदासने कहा,—"भाई साहव! मेरा लड़का तुम्हारी ही कृपासे वच गया। तुम्हारा यह ऋण मैं इस जन्ममें न चुका सकूँगा।"

डाकृरने कहा,—"मनुष्य क्या कर सकता है? सव भगवान्‌की माया है। देखो, जिस समय एक-एक घड़ी प्रलयके समान वीत रही थी, दवादारू और पथ्यके अभावसे वच्चा मरा जाता था, घरपर अलगही आफ़त आयी थी, ठीक उसी समय मा-लक्ष्मी आ पहुँचीं! अद्वैतके अत्याचारसे जव हमलोग एकवारगी हत-वुद्धि हो रहे थे, तव एकाएक एक देवता, न जाने कहाँसे, आ पहुँचे और तुमको सारे झंझटोंसे छुटकारा दे गये। इसीसे मुझे मालूम होता है, कि तुमपर साक्षात् भगवान्‌की ही कृपा है। वेचारे मनुष्यकी शक्ति-सामर्थ्यही कितनी?"

हरिदासने कहा,—"वे बूढ़े बाबा तुरतही कहाँ चले गये, कुछ मालूम नहीं होता। सचमुच वे कोई देवताही थे। यदि एक बार और उनके दर्शन होते, तो मैं उनके चरणोंमें बार-बार सिर झुकाता। क्या तुमको उनका कुछ पता लगा है?"

ठीक इसी समय पीछेकी तरफ़से एक भुवन-मोहिनी सुन्दरीने आकर कहा,—"मैं उनका पता बता दे सकती हूँ।"

यह सुनतेही दोनों आदमी अदबके साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने मुँह फेरतेही देखा, कि मा-लक्ष्मी चारों ओर जगमग-ज्योति फैलाती हुई खड़ी हैं। मा-लक्ष्मीने कहा,—"मैं उनका पता बता दे सकती हूँ। वे देवता नहीं, हमीं लोगोंकी तरह आदमी हैं।"

ठाकुरने कहा,—"मा! अगर वे तुम्हारी ही तरह आदमी हों, तो सचमुच देवता हैं। कहाँ जानेसे उनके दर्शन होंगे?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"कहीं, जाना न पड़ेगा। आवश्यकता पड़नेपर वे आपही घर बैठे दर्शन दे जायेंगे। तुम लोग मुझे देवता कहते हो, तो कहो; पर यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ, कि मैं तुम्हीं लोगोंकी तरह मनुष्य हूँ--तुमसे अधम या उत्कृष्टतर जीव कदापि नहीं हूँ। जो हो, श्रीदाऊजीकी कृपासे तुम्हारा बेटा अच्छा हो गया, अब उसके पथ्य आदिका प्रबन्ध करो और उसे कुछ दिन खूब नियम-संयमके साथ रखो। फिर कोई खुटका न रहेगा। अच्छा, तो अब मैं चलती हूँ।"

हरिदासने कहा,—"तुमने हमलोगोंको सदाके लिये बिना

मोलके ख़रीद लिया। मेरा गोपाल सदा तुम्हारा दास बना रहेगा। तुम्हारे जानेकी बात सुन प्राण चञ्चल हो रहे हैं। क्या दो दिन ठहर नहीं सकतीं?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"नहीं, मुझे एक बड़े ज़रूरी कामसे जाना है। मैं तुम्हारी कन्याके बराबर हूँ। बापके घर तो बेटी आयाही-जाया करती है। इसके लिये कौनसी चिन्ता है?"

डाक्टरने कहा,—"उन वृद्ध-वेशी देवताने जो धन दिया था, उसमेंसे अद्वैतका ऋण और दवाओंका दाम दे-दिलाकर सौ रुपये बच रहे हैं। यह रक़म तुम रखलो। उन्होंने मुझसे ऐसाही कहा था। यह लो, मैं रुपये लेता आया हूँ।"

यह कह डाक्टरने जेबसे दस-दस रुपयेके दस नोट निकालकर हरिदासको दे दिये। हरिदासने कहा,—"भैया! मैं यह रुपये कभी न लूँगा। उनका पता मा-लक्ष्मीको मालूम है। इन्हींको दे दो, ये उनको दे आयेंगी।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"उन्हें रुपये लौटानेका काम नहीं है। गोपालके खाने-पीनेका ख़र्च चलानेके बाद जो कुछ बचे, उसको किसी अच्छे काममें लगा देना। अच्छा, तो अब मैं चलती हूँ।"

हरिदासने कहा,—"मा! तुम्हारे वे बर्त्तन-बासन कहाँ भेज देने होंगे?"

मा-लक्ष्मी,—"मेरे पिताकेही घर रहेंगे। मेरे मा-बाप और भाई-बहनें उनको व्यवहारमें लायें—मुझे जब ज़रूरत पड़ेगी, तब ले जाऊँगी।"

यह कह, विना उत्तरकी अपेक्षा किये, मा-लक्ष्मी चली गयीं। ठाकुर और हरिदासको उन्हें प्रणाम करनेका भी अवसर न मिला। रास्तेमें अनेक हिन्दू और मुसलमान उन्हें देखकर तरह-तरहके प्रश्न करने और असीम आनन्द प्रकाश करने लगे। वे सबसे मीठी-मीठी बातें कहने और कुशल-संवाद पूछने लगीं। लड़के, उन्हें देख, चारों ओरसे घेरकर, नाचने-कूदने लगे। गोदके दूधपीते बच्चे भी उन्हें देख 'माँ जाती ऐ' कह-कहकर सिर हिलाने लगे। इस तरह बस्ती पार होनेमें बड़ी देर लगी। दिनके दो बज गये।

जाते-जाते वे एक तालाबके पास पहुँचीं। उसके बादही बड़ा भारी मैदान था और कोसोंतक बस्तीका कहीं नामोनिशान न था। धूपके मारे उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। सूरजकी किरणोंमें उनकी देहका गोरा रङ्ग चमकने लगा। परिश्रम और धूपके कारण दोनों आँखोंकी न्यारीही शोभा होगयी। वे पासही एक बड़का पेड़ देख थोड़ी देर सुस्तानेके लिये उधरही चल पड़ीं।

वे ज्योंही वहाँ पहुँचीं, त्योंही दूसरी ओरसे एक और सुन्दरी वहाँ आ पहुँची और उसने बड़ी भक्तिसे उनको प्रणाम किया। यह सुन्दरी और कोई नहीं, हमलोगोंकी पूर्व-परिचिता, मञ्जरी है।

मञ्जरीने कहा,—"आपने मुझे कभी नहीं देखा होगा, न मैंने ही आपको आजतक कहीं देखा; परन्तु परमहंसजीके मुँहसे

मैंने जो कुछ सुना है, उससे अनुमान कर सकती हूँ, कि आपही मा-लक्ष्मी हैं। मुझे यह मालूम था, कि आप आज इस ओर आयेंगी। इसी लिये मैं यहाँ बड़ी देरसे खड़ी हूँ।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"आप कौन हैं? मुझसे आपको क्या काम है?"

मञ्जरीने कहा,—"मेरा परिचय पातेही आप मेरे कामकी बात समझ जायेंगी। मैं क्या कहकर आपको अपना परिचय दूँ? मैं सधवा होकर भी विधवा हूँ। मेरा स्वामी जीता है, पर वह बड़ाही अधम, घोर पशु है। मैं तो उसे स्वामी कहते हुए भी शर्माती हूँ, इसलिये मैं क्या कहकर अपना परिचय दूँ, कुछ समझमें नहीं आता।"

दाँतोंसे ओठ काटते हुए मा-लक्ष्मीने कहा,—"छिः! किसी कुल-कामिनीके मुँहसे आजतक मैंने ऐसी बात नहीं सुनी थी। पिताके मुखसे पतिकी निन्दा सुन सतीने प्राण त्याग दिये थे। और आज एक नारी आपही, अपने मुँहसे, पतिकी निन्दा कर रही है! तुम राक्षसी हो—जाओ, मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं।"

मञ्जरी,—"सचमुच, मा! मैं राक्षसीही हूँ। मुझसी पापिनी और कोई न होगी। स्वामी, मेरी आँखोंका काँटा हो रहा है। मैं लाख चाहनेपर भी अपने पतिको प्यार न कर सकी। मेरे पापोंका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।"

मा-लक्ष्मी,—"जिसका स्मरण करनेसे भी पाप होता है,

क्या वह पाप भी तुमने किया है? अभागिनी! तू क्या स्त्रियोंके जीवन, नारीके सार-धन, सतीत्व-सम्पत्तिको भी खो बैठी है?"

मञ्जरी,—"नहीं—मैंने वह महापाप नहीं किया। इस जीवनमें मैंने कभी किसी पराये पुरुषकी इच्छा नहीं की। स्वामीसे प्रेम न रहनेपर भी मैंने किसी औरको मनमें नहीं विठाया। स्वामी मेरी आँखोंके काँटे हो रहे हैं सही, पर मैंने कभी किसी दूसरेके साथ प्रेम नहीं किया। मैं संसारके सब पुरुषोंको अपना बाप, भाई या लड़का समझती हूँ। मैंने कभी मनमें पापकी बात नहीं आने दी।"

मा-लक्ष्मी,—"अरी अभागिनी! फिर तेरा मन स्वामीसे क्यों नहीं मिलता?"

इसपर मञ्जरीने एक-एक कर अपने जीवनकी सारी बातें कह सुनायीं। स्वामीके स्वभाव और चरित्रका पूरा चित्र उतारकर उनके सामने रख दिया! स्वामीको अच्छे रास्तेपर लानेके लिये उसने कितनी चेष्टा की और उसमें कैसी विफल हुई, किस तरह बराबर उनकी भलाईका ध्यान रखनेपर भी वह सदा कष्ट और लाञ्छनाही पाती आयी, किस तरह स्वामीका कर्त्तव्य-ज्ञान नष्ट हो रहा है, क्योंकर उसके जीसे स्वामीकी सारी श्रद्धा जाती रही और उसकी जगह घोर घृणा उत्पन्न हो गयी, यह सब सुनकर मा-लक्ष्मी उसकी अवस्था भली भाँति समझ गयीं। तब मा-लक्ष्मीने कहा,—"मैं समझ गयी, कि तुम्हारा पति आदमी नहीं, महानीच राक्षस है। उस नारीका

जन्म व्यर्थ है, जिसने कभी स्वामीकी सेवा नहीं की और सदा स्वामीके दोषही देखे। ख़ैर, तुम्हारे पापका प्रायश्चित्त हो सकता है। बोलो, तुम क्या करना चाहती हो?"

यह सुन मञ्जरीने उन्हें बतलाया, कि मैंने सङ्कल्प किया है, कि स्वामीके पापों और दुराचारोंको मैं हटाऊँ और जिन लोगोंपर उन्होंने अत्याचार किया है, उनके दुःख दूर करूँ। उसने यह भी बतलाया, कि अबसे किस तरह जीवन बितानेका उसने निश्चय किया है। उसकी बातें पूरी होनेपर मा-लक्ष्मीने कहा,—"तुम जिन परमहंसजीकी बात कह रही थीं, वे तुम्हारे कौन हैं?"

मञ्जरी,—"कोई नहीं। उन्होंने दया कर मुझे दो-चार दिन दर्शन दिये हैं। मैंने उनसे अपने जीकी बातें खोलकर कह दी हैं। उन्होंने मुझसे कहा था, कि आप जब मेरी बातें सुनेंगी, तब अवश्यही मेरी सहायता करेंगी। उन्होंने कृपाकर मुझे आपका पता भी बतला दिया था। अब आपही कहिये, कि मैं क्या करूँ? किस उपायका अवलम्बन करनेसे मेरा पाप दूर होगा?"

मा-लक्ष्मी,—"इस ताल [illegible] दाहिनी तरफ़, बँसवाड़ीके भीतरसे जो कई-एक फूस [illegible] मकान दिखाई दे रहे हैं, वे सनातन मुखोपाध्याय [illegible] वे मेरे भाई हैं। मैं वहीं रहती हूँ। तु [illegible] गृहस्थिनी बनो। इस समय दिनका ती [illegible] तुम घर चली जाओ।



काल दोपहरके समय उसी स्थानपर आकर मुझसे मिलना। मैं अपनी भरसक तुम्हारी मदद करूँगी। यदि मेरे भाई उस समय वहाँ मौजूद रहेंगे, तो और भी अच्छा होगा; क्योंकि वे भी तुम्हें बहुत-कुछ सिखा-समझा सकेंगे।"

मञ्जरी,—"आपका रूप देख और आपकी बातें सुनकर तो घर लौटनेकी इच्छाही नहीं होती। तोभी जब आप कहती हैं, तब लीजिये, जा रही हूँ। कल आऊँगी।"

यह कह मंजरी प्रणामकर चल दी। उसके जानेपर मा-लक्ष्मी भी धीरे-धीरे उठीं और तालाबकी दूसरी तरफ़वाले उसी मकानके अन्दर चली गयीं।

मिट्टीकी दीवारों और फूसकी छावनी वाले घर चारों ओर बने हुए थे। एक ओर एक बड़ासा घर था। उसके पीछे एक छोटासा रसोईघर और एक ढेंकीघर था। दूसरी तरफ़ भी वैसाही एक बड़ासा घर था, जिसके पीछेही बड़ीसी गोशाला थी। मकानके चारों तरफ़ काँटेदार पौधोंका बेड़ा बना हुआ था। सभी घर साफ़-सुथरे थे।

एक तीन वर्षका बालक आँगनमें बैठा हुआ मिट्टी ले-लेकर खेल रहा था। मा-लक्ष्मी, क्यों... तेही वह चिल्ला उठा,—"यह लो, बुआ आगयी!" और उसको उ...

घरके भीतरसे एक मा-लक्ष्मी उसकी ...की लड़की और उसका छोटा भाई भी दौड़े हु... ा-लक्ष्मीने कहा,—"...पनी बुआकी देहसे चिमट गये। मा-लक्ष... नहीं, महानीच राक्षस है... बालकको गोदमें

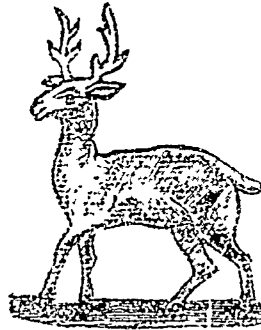
उठा लिया और इन दोनों बालक-बालिकाओंके मुँह चूम लिये। रसोईघरमें बैठी हुई एक अपूर्व्व सुन्दरी लड़कोंके लिये 'कलेऊ' तैयार कर रही थी। वह आलूलायित-कुन्तला सुन्दरी-शिरोमणि भी अपना काम छोड़ दौड़ पड़ी और मा-लक्ष्मीके पास चली आयी। उसे देखतेही मा लक्ष्मीने कहा,—"भाभी! प्रणाम।"

भाभीने कहा,—"मैं आशीर्वाद करती हूँ, कि तुम भाईको लेकर सुहागिन बनी रहो।"

"तुम्हारे मुँहमें घी-शक्कर पड़े।"

"अच्छा, यह तो बताओ, कि तुम भैयाको कहाँ छोड़ आयीं?"

"भाई अपने कामसे कहीं गये होंगे। कुछ कलेऊ आदि हो, तो लाओ, भूख लगी है, खाऊँ।"





षष्ठ खण्ड ।



"ज्ञेयः स नित्य-संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो ! सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ॥"

अर्थ,—जो नतो किसीसे द्वेष करता है और न किसी वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे नित्य संन्यासी जानना चाहिये। हे अर्जुन! ऐसा द्वेषादिसे शून्य मनुष्य अनायासही संसारके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

तात्पर्य,—जिसके हृदयमें न तो किसी तरहका द्वेष है और न किसी प्रकारके लाभकी आकांक्षाही है, वह पुरुष सांसारिक कार्य्योंमें लगा हुआ होनेपर भी संन्यासी है। क्योंकि हे अर्जुन! ऐसा सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे परे रहता हुआ मनुष्य बड़ी आसानीसे संसारके बन्धनोंको काट डालता है।

(श्रीभगवद्गीता। ५ अध्याय, ३ श्लोक। श्रीकृष्णवाक्य)



कर्मफल

पहला परिच्छेद।

यह कैसा परिवर्तन !

राजीवपुरसे दो-तीन कोस उत्तर-पश्चिमके कोनेपर जलके भीतर एक छोटेसे झोपड़ेमें धन्नूकी माँ, स्त्री और बच्चे रहते हैं। यह बात शायद हमारे पाठक भूले न होंगे। उसी साफ़-सुथरे मकानके आँगनमें धन्नूकी पत्नी, दिनके लगभग दस बजेके समय, चूल्हा जलाकर चाँवल पका रही है। लकड़ीके स्थानमें सूखे पत्तेही ईन्धनका काम दे रहे हैं। धन्नूकी मा, घरके भीतर बैठी कच्चे केले और बैंगनका साग काट रही है। धन्नूकी कन्या और उसका छोटासा बच्चा, दोनों आँगनमें बैठे हुए मिट्टीका घर बनाकर खेल रहे हैं। सभी निश्चिन्त और शान्त मालूम पड़ते हैं।

सहसा किसीने बाहरसे पुकारा,—"क्या यहाँ धन्नू तेलीके घरवाले रहते हैं?"

यह सुन सबकी निश्चिन्तता और शान्ति भङ्ग हो गयी। यह कण्ठ-स्वर सुनतेही सबके सब चौंक पड़े। न जाने क्यों, यह स्वर उन लोगोंको बड़ा रूखा और डरावना मालूम पड़ा। बच्चे, डरके मारे खेल छोड़कर माँकी गोदमें आ छिपे। माँ, खाना पकाना छोड़, बच्चोंको लिये हुई अपनी सासके पास पहुँची। फिर शब्द हुआ,—"क्या कोई घरपर है? कोई मेरी बात नहीं सुनता क्यों? मैं पूछता हूँ, कि इस मकानमें राजीव-पुरके धन्नू तेलीका परिवार रहता है या नहीं?"

धन्नूकी माने धीरेसे कहा,—"अरे यह तो वही मालूम पड़ता है, जिसने हमें इस हालतको पहुँचा दिया है। न मालूम, अबके भाग्यमें क्या बदा है!" इसके बाद उसने ऊँचे स्वरसे कहा,—"हाँ, धन्नूके घरवाले यहीं रहते हैं। आप कौन हैं? आपको उन लोगोंसे क्या काम है?"

फिर वहींसे उस आदमीने पूछा,—"मैं तुम लोगोंका बड़ा भारी वैरी हूँ; पर इस समय तुम लोगोंका हितैषी बनकर आया हूँ! मेरा नाम सुरेन्द्रनाथ मित्र है। मैं राजीवपुरका रहनेवाला हूँ। मेरा नाम सुनकर तुम्हें डर हो सकता है; पर मेरा कहा सच जानो, कि इस समय भय करनेका कोई कारण नहीं है। मैं तुम लोगोंसे सिर्फ़ दो-चार बातें पूछने आया हूँ। यदि तुम लोगोंने उनका सन्तोषजनक उत्तर दिया; तो मैं बड़ा सुखी हूँगा।"

भीतरसे धन्नूकी माने कहा;—"अच्छा, बैठिये।"

सुरेन्द्रने बाहरसेही पूछा,—"आपही शायद धन्नूकी मा हैं ?"

उत्तर मिला,—"हाँ ।"

सुरेन्द्र,—"इन दिनों आप लोगोंकी कैसे गुज़र होती है ? ख़र्च-वर्च ठीकसे चल जाता है या नहीं ?"

धन्नूकी मा,—"ख़र्च-वर्चकी कोई तंगी नहीं है। ईश्वर हम लोगोंके सहायक हैं। हमारे सब अभाव उन्होंने दूर कर दिये हैं।"

सुरेन्द्र,—"अच्छी बात है। जिन्होंने आपकी सहायता की है, वे सच-मुचही ईश्वर हैं। मैं उन्हींकी खोजमें फिर रहा हूँ। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे आप लोगोंका पता लगा है। मेरेही अत्याचारसे आप लोगोंने इतने कष्ट उठाये, अब मैं अपने उस पापका कुछ प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।"

धन्नूकी माँ,—"उस अत्याचारकी तो हमलोग बातही भूल गये। अगर हमें किसी तरहका दुःख होता, तो आपसे कहतेही।"

सुरेन्द्र,—"अच्छा, जाने दीजिये। मैं एक अप्रिय बात पूछना चाहता हूँ। कृपाकर बतलाइये, इस समय गिरिबाला कहाँ है ?"

धन्नूकी माका स्वर इस बार कुछ भरा हुआ मालूम पड़ा। उसने कहा,—"मैंने सुना है, कि वह मर गयी।"

सुरेन्द्रनाथने कातर भावसे कहा,—"मर गयी ? क्या आपको ठीक मालूम है, कि अब वह इस संसारमें नहीं रही ?"

धन्नूकी माने दुःखित स्वरमें कहा,—"हाँ, मैंने जिनके मुँहसे यह बात सुनी है, वे कभी झूठ नहीं बोलते।"

यह सुन सुरेन्द्रनाथ वहीं बैठकर आँखों और मुँहको रूमालसे ढककर चुपचाप रोने लगे। जब बड़ी देरतक उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकली, तब धन्नूकी मा ज़रा बाहर आकर टट्टियोंकी ओटसे उस युवकको देखने लगी। उसने जो कुछ देखा, उससे उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने धीरे-धीरे सब बातें बहूको बतला दीं और उसके कहे अनुसार एक लोटेमें जल लेकर बाहर आयी। सुरेन्द्रनाथके पास पहुँचकर वृद्धाने कहा,—"आप उस अभागिनीके लिये क्यों रोते हैं ? उसने जैसा पाप किया था, उसे देखकर उसकी मृत्युसे किसीको दुःख न होना चाहिये। लीजिये—हाथ-मुँह धोइये, चुप हो जाइये।"

सुरेन्द्रनाथने कहा,—"गिरिबालाने पाप नहीं किया—मैंनेही उसे पापका रास्ता दिखाया। उसके पापोंके लिये मैंही उत्तर-दायी हूँ। हे भगवान्! तुमने मुझे अपने पापोंके लिये उसके चरण पकड़कर उससे क्षमा भी नहीं माँगने दी! अच्छा, यह तो कहिये, कि वह कैसे मरी ?"

धन्नूकी माने कहा,—"शान्तिपुरमें भूख और प्याससे तड़प-तड़पकर मर गयी !"

यह संवाद सुन सुरेन्द्रनाथके सिरपर वज्रसा गिर पड़ा। उन्होंने पूछा,—"वह गर्भवती थी। क्या उसी अवस्थामें वह मर गयी ?"

धन्नूकी माँने कहा,—"नहीं! उसके एक लड़का हुआ था। इसके बादही वह मर गयी।"

सुरेन्द्र०,—“तो क्या उसके मरनेपर वह लड़का भी मर गया ?”

धन्नूकी मा,—“नहीं। मैंने सुना है, कि उसका लड़का जीता है। वह बड़े आनन्दसे है।”

सुरेन्द्रनाथ उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़े आग्रहसे पूछा,—“वह लड़का कहाँ है ?”

धन्नूकी माने कहा,—“मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम। इतना अलबत्ता सुना है, कि शान्तिपुरके किसी ब्राह्मणके घरपर है।”

सुरेन्द्रनाथने कहा,—“अच्छा, तो मैं इस समय चलता हूँ। उस लड़केका पता लगाये विना मेरे जीको चैन नहीं है। अगर मेरे करते आप लोगोंकी कुछ भलाई हो, तो मैं बड़ा सुखी हूँगा। मैं अधम पापी हूँ, तोभी आपका लड़का हूँ। मुझे क्षमा करेंगी।”

सुरेन्द्रनाथके मुँहसे ऐसी कोमल बातें सुन धन्नूकी माकी आँखें भर आयीं। उसे संन्यासीके साथ सुरेन्द्रनाथकी भेंट होनेकी बात याद हो आयी। साथही यदु हालदारकी भी बातें याद पड़ीं! वह समझ गयी, कि सचमुच महात्माओंके सत्सङ्गसे बड़े-बड़े पापियोंका भी मन ठिकाने आ जाता है। वे बुरेसे भले बन जाते हैं। इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं। उसने कहा,—“आप स्थिर होकर थोड़ी देर विश्राम करें। इसके बाद जैसा कुछ होगा, वैसा किया जायेगा।”

सुरेन्द्रनाथके कुछ कहनेके पहलेही थोड़ी दूरपर शब्द हुआ—‘मा कहाँ हैं ? बूढ़ी मा! हो क्या ? मेरे छोटे भैया और बहन कहाँ हैं ?’

यह शब्द सुनतेही डरे हुए लड़के माका आँचल छोड़ दौड़े हुए बाहर चले आये। वृद्धा और सुरेन्द्रनाथने भी यह कण्ठ-स्वर सुन उसी ओर मुँह फेरा।

आगन्तुक और कोई नहीं, हमारा वही पूर्वपरिचित, मूर्ख दूकानदार, यदु है। उसके हाथमें एक बड़ीसी पोटली है, उसके पैरोंमें जूते या शरीरमें कुर्त्तेका पता नहीं है। उसने धोतीके ऊपर एक चादर-भर लपेट ली है। वह, बच्चोंका हाथ पकड़े हुए, सुरेन्द्रनाथके पास आया। उसे देख, सुरेन्द्रनाथने उसे प्रणाम करते हुए कहा,—"जिस दिन उन दयालु महात्माके साथ मेरा मिलना हुआ था, उसके ठीक दूसरे दिन मैंने आपको राजीवपुरमें देखा था। आप महात्मा हैं। मैंने सुना है, कि मेरा पुत्र जीता है। आप अवश्यही उसका पता जानते होंगे। मैंने आज बड़े भाग्यसे आपके दर्शन पाये। इससे मैं कृतार्थ हो गया। आप कृपाकर बतलायें, कि मैं कहाँ जानेपर अपनी सन्तानको देख सकता हूँ?"

यदुने कहा,—"इसके लिये कोई चिन्ता नहीं। आपकी सन्तान अच्छी जगह है और उसका खूब अच्छी तरह पालन-पोषण हो रहा है। मैं आपको अपने साथ वहाँतक ले चलूँगा। मालूम होता है, कि अभी आप रो रहे थे। बीती बातोंके लिये ऐसी कातरता अनावश्यक है। वर्त्तमान समयको अच्छे काम करते हुए बितानाही बुद्धिमानोंका काम है। आपने महापुरुषकी कृपा प्राप्त की है। अतएव चिन्ता या शोक करना

व्यर्थ है। आप इस समय विश्राम कीजिये। बूढ़ी मा! बाबूके लिये कुछ कलेऊ करनेको दो। बिछानेके लिये कोई कम्बल या चटाई तो ला दो।"

यह सुन यदूकी मा, जल-भरा लोटा वहीं रखकर चली गयी। यदुने कहा,—"आप राजा हैं। यहाँ आकर कलेऊ करना आपको शोभा नहीं देता ; तोभी प्राण-रक्षाके लिये कृपा कर कुछ मिठाई आदि खाकर इस झोंपड़ेको कृतार्थ कीजिये।"

सुरेन्द्रनाथने कहा,—"आप देवताके सहचर हैं—आपकी आज्ञा मानना मेरा परम कर्त्तव्य है।"

यदुने कहा,—"अच्छा, इस लोटेमें जल भरा है, उससे हाथ-मुँह धो लीजिये।"

सुरेन्द्रने हाथ-मुँह धोये। वृद्धाने आकर वहीं एक कम्बल बिछा दिया और पीनेके लिये पानी लाने चली। सुरेन्द्रनाथके बैठ जानेके अनन्तर यदुने अपनी पोटली खोलकर कुछ "सन्देश" निकालकर बड़ी विनयके साथ उनके हाथमें दिये और दो-दो सन्देश उन बच्चोंको भी दिये। वृद्धा पीनेका पानी ले आयी। यदुने कहा,—"आप थोड़ी देर ठहरिये, मैं यहाँ अपनी मासे मिलने आया हूँ, उन्हें देख कर आता हूँ। ये बच्चे मेरे भाई-बहन हैं। मैं उनसे बातें कर अभी आता हूँ।"

सुरेन्द्रनाथ, इस समय वह अहङ्कारी, शिक्षाभिमानी और विलासी पुरुष नहीं हैं। अब, न जाने किस मन्त्रके प्रभावसे, वे अपनेको तृणसे भी तुच्छ समझने लगे हैं। उनकी पहनाव-

पोशाक—कुर्त्ता, चादर, धोती, जूता—सब कुछ सीधासादा है। इस समय यदु बनिया भी उनकी घृणाका पात्र नहीं है। इसी लिये वे सहजही उसके लिये इन्तज़ार करनेको तैयार हो गये।

यदुने कहा,—"आओ, बूढ़ी मा! ज़रा मेरी दो-चार बातें सुन लो।"

वृद्धा घरके अन्दर चली। यदु भी उन बच्चोंके साथ उसके पीछे-पीछे चला।

दूसरा परिच्छेद।

नारीका पतिही सर्वस्व है!

श्यामबाज़ारके अद्वैत घोषकी उसी अट्टालिकामें, मध्याह्नके समय, अकेली बैठी हुई अनङ्ग-मञ्जरी अपने इष्टदेवताकी पूजा कर रही है। उसने गुरु-दीक्षा लेली है—दीक्षा लेनेसे उसे कैसी शिक्षा प्राप्त हुई या उसको कैसा ज्ञान लाभ हुआ, यह हम नहीं कह सकते। हाँ, यह अलबत्ता देख रहे हैं, कि वह तरह-तरहके फूल, चन्दन और अक्षत आदि लेकर बड़ी देरसे पूजा कर रही है। आजकल मञ्जरी अद्वैतसे पहलेकी तरह लड़ाई-झगड़ा नहीं करती, उन्हें कड़वे वचन नहीं कहती और न उनके दोषही ढूँढती है। वह न तो प्रेमकी ही बात करती है, न अभिमानकी। केवल उदासीन बनी बैठी रहती है। संसारमें रहकर भी वह उसके विषयोंसे अलग है। वह दिनका अधि-

कांश समय पूजा-पाठमें ही विता देती है। उससे निवटकर तीसरे पहर भोजन बनाती है। पहले पतिको खिलाकर आप बचा हुआ थोड़ासा अन्न खाकर पेट भर लेती है। अद्वैतके साथ उसकी बहुतही कम बातचीत होती है। घरके काम-धन्धेसे छुट्टी पाकर वह घरसे बाहर चली जाती है। अद्वैत घोष महाशय, छिपकर देखते हैं, कि उनकी सुन्दरी और युवती स्त्री किस जगह जाती या कौनसा काम करती है? अनङ्ग-मञ्जरी और कहीं नहीं, उन्हीं सनातन मुखोपाध्यायके घर जाया करती है। वहाँ वह बड़ी देरतक बैठती और उनकी, उनकी पत्नीकी तथा कभी-कभी मा-लक्ष्मीकी बातें सुना करती है। कभी-कभी उन लोगोंके साथही दाऊजीके मन्दिरमें जाकर भगवान्‌के चरणोंमें लोटा करती है।

पत्नीके स्वभावमें ऐसा परिवर्त्तन होनेसे यद्यपि सांसारिक आनन्दमें कोई वृद्धि न हुई, तथापि अद्वैतको इससे कुछ प्रसन्नता हुई। क्योंकि इस प्रकार भावके परिवर्त्तनसे उनके ऊपर न तो बातोंकी बौछार होती है, न झाड़ूकीही। उन्हें दाम्पत्य-प्रेमका सुख भलेही न हो; पर घरमें जो दिन-रात कलह और अशान्ति बनी रहती थी, वह अब दूर हो गयी है। प्रेमकी बातें नहीं होतीं, तो न सही, गाली-गलौज भी तो बन्द है! इसीसे आजकल घरमें शान्तिका आनन्द विराजमान है। महीने-भरसे ऐसीही शान्ति छायी हुई है।

आज भी मञ्जरी, सब दिनोंकी तरह, पूजामें निमग्न है। वह

बड़ी देरसे पूजा करने बैठी है। दोपहर होनेपर अद्वैत घरमें आये। पत्नीको पूजा करते देख, उन्हें पास आनेकी हिम्मत नहीं हुई। वे तेल लगाकर स्नान करने चले गये। आज अनङ्गमञ्जरी पूजामें ऐसी लीन हो रही है, कि सारी दुनियाकी सुध भूल गयी है। वह इतने दिनोंसे पूजा करती आयी, पर आजकी तरह कभी अपना आपा न भूली थी। उसके शरीरके रोएँ खड़े होरहे हैं, देहसे ज्योतिसी निकल रही है, आँखें बन्द हैं और गालोंसे होकर लगातार आँसू बह रहे हैं। अब न तो उससे देवतापर चन्दन या फूलही चढ़ाते बनते हैं, न कोई मन्त्रही मुँहसे निकलता है—वह अपने आपको भूलकर उन्मादिनी बन गयी है।

इसी समय स्नानादि कर अद्वैतजी धीरे-धीरे वहाँ आ पहुँचे और पत्नीका यह हाल देख भौंचकसे हो रहे। उन्होंने सोचा, कि कहीं इसे कोई कठिन रोग तो नहीं हो गया है? उसके नाराज़ होनेके डरसे उन्होंने उसकी अवस्था मालूम करनेकी तो चेष्टा नहीं की; पर धीरे-धीरे पास आकर बोले,—"क्यों मञ्जरी! तुम्हारा यह क्या हाल है?" मञ्जरीने कोई उत्तर नहीं दिया; उसका शरीर मानों चञ्चल हो उठा। अद्वैतने फिर पूछा,—"क्यों, बोलतीं क्यों नहीं?"

मञ्जरीने मन्त्रसे चलाये हुए व्यक्तिकी भाँति धीरे-धीरे आँखें खोलकर अद्वैतकी ओर देखा। उसकी वह दृष्टि बड़ीही कोमल, बड़ीही मधुर और बड़ीही शान्त थी। इसके बाद अद्वैतकी ओर देखतेही देखते वह उनके चरणोंपर गिर पड़ी। अद्वैतको

तो यह सब देखकर काठसा मार गया—मुँहसे कोई बातही नहीं निकली। बहुत दिनोंसे उन्होंने पत्नीकी देहका स्पर्श नहीं किया था। आज उनके चरणोंपर अनङ्गमञ्जरीका मस्तक आ गिरा है। अद्वैतके शरीरमें एक विचित्र प्रकारकी मोहमयी मदिराका आवेश आ गया। वे सहसा किसी पूर्णानन्दमय अभिनव राज्यमें पहुँचकर परमानन्दके अधिकारी होगये।

बड़ी देर बाद मञ्जरीने अपना सिर ऊपर उठाया। उस समय भी उसकी आँखोंसे आँसू जारी थे। उसने हाथ जोड़कर कहा,—"मैं धन्य हूँ। आजतक कभी मैंने तुम्हारा यह रूप नहीं देखा था। तुममें इतनी शोभा, इतने गुण, इतने पुण्य और इतनी पवित्रता है, यह मैं नहीं जानती थी। भगवान् करे, मैं जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारा यही भाव देखकर धन्य होती रहूँ।"

अद्वैतदासने एक बार अपने सामने हाथ जोड़कर बैठी हुई पत्नीको देखा और दूसरी बार उसके गालोंपरसे होकर बहते हुए आँसुओंको देखा। उसकी बातें सुनकर वह यह न समझ सके, कि ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये। जब कुछ समझमें न आया, तब वह चुपचाप वहीं बैठ गये और अपनी चादरके छोरसे उसके आँख-मुँह पोंछने लगे। इसके बाद उन्होंने दोनों हाथ फैलाकर पत्नीको गोदमें ले लिया। मञ्जरी कहने लगी,—"ओह, मैं आजतक कैसे भयानक भ्रममें पड़ी हुई थी! न जाने किस पापसे मैं इतने दिनोंतक कष्ट उठाती रही! मैंने तुम्हें मनुष्य समझकर कितना दुःख पाया! मैं आजतक यह नहीं

जानती थी, कि तुम्हीं श्रीकृष्ण—पूर्ण पुरुष हो। तुम्हारी शोभाकी तुलना नहीं,गुणोंकी सीमा नहीं। तुममें बुराईका लेश-मात्र भी नहीं है। तुच्छ नारी होकर क्या मुझे स्वामीके भले-बुरे कामोंका विचार करना चाहिये था? ओह, मैंने कितना बड़ा पाप किया है!"

अद्वैतने कहा,—"मैं बड़ा भारी पापी हूँ। मैं घोर बदमाश, ठग, पाजी, पराया धन हड़पनेवाला डाकू और ख़ूनके प्यासे जानवरोंसे भी गया-बीता हूँ। तुम मुझे 'देवता' न कहो।"

मञ्जरीने कहा,—"राम, राम! ऐसी बात न कहो। ऐसी बात सुननेसे भी पाप लगता है। तुम जो कुछ करो, वही ठीक है; मेरा उसमें दख़ल देनाही पाप है।"

अद्वैतने कहा,—"मञ्जरी! तुम्हें ऐसी शिक्षा किसने दी? तुम ऐसी देवी क्योंकर बन गयीं?"

मञ्जरीने कहा,—"मैं तुम्हारी दासी हूँ; मुझे देवी न कहो। मैंने कितना बड़ा पाप किया है, इसका कोई ठिकाना नहीं। तुम दयामय हो—दया कर मेरा अपराध क्षमा करो।"

अद्वैतने कहा,—"नहीं, मैंही तुम्हारे आगे अपराधी हूँ। मुझीको तुमसे क्षमा माँगनी चाहिये। जो कुछ हो, तुम पहले यह बतलाओ, कि तुम्हें किसके उपदेशसे ऐसा ज्ञान हुआ?"

मञ्जरी,—"एक स्वर्गीया देवीके उपदेशसे। तुम उन्हें जानते-ही होगे। उन्हें लोग 'मा-लक्ष्मी' कहते हैं। उन्हींके उपदेशसे मैं अपने देवताको पहचान सकी हूँ।"

बड़े प्यारसे मञ्जरीको हृदयसे लगाकर अद्वैतने कहा,—"मा-लक्ष्मीके चरणोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम स्वीकार हों। उनको कृपासे आज मैं धन्य हो गया।"

मञ्जरीने कहा,—"मैं अब जाती हूँ। तुम्हारी सेवामें बड़ी देर हुई। अब चलकर भोजनादिका प्रबन्ध करती हूँ।"

यह कह मञ्जरी चली गयी। अद्वैत अकेले बैठकर विचार करने लगे,—"सचमुच मैं बड़ा पापी हूँ। तोभी आज मेरे भाग्य खुल गये, इसमें सन्देह नहीं। वह आज मुझे अपना देवता समझती है। पापी होनेपर भी जब इतना मान, इतना सुख, इतना सौभाग्य प्राप्त हो सकता है, तब निष्पाप होनेपर न जाने कितना सौभाग्य उत्पन्न होगा? मञ्जरी सचमुच देवी होगयी है। अबसे उसीके उपदेशके अनुसार चलना होगा। चलो, मञ्जरीके पास बैठूँ। उसके शरीरकी हवा लगनेसे मन पवित्र होगा। जिसके घरमें ऐसी देवी हो, उसे भला कभी पाप-कर्म करना चाहिये?"

ऐसा विचारकर अद्वैत उठे और धीरे-धीरे चलकर रसोई-घरमें पहुँचे। मञ्जरीने झटपट उनके बैठनेके लिये एक पीढ़ा बिछा दिया और उसे आँचलसे पोंछकर अद्वैतसे बैठनेके लिये कहा।

यथासमय भोजन तैयार होनेपर मञ्जरीने बड़े प्रेमसे थाली परोसी। अद्वैत जबतक भोजन करते रहे, तबतक वह पासही बैठी पंखा झलती रही। खा-पीकर अद्वैत विश्राम करने चले

गये। मञ्जरीने बड़ी भक्तिसे उनकी थालीमें बचा हुआ अन्न खाया।

अद्वैतके दिन बड़े सुखसे कटने लगे। ऐसा आनन्द उन्होंने अपने जीवनमें कभी नहीं पाया था। उनके चित्तमें भी यथेष्ट भावान्तर होने लगा। उन्होंने अपने अतीत जीवनके पृष्ठ खोलकर देखे, तो बहुतसे पापोंकी रेखा खिंची दिखाई पड़ी। वे बराबर मञ्जरीसे धर्म्माधर्म्मके विषयमें बातें करने लगे।

एक दिन मञ्जरीने उनसे कहा,—"मैं बड़ी पापिनी हूँ। मैं धर्म्माधर्म्मकी बात क्या जानूँ? मैं पापकी अग्निमें भस्म हुई जाती थी, कि इतनेहीमें मा-लक्ष्मीकी शरण मिली। उन्होंने मुझे अच्छी तरह समझा दिया, कि जो नारी अपने स्वामीको मनुष्य मानती है, उसकीसी पापिष्ठा और कोई न होगी। ठाकुरजीकी मूर्त्तिको दिखलाते हुए उन्होंने कहा, कि नारीको चाहिये, कि अपने स्वामीकी इन्हींके समान पूजा करे। उन्हीं-के कहे अनुसार मैंने स्वामीको श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णको स्वामी समझकर ध्यान-पूजा करनेका अभ्यास किया। बड़ी चेष्टा करनेपर इस अँधेरे हृदयमें ज्योति छिटकी। अब मैं समझी, कि स्वामी जो कुछ करें, सब ठीक ही है। उनकी भलाई-बुराई-की जाँच करना, महापाप है। तुम्हारे उचितानुचितका विचार करनेवाली मैं कौन? तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो। आशीर्वाद करो, कि मेरी तुम्हारे प्रति सदा ऐसीही मति बनी रहे।"

बड़े सुखसे दिन बीत रहे थे; पर अद्वैतको रह-रहकर

चिन्ता आ घेरती थी। वह बीच-बीचमें अपनी पहलेकी करतूतें यादकर घबरा उठते थे। अन्ततोगत्वा वे एक दिन दाऊजीके मन्दिरमें पहुँचे और बड़ी देरतक उनके सामने माथा टेके पड़े रहे। सिर ऊपर उठातेही उनके नेत्रोंमें जल और हृदयमें शान्ति भर आयी। आजतक उन्होंने कभी इस भावसे देवताको प्रणाम नहीं किया था। प्रणाम करनेके बाद ऐसा सन्तोष भी उनके जीमें कभी न हुआ था।

वहाँसे चलकर वे सीधे हरिदासके घर आ पहुँचे। उस दिन हरिदास बड़े सोचमें पड़ा था। उस बेचारेके घरमें उस दिन चाँवलका एक दाना भी नहीं था। महीनेमें पन्द्रह दिन उसको ऐसा कष्ट सदैवही उठाना पड़ता था। वह कपड़ा बुनने जा रहा था, इसी समय उसकी बहनने आकर उसको यह हाल कह सुनाया। सुनतेही वह काम-धन्धेकी बात भूल गया। इसी समय उसे मा-लक्ष्मीकी सन्ताप-नाशिनी मूर्त्ति दिखाई दी। उन्हें देखतेही उसने बड़ी भक्तिसे उनको प्रणाम किया। इसके बाद मा-लक्ष्मी घरके अन्दर चली आयीं। हरिदास सारी चिन्तासे छुटकारा पा काम करने चला गया। इसी समय कुछ दूरपर अद्वैतको देख उसके प्राण काँप गये। थोड़ी देर बाद उसने देखा, कि वे तो उसीके घर आ रहे हैं! कुछ ही देरमें अद्वैत, हरिदासके पास चले आये और बोले,—"क्यों हरिदास! कुशल तो है? बाल-बच्चे अच्छी तरहसे हैं न?"

हरिदासके तो होशही उड़े हुए थे—प्रणाम कौन करता?

वह बातोंका उचित उत्तर भी न दे सका। बोला,—"भैया! अब यहाँ क्यों आये हो? तुम्हारा पावना तो वसूलही हो गया?"

अद्वैतने कहा,—"इसके लिये कोई चिन्ता नहीं। मैं इस लिये नहीं आया। मैं यही देखने आया हूँ, कि तुम लोग कैसे हो? और भी एक बात है। मैंने जितनोंकी तुमपर डिग्री करायी थी, असल रक़म उतनी नहीं थी। हिसाबमें कुछ भूल हो गयी थी।"

हरिदास बड़ी घबराहटके साथ कहने लगा,—"भैया! मेरी जान मत लो। मुझसे अब एक पैसा भी नहीं दिया जायेगा। मैं अब रुपया कहाँसे लाऊँगा? उस दफ़े तो एक महात्माने आकर तुमसे मेरा पिण्ड छुड़ाया। अब कैसे क्या करूँगा? भैया! माफ़ करो। रुपये-पैसेकी बात छोड़ो।"

अद्वैतने कहा,—"अब तुम्हें रुपया न देना पड़ेगा। मैंने जितना रुपया लिया है, उतना मुझे नहीं लेना चाहिये था। मैंने कुछ अधिक ले लिया है। वह तुम्हें लौटानेकी इच्छा है।"

हरिदासने कहा,—"भाई! जो दे चुका, वह दे चुका। अब लौटानेका काम नहीं है। अबकी बार तुम्हारा रुपया लेकर क्या घर-द्वारसे भी हाथ धोना है? मुझे रुपयेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम यह चर्चा छोड़ो।"

अद्वैतने कहा,—"मैं इस बार तुम्हें जो रुपया दूँगा, उसकी न तो रसीद लूँगा, न दस्तावेज़ लिखाऊँगा, न गवाही-साखी

कराऊँगा। इसलिये डरनेकी कोई बात नहीं है। तुम्हें जो रुपया पाना मुनासिब है, वही देने आया हूँ। कुछ अपनी ओरसे थोड़ेही देता हूँ? फिर क्या भय है?"

हरिदासने कहा,—"मैंने तुम्हें रुपया नहीं दिया, वह दूसरे-का था। फिर मैं क्यों वापिस लूँ? तुम्हें लौटाना ही है, तो जिनका है, उन्हींको दे आओ।"

अद्वैतने कहा,—"मैं उन्हें कहाँ पाऊँगा? तुम्हें उनका पता मालूम है। तुम्हीं उनको दे देना। जबतक वे न मिलें, तबतक रुपया अपने पास रखे रहना।"

हरिदासने कहा,—"नहीं, भाई साहब! मैं रुपये अपने पास न रखूँगा। मुझे उन महात्माका पता नहीं मालूम। हाँ, मा-लक्ष्मीको मालूम है। वे इस समय हमारेही घर आयी हुई हैं। वे आती ही होंगी। उनसे मिलकर जैसा उचित समझना, वैसा करना।"

इसी समय मा-लक्ष्मी, गोपालकी मा और बुआके साथ बातें करती हुई बाहर आयीं। अद्वैत और हरिदास, दोनों उठ खड़े हुए। मा-लक्ष्मी पास चली आयीं। अद्वैतने उन्हें पृथ्वी-पर माथा टेककर प्रणाम किया।

मा-लक्ष्मीने कहा,—"मैं सब सुन चुकी हूँ। कहो, कितने रुपयेका गोलमाल हुआ है?"

अद्वैतने कहा,—"बत्तीस रुपये साढ़े बारह आनेका।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"तुम मेरे साथ आओ। मैं, जिनका

रुपया है, उन्हींके पास तुम्हें ले चलूँगी। वे जैसा कहेंगे, वैसाही किया जायेगा।"

यह कह मा-लक्ष्मी अग्रसर हुईं। अद्वैत उनके पीछे-पीछे चले।

तीसरा परिच्छेद।

मा-लक्ष्मीका मकान।

गोपीनाथपुरके उत्तर-पश्चिमके कोनेपर एक बड़ा भारी मैदान है। उसीके एक सिरेपर घनी बँसवाड़ी और आमके पेड़ोंके बीचमें सनातन मुखोपाध्यायका मकान है। मुखोपाध्याय महाशय एक साधारण और दरिद्र गृहस्थ हैं। उन्हें कुछ थोड़ीसी लाखिराज ज़मीन मिली है, उसीको जोत-बोकर खाने-पीनेभर पैदा कर लेते हैं। घरमें तीन गौएँ हैं, उनका दूध पी-पीकर बच्चे आनन्दमें मग्न रहते हैं। वे घरके ख़र्चसे फ़ाज़िल अनाज बेच दिया करते हैं, जिससे और ख़र्च चलते हैं। घरके पास ही थोड़ीसी पड़ती ज़मीन है। उसे चारों ओरसे बेड़ेसे घेरकर उसीमें साग-सब्ज़ी पैदा करलेते हैं। इसीलिये और कुछ हो चाहे नहीं, उन्हें खाने-पहननेका कोई दुःख नहीं है।

मुखोपाध्याय महाशय बड़ेही परिश्रमी और बलवान् आदमी हैं। उनकी अवस्था प्रायः चालीस सालकी है; पर देह ठीक

पच्चीस वर्षके जवानकी तरह भरी हुई और कान्तिमान् है। खेती-बारी, गो-पालन और अन्य प्रकारके गृहस्थीके काम वे स्वयं अपने हाथों करलेते हैं। वे एक मिनट भी बेकार नहीं बैठते।

सनातन मुखोपाध्याय ख़ूब पढ़े-लिखे भी हैं। वे संस्कृतके पूरे पण्डित हैं और दर्शन-शास्त्रका उन्होंने अच्छा अभ्यास किया है। वे अँगरेज़ी भी अच्छी जानते हैं। यदि वे किसी सरकारी नौकरीमें होते, तो बड़ी जल्दी अच्छासा पद पा जाते; किन्तु उनकी प्रवृत्ति और शिक्षाने उन्हें उस ओर नहीं जाने दिया। वे अर्थ-लालसा और भोग-स्पृहासे दूर रहकर इसी तरहका शान्त और एकान्त जीवन बिताना अच्छा समझते हैं।

उनके परिवारमें केवल उनकी पत्नी, माधवी देवी, दो छोटे-छोटे पुत्र और एक कन्या हैं। सनातनकी सहधर्म्मिणी, माधवी-देवीका रूप अलौकिक और स्वभाव देवोपम है। उन्हें अलङ्कार या सुन्दरताको बढ़ानेवाले और किसी पदार्थकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। आलस्य या विलासका तो वे नाम भी नहीं जानतीं। निरानन्द और असन्तोष उनके पास फटकने भी नहीं पाते। माँगमें सिन्दूरकी बिन्दी दे, मोटे कपड़ेकी लाल साड़ी पहन, हाथोंमें चूड़ियाँ पहने हुई वह सुन्दरी सदा सन्तुष्ट-चित्तसे हँसते-हँसते घरके कुल काम-धन्धे—पति-सेवा, सन्तान-पालन और अन्यान्य कार्य अपने हाथों किया करती है। माधवीकी अवस्था पैंतीस सालकी है, तोभी वे अठारह वर्षकी युवतीकी भाँति परम लावण्यमयी मालूम पड़ती हैं।

जिन्हें लोग 'मा-लक्ष्मी' कहते और बड़े आदरसे देखते हैं, जो सदा लक्ष्मीकी भाँति आनन्द और सन्तोष वितरण करती हुई विपद्में पड़े हुए लोगोंकी सहायता किया करती हैं, वे भी इसी घरमें रहती हैं। नातेमें वे सनातनकी बहन लगती हैं।

सनातनका मकान एकदम मामूली सा है। दो-चार फूसके छाये हुए घरोंमें ही वे लोग रहते हैं। एक घरमें रसोई पकती है, एकमें आये-गये लोग रहते हैं, दोमें वे लोग स्वयं सोते-बैठते हैं और एकमें गायें बँधती हैं। सभी घर ख़ूब साफ़-सुथरे, लिपे-पुते और झाड़े-बुहारे हैं। मकानके चारों ओर बाँसकी टट्टियों और चटाईका घेरा देकर चहारदीवारीसी खींच दी गयी है।

एक तरफ़की टट्टीके बाँस खिसक गये थे और चटाई भी सड़कर अलग होगयी थी। सनातन कई दिनोंसे यह बात देख रहे थे। उनकी पत्नीने भी इस ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था; परन्तु अवकाशके अभावसे वे अबतक उसको ठीक न कर सके थे। आज हाथमें कोई विशेष काम न रहनेके कारण, सनातनने यही काम करना शुरू किया है। उनकी बहन, दूसरी तरफ़ खड़ी हो, उनकी सहायता कर रही हैं।

सनातनने सिरमें अँगोछा लपेट रखा है। गलेमें मोटासा यज्ञोपवीत झूल रहा है। पासमें कुछ बाँसकी पतीलियाँ, रस्सी और चटाई रखी हुई हैं। इस प्रकारके नीच-कर्ममें लगे रहनेपर भी सनातनकी मूर्त्ति कैसी शान्त दिखाई दे रही है! उस

मुखड़ेपर कैसी ज्ञानकी ज्योति छिटक रही है! कैसा शोभामय, सुपरिणत और समुज्ज्वल शरीर है!

सनातन, टट्टीके बाहर और माँ-लक्ष्मी भीतरकी तरफ़ हैं। मा-लक्ष्मी, आवश्यकताके अनुसार रस्सी घुमा देती हैं तथा पतीलियों और चटाईको ठीकसे बैठाती हैं। काममें लगे हुए होनेपर भी दोनों भाई-बहन बड़े प्रसन्न हैं। बीच-बीचमें खूब बातें भी हो रही हैं। मा-लक्ष्मीने बातोंही बातोंमें कहा,—"लेकिन भैया! अभी सुरेन्द्रको लड़का न दे दिया जाता, तो अच्छा होता। शायद वह ठीकसे लड़केका लालन-पालन न कर सकेगा। कहीं कष्टके मारे बच्चा बीमार न पड़ जाये। मर जाये भी तो कोई ताज्जुब नहीं।"

सनातनने कहा,—"नहीं। मुझे ऐसी आशङ्का नहीं होती। सुरेन्द्र कुछ करे या न करे, पर उसकी स्त्री कभी बच्चेको कष्ट न पाने देगी। उनके कोई बाल-बच्चा नहीं है। उसकी लक्ष्मीसी स्त्री सन्तानके लिये लालायित है। स्वामीका पुत्र जानकर वह उसे घर ले आनेके लिये व्याकुल हो रही है। उसके पास बच्चा बड़े आनन्दसे रहेगा। बिना माका बच्चा मा पा जायेगा। बच्चा, पिताके पास रहकर उसके ऐश्वर्यका भोग करता हुआ निश्चयही बड़े सुखसे रहेगा।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"धनुआ शीघ्रही अपने भानजेको देखने आयेगा। वह सदा आताही रहता है। इस बार उसके आनेपर क्या कहोगे?"

सनातनने कहा,—"उसे सुरेन्द्रके घर भेज दूँगा। अब घनुआ और सुरेन्द्र, दोनोंके दिल साफ़ हो गये हैं। उनके मिलनेसे कोई बुराई न होगी। इस व्यवस्थासे घनुआको भी आनन्द होगा।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"लेकिन उस बच्चेके लिये मेरा मन न जाने कैसा कर रहा है।"

सनातनने हँसकर कहा,—"तब यही कहो, कि तुमसे बच्चेको दूर नहीं किया जाता। पर मेरी बहन! मोहमाया जहाँतक कम की जाय, वहींतक अच्छा है। लड़का चाहे अपना हो, या दूसरेका, किसीके लिये अनावश्यक मोह-मायामें लिप्त होना ठीक नहीं। जितनी चाहिये, जितनीके विना काम नहीं चल सकता, जितनी कर्त्तव्य-पालनके लिये आवश्यक है, उतनीसे अधिक माया इस जगत्‌में किसीके प्रति नहीं करनी चाहिये।"

मा-लक्ष्मीने कुछ उत्तर न दे एक लम्बी साँस ली। सनातनने कहा,—"बहन! तुम कुछ कहतीं नहीं, तोभी मैं तुम्हारे जीकी बात समझ रहा हूँ। तुम यही कहना चाहती हो, कि अनेक स्थानोंमें धर्म्म-साधनार्थ भी मायाका प्रयोजन होता है। देवताके प्रति ममता होनी परम धर्म्मकी बात है। उसे छोड़नेसेही अधर्म्म होता है। यह बात ठीक है। परन्तु बहन! इस संसारमें कर्त्तव्योंकी इतिश्री नहीं है। हमारे ऊपर तरह-तरहके कर्त्तव्योंका बोझ है। अन्य प्रकारके कर्त्तव्योंका गुरु-

भार रहते हुए, यदि हम एक कर्त्तव्यका त्याग भी करदें, तो क्या बुरा है? सभी कर्त्तव्योंको समान दृष्टिसे देखनेसेही पूर्णता प्राप्त होती है।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"लेकिन भैया! मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि यह धर्म-नीति स्त्रीके लिये ठीक नहीं। नारीका प्रधान कर्त्तव्य और सर्वश्रेष्ठ धर्म—पतिपरायणता है। वह कर्त्तव्य न कर यदि वह अन्य प्रकारके सैंकड़ों कर्त्तव्योंका पालन करे, तोभी उसको पूर्णता नहीं प्राप्त होती और वह धर्म्मसे गिर जाती है। देखो न, मञ्जरीदासी धर्मशीला और सती थी सही, तोभी वह पतिसे द्वेषके कारण नरककी अग्निमें जल रही थी।"

सनातनने कहा,—"हाँ, तुम्हारीही कृपासे उसको भी शान्ति प्राप्त हुई।"

मा-लक्ष्मी,—"चाहे किसीके करनेसे हुआ हो, पर स्वामीके रूपमें भगवान्‌की आराधना करते-करते अब वह स्वामीको ही भगवान् समझने लगी है। साथही उसकी समस्त यातनाएँ भी जाती रहीं। इसीसे कह रही हूँ, कि नारीके लिये कोई अवस्था, कोई धर्म या कोई कर्त्तव्य, पति-परायणतासे बढ़कर नहीं है।"

सनातनने कहा,—"इसमें क्या सन्देह है? परन्तु यदि उस धर्मका पालन यों न हो सके, तो नारी, मनही मन उस धर्मका पालनकर, पूर्ण आनन्दकी अधिकारिणी हो सकती है।"

मा-लक्ष्मीने फिर एक लम्बी साँस ली। सनातनने कहा,—"लेकिन बहन! अनङ्ग-मञ्जरीमें जो यह परिवर्त्तन हुआ है, उससे मुझे कुछ विशेष आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि, उसने तुमसी देवीका साथ किया है—तुम्हारे दिये हुए उपदेशों और शिक्षाओंके अनुसार चलना सीखा है। लेकिन यह तो देखो, कि अब अद्वैतका भी स्वभाव बदल गया है! इस समय अपने पिछले कुकर्मोंके लिये उसके मनमें ऐसी अनुतापाग्नि धधक रही है, कि वह दिन-रात उसमें जला करता है और उन दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करनेको तैयार है।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"भैया! इसमें भला आश्चर्यकी कौनसी बात है? उसकी पत्नीका स्वभाव अब देवियोंकासा हो गया है। अच्छे सङ्गका प्रभाव तो विचित्र और मन्त्रौषधिकी अपेक्षा बलवान् हुआ ही करता है। अनङ्ग-मञ्जरीके साथसे अद्वैत भी साधु हो गया, इसमें कोई आश्चर्य्य थोड़े ही है?"

सनातनने कहा,—"लक्ष्मी! तुमने सुना है, कि नहीं—अद्वैत अपनी बड़े परिश्रमकी कमाईमेंसे बीस हज़ार रुपये मुझे सेवा-कार्यमें लगानेके लिये दे रहा है?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"हाँ, मैंने यह बात सुनी है। यह भी सुना है, कि सुरेन्द्र भी इस कार्यके लिये पन्द्रह हज़ार रुपये सालाना देनेको तैयार है। भैया! तुम क्या करना चाहते हो?"

सनातनने कहा,—"मैंने अद्वैतको कहा है, कि तुमसे ज़रूरतके मुताबिक़ थोड़ा-थोड़ा करके रुपया लिया जायेगा।

सेवाके भाण्डारमें इस समय रुपयेकी वैसी ज़रूरत नहीं है। सुरेन्द्रको भी कह दिया है, कि इस समय परोपकार-व्रत जिस ढङ्गसे चलरहा है, उसमें इतने रुपयेकी आवश्यकता नहीं है। यदि सब लोगोंकी चेष्टासे यह व्रत और भी व्यापक भावसे चलानेका अवसर प्राप्त होगा, तो निश्चयही रुपयेकी आवश्यकता होगी। उसी समय तुमसे रुपये ले लिये जायेंगे। सुरेन्द्रने इस पर-सेवा-व्रतको और भी विस्तृत रूपसे चलानेकी सम्मति दी है।"

मा-लक्ष्मीने कहा;—"दाऊजीकी दयासे इस सदनुष्ठानकी उत्तरोत्तर वृद्धि होगीही।"

इसी समय लावण्यमयी माधवीदेवी हँसतीं हुई वहाँ आ पहुँचीं और बोलीं,—"सारा दिन दोनों भाई-बहन पट्टीही बाँधनेमें लगे रहोगे, या यह भी देखोगे, कि कितना दिन चढ़ आया?"

सनातनने कहा,—"सचमुच बड़ी देर हो गयी। लक्ष्मी! तुम जाओ—अब थोड़ासा काम बाक़ी रह गया है। मैं इसे अभी पूरा करके आता हूँ।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"मैं न जाऊँगी। भाभीसे मेरी लड़ाई हुई है। सवेरे सब लड़के भुने हुए चाँवल खा रहे थे—मैंने माँगे, तो इन्होंने दियेही नहीं। बताओ, यह दिल फटनेकी बात है, या नहीं?"

माधवीने कहा,—"क्यों झूठमूठ भाईसे मेरी शिकायत कर रही हो? अच्छा, देवताजी! मेरी बात भी सुन लीजिये।

कल रातके आपकी बहनकी तबियत कुछ ख़राब हो गयी थी, इसी लिये मैंने सवेरे इन्हें भुने हुए चाँवल नहीं दिये। इसमें मैंने क्या बुराई की?"

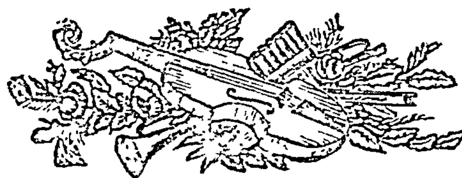
सनातनने कहा,—"तुम जिस दिन बुराई करोगी, उस दिन यह चाँद-सूरजकी बत्तियाँ बुझ जायेंगी। लक्ष्मी! तुमने अपनी तबियत ख़राब होनेकी बात मुझसे क्यों नहीं कही?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"तबियत वैसी कुछ ख़राब नहीं थी—सिरमें दर्द हो गया था। भाभीने चाँवल न देनेका इसे बहाना मात्र बना लिया। भैया! तुम्हारी कृपासे मुझे कभी रोग-व्यथा नहीं व्यापती।"

टट्टी बाँधनेका काम पूरा हो गया। सनातनने कहा,—"चलो, अब काम ख़तम हो गया। अब चलकर खाना-पीना चाहिये। माधवी-देवी! आज खानेको क्या-क्या चीज़ें बनी हैं?"

माधवीने कहा—"मेरी लक्ष्मी-ननदने जो कुछ लाकर दिया, वही बना है।"

यह कह माधवीने हँसते हुए मा-लक्ष्मीकी गर्दनमें बाँह डाल दी। सब हँसते हुए वहाँसे चल दिये।



चौथा परिच्छेद।

सन्तान!

शाजीवपुरके ज़मीन्दार सुरेन्द्र बाबूके घरमें एक सुन्दरी युवती, एक डेढ़ वर्षके सुन्दर बालकको गोदमें लिये, प्यारके साथ खिला रही है। यह सुन्दरी और कोई नहीं, सुरेन्द्र बाबूकी सहधर्म्मिणी राजबाला है। यह बालक, सुरेन्द्र बाबूकी पाप-प्रवृत्तिका जीता-जागता परिचय—गिरिबालाके साथ उनके अनुचित प्रेमका परिणाम है। लड़का बड़ाही सुकुमार, पुष्ट-देह और सर्वाङ्ग-सुन्दर है। राजबाला इस लड़केको अपने पेटकी सन्तान समझती है और इसे पाकर परम आनन्दित है। लड़केका नाम कुछ और ही है, तोभी वह उसे प्यारके साथ 'सोनेका चाँद' अथवा संक्षेपमें "चाँद" कहा करती है। राज-बालाको और कोई काम नहीं है। दास-दासियाँ घरके सब काम-धन्धे करती हैं और वह केवल दिन-रात इसी बच्चेको खिलाया करती है। एक क्षण भी इसे छोड़कर नहीं रहती।

तीसरे पहरका समय है। राजाबाला चाँदको गोदमें लिये अपने कमरेमें घूम रही है। साथही साथ कितनी ही प्यारकी बातें कहकर उस बालकको चूमती-पुचकारती है। चाँद, वह सब बातें समझे या न समझे, पर न जाने क्या-क्या बकता और हँसता है।

धीरे-धीरे सुरेन्द्र बाबू भी वहाँ आ पहुँचे। वे दूरहीसे बच्चे और राजबालाकी यह हँसी-खुशी देख बड़े ही सुखी हुए। मनहीमन उन्हें एक प्रकारकी लज्जा भी हुई। कुछ दिन पहले, इस अतुलनीया सुन्दरीके साथ उनका मनही नहीं मिलता था। वे इसे फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहते थे। वे इस गुणमयी, लावण्यमयी स्वर्ण-प्रतिमाके साथ भर-मुँह बातें भी न करते थे। यही सब सोचकर उन्हें बड़ी लज्जा हुई। साथही उस सुन्दरीकी गोदमें उस नयन-सुखकर नन्दनको देखकर भी उन्हें बड़ी शर्म मालूम हुई। वह बच्चा, उनके लिये लज्जा दिलानेवाला और उनकी पत्नीके लिये घृणाका पात्र था, तोभी राजबाला उसे निष्कपट स्नेहके साथ, अपने पेटके जायेकी तरह प्यारके साथ पोस रही है। मातृ-हीन शिशुने स्नेहमयी माता पा ली है; पितृ-परित्यक्त पुत्रने पिताका आश्रय पा लिया है, पापके फलसे पैदा, परिचय-हीन शिशु, सबके सामने पिताके द्वारा घरमें रख लिया गया है। उस बच्चेकी तो सब तरहसे भलाई ही हुई है; पर पिताकी शर्मिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं है। सालही पर पहले, सुरेन्द्र बाबू इस बातसे कुछ भी न शर्माते और छाती अकड़ाये मनुष्य-समाजके मस्तकपर पदाघात करते; पत्नीके ज़रा भी कुछ कहनेपर उसके कोमल कलेवरको मारे बेतोंके लहू-लुहान कर देते। परन्तु अब सुरेन्द्र बाबू वह नहीं रहे। वे बिल्कुल बदल गये हैं। उनके हृदयमें एक विचित्र, आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है।

मुँह फेरतेही राजवालाने सुरेन्द्र बावूको देखा। देखते ही मुसकराती हुई बोल उठी,—"क्यों? दूर क्यों खड़े हैं? पास आनेमें कुछ हर्ज है क्या? दासीने फिर तो कोई अपराध नहीं कर डाला?"

सुरेन्द्र आगे बढ़ते हुए बोले,—"वाह, तुम क्यों अपराध करने लगीं? जो सदाका अपराधी है, उसीको पास आते डर लगता है।"

राजवालाने कहा,—"क्यों? क्या मैं कोई बाघ-भालू हूँ, जो काट खाऊँगी? चले आइये, डरकी कोई बात नहीं है। पुरानी बातें कह-कहकर क्यों मुझे लज्जित करते हैं? आप क्यों अपराधी होने लगे?"

सुरेन्द्रने कहा,—"मेरे अपराधोंकी गिनती नहीं हो सकती। क्या-क्या कहूँ! एक अपराधका नमूना तो तुम्हारी गोदमें ही है।"

यह सुन राजवाला सुरेन्द्रके पास चली आयी। इसके बाद बोली—"अपराध करके यदि ऐसा सोनेकासा चाँद मिले, तो वह अपराध नहीं, पुण्य है। कितना भी पुण्य करनेसे ऐसा सोनेकासा चाँद नहीं मिलता।"

सुरेन्द्रने कहा,—"चाहे जो हो, पर जिस प्रकार यह सोनेका चाँद मिला है, वह क्या कभी पुण्य कहा जा सकता है? क्या वह अपराध नहीं है?"

राजवालाने कहा,—"छिः! आप यह कैसी बात कहते हैं?

पुरुषोंको बहुतसी बातोंमें बड़ी स्वाधीनता होती है। उस स्वाधीनताका यदि वे व्यवहार करें, तो इसमें उनका कोई अपराध नहीं। आपने उसी स्वाधीनताके द्वारा यह सोनेका चाँद पाया है। इसमें कोई हर्ज थोड़े ही है?"

सुरेन्द्रनाथने कहा,—"यों तो सभी बातें हँसीमें उड़ा दी जा सकती हैं। मैंने जो इतने दिनोंतक कभी तुम्हें भर नज़र नहीं देखा, मेरे अत्याचारसे तुम्हारी देह सूखकर ठठरी हो गयी, तोभी मैंने कोई परवा नहीं की—यह क्या मेरा कम अपराध है?"

राजबालाने कहा,—"कुछ भी अपराध नहीं है। आप मेरी ओर देखें या न देखें, आपकी भक्ति करना, मन-ही-मन आपके चरणोंकी चिन्ता और पूजा करनाही मेरा परम धर्म है। मेरे उस धर्ममें, उस सुखमें, तो कभी कोई कमी न होने पायी? रही अनादरकी बात, सो स्वामीके पास रहनाही नारीके लिये परम सुखका विषय है। उस सुखसे तो आपने कभी मुझे वञ्चित नहीं किया? फिर कौनसा अनादर हुआ?"

सुरेन्द्रने कहा,—"इतने भारी अत्याचारको यों हँसकर उड़ा देना, बड़ी विचित्र शक्तिका काम है, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु उस बातका विचार इस समय छोड़ो। इस समय इस लड़केका मामा इसे देखने आया है। ज़रा इस लड़केको मेरी गोदमें दे सकती हो?"

यह सुन राजबालाने भीतभावसे लड़केको कलेजेसे चिपका लिया। बोली,—"वह क्यों आया है? इसमें कोई सन्देह नहीं,

कि लड़का उसीकी वहनके पेटका है, मेरा नहीं; पर यह आपका बेटा है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है न? आपका लड़का है, इसलिये इसपर मेरा भी अधिकार है। ख़ासकर जब इसकी माँ नहीं है, तब यह मेराही लड़का है। मैं जिस-तिसके पास इस लड़केको न ले जाने दूँगी। आप माँग सकते हैं, क्योंकि आपका पुत्र है; पर धन्नूका इस लड़केपर कोई दावा नहीं है। वह क्यों इसे देखने आया है?"

सुरेन्द्रने कहा,—"वह दावा जताने नहीं आया, लड़केको ले जानेके लिये भी नहीं आया। इस लड़केके साथ उसके रक्तका सम्बन्ध है, इसीलिये सिर्फ़ देखने आया है।"

राजवालाने कुछ सोचकर कहा,—"अच्छा, आपही ले जायें और आपही मेरे पास आकर दे जायें। मैं इसे और किसीको नहीं दे सकती। देखना, देर न लगाना। अधिकसे अधिक आधे घण्टेके लिये मैं इसे छोड़ सकती हूँ। यह स्वीकार हो, तो ले जाइये।"

सुरेन्द्रने कहा,—"अच्छी बात है। मैं ठीक तुम्हारे कहे अनुसार काम करूँगा।"

राजवालाने कहा,—"ठहरिये—मैं ज़रा इसे गहने-कपड़े पहना दूँ, बाल सँवार दूँ, एक दासीको साथ जानेके लिये कह दूँ।"

यह कह राजवालाने एक दासीको पुकारा और उसके आनेपर उससे बच्चेके गहने-कपड़े मँगवाये। इसके बाद उसने सुरेन्द्रसे पूछा,—"इस समय धन्नू क्या करता है?"

सुरेन्द्रने कहा,—"कुछ भी नहीं। बहनकी मृत्यु होनेके बादसे वह बड़ा उदास हो रहा है।"

राजबालाने कहा,—"जो होना था, वह तो होही गया, अब वह अपनी माँ, स्त्री और बच्चोंको लाकर इसी गाँवमें क्यों नहीं रहता? आप उसके लिये एक अच्छासा मकान बनवा दें और कुछ रुपये देकर कोई रोज़गार करा दें,तो बड़ी अच्छी बात हो।"

सुरेन्द्रने कहा,—"तुम्हारे मुँहसे यह बात सुननेके पहलेही मैंने उससे ऐसा प्रस्ताव किया था, पर वह कहता है, कि अब मुझसे इस गाँवके लोगोंके सामने मुँह नहीं दिखाया जायेगा। अपनी स्त्रीके सामने जाते हुए भी मुझे बड़ा सङ्कोच मालूम होता है।"

इतनेहीमें दासी गहने आदि ले आयी। राजबाला बच्चेको गोदमें लिये वहीं बैठ गयी और उसे गहने-कपड़े पहनाती हुई बोली,—"उसके मनसे यह लज्जा और सङ्कोच सहजही दूर किया जा सकता है। अगर आप चेष्टा करके यह काम कर दें, तो मैं बड़ी सुखी हूँगी।"

लड़का गहने-कपड़े पहनते हुए आनाकानी करने लगा। राजबाला उसे बार-बार चूमने, डराने और धमकाने लगी; पर वह हाथ-पैर उछालने और कपड़े आदि पहननेमें बाधा देने लगा। तब राजबालाने डपटकर कहा,—"बदमाश कहींका! चुप रह।" यह डाँट सुन लड़केने अभिमानके मारे मुँह फुला लिया और रोने लगा। राजबाला बहुत देरतक उसे पुचकारती रह गयी।

सुरेन्द्रने कहा,—"मैं तुम्हारे कहे अनुसार धनूके लिये कोई अच्छासा प्रबन्ध कर दूँगा। एक बात तो मैं तुमसे कहनाही भूल गया। उसकी बहन जो मेरी घड़ी, चेन, अँगूठी, नोट, मुहर और रुपये ले भागी थी, वह सब धनुआ लेता आया है। एक चीज़ भी ख़राब नहीं होने पायी।"

राजबालाने कहा,—"आप वह सब चीज़ें उसीको दे डालें।"

सुरेन्द्रने कहा,—"वह नहीं लेता।"

राजबालाने कहा,—"वह सब हमलोग लेकर क्या करेंगे? किसी अच्छे काममें लगा देना चाहिये। बच्चेका पहनाना-सँवारना प्रायः समाप्त हो गया है। सिर्फ़ बाल सँवारनेकी देर है। मैं देरी कर रही हूँ, इस लिये आप नाराज़ तो नहीं होते?"

सुरेन्द्रने कहा,—"तुम्हारे कामसे मुझे नाराज़ी नहीं हो सकती। तुम क्या मुझे लजवानेके लिये ऐसी बात कहती हो?"

राजबालाने कहा,—"जब आप नाराज़ नहीं होते, तब एक बात कहती हूँ। आपके बैठकख़ानेमें आकर जिन्होंने संन्यासी-रूपमें आपको दर्शन दिये थे, वे आज कई दिन पहले मुझे दर्शन दे गये थे; पर फिर न आये। आपने तो उन्हें दो बार देखा; पर मैं दुबारा न देख सकी। गोपीनाथपुरमें जाकर मैं देवताकी मूर्त्तिके भी दर्शन न कर सकी। आज मैंने आपके मुँहसे सुना है, कि वहीं मा-लक्ष्मी भी रहती हैं। उनके दर्शनोंसे मनुष्योंके पाप-ताप दूर हो जाते हैं। मेरे भाग्यमें क्या उन देवीके दर्शन करना बदा नहीं है? क्या आप इसका उपाय कर देंगे?"

सुरेन्द्रने कहा,—"अच्छी बात है। मैं शीघ्रही इसका प्रबन्ध करूँगा। इस समय बच्चेको झटपट मेरी गोदमें दे दो।"

राजबालाने कहा,—"लीजिये—अब ले जा सकते हैं।"

गलेमें हीरेका हार, देहमें मोतियोंसे भरा, सच्चे कामका कुर्त्ता, हाथोंमें जड़ाऊ कड़े और कानोंमें सोनेके कुण्डल पहनाकर राजबालाने लड़केको अच्छी तरह सजा दिया। स्वभाव-सुन्दर शिशु और भी शोभायमान हो गया। सुरेन्द्रने उसे गोदमें लेना चाहा; पर बच्चेने और भी ज़ोरसे माँका गला पकड़ लिया। वह पिताके पास जानेको राज़ी न हुआ। अन्तमें सुरेन्द्रने ज़बर-दस्ती उसे अपनी गोदमें ले लिया। राजबालाके आज्ञानुसार दासी साथही चली। सुरेन्द्र वहाँसे चल दिये।

राजबाला बड़ी देरतक उनकी ओर देखती हुई बोली,—"आपसे और अपराधसे क्या निस्बत? जिनके अपराधसे भी ऐसा सोनेका चाँद पाया जाता है, उनकी क्योंकर पूजा करनी चाहिये, यह मैं अनजान स्त्री क्या जानूँ? आप मुझसे क्यों लजाते हैं? क्यों सङ्कोच करते हैं? मैं तो आश्रिता, दासीमात्र हूँ। हाँ, इतने दिनोंतक आप पास नहीं आते थे, इसलिये चरण-सेवाका अवसर नहीं मिलता था। किन्तु इस समय वह अधिकार पाकर मैं धन्य हो गयी हूँ।"

यह कहती हुई राजबाला एक तरफ़को चल दी।



पांचवाँ परिच्छेद।

परिचय।

शान्तिपुरके पूर्वोत्तर-प्रान्तमें जो छोटासा गाँव है, वहींके एक पुराने और टूटे-फूटे मकानमें, जो मामूली फूसका छाया हुआ है, एक रोगी मारे तकलीफ़के पड़ा-पड़ा छटपटा रहा है। वह एक मामूलीसे तख़्तेके ऊपर फटी-पुरानी कथरी बिछाये सोरहा है। सिरहानेकी ओर एक पीतलके ग्लासमें पानी रखा हुआ है। वह बीच-बीचमें प्यास लगनेपर हाथ बढ़ाकर वही पानी पी लेता है। उसके पास कोई आदमी नहीं है और घरमें असबाबके नाम केवल एक लोटा, एक घड़ा और दो हाँड़ियाँ हैं। सारे मकानमें कूड़ा-कर्कट फैला हुआ है, जिससे घरके मालिककी दुर्दशाका पूरा-पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। रोगीकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। प्रवेश-द्वारमें भीतरसे ब्योंड़ा नहीं लगा है, केवल किवाड़ोंके पल्ले भिड़ा दिये गये हैं। यह रोगी और कोई नहीं, हमारा वही पूर्व-परिचित कालिदास चक्रवर्त्ती है।

कालिदास आज तीन महीनेसे तरह-तरहके रोगोंका शिकार होरहा है। उसे थोड़ा-थोड़ा ज्वर आता है, भूख बिल्कुलही नहीं लगती, बड़ीही दुर्बलता और अवसन्नता है। अगर ठीक-ठिकानेसे चिकित्सा होती, अच्छी-अच्छी औषधियाँ खानेको

मिलतीं, तो वह जल्दीही आराम पा जाता, ऐसी दुर्दशा न भोगता। पर आज उसके पास न तो पैसा है और न कोई मददगार—न बन्धु है, न बान्धव। रहनेका मकानतक ठीक नहीं है। ऐसे आदमीको कौन पूछे? कौन उसकी चिकित्सा करे? उसकी तीमारदारी करनेवाला कहाँसे आये? इसीसे उसकी बीमारी बराबर बढ़तीही चली गयी और वह खाट सेने लगा। किसी समय जब उसकी ख़ूब चलती थी, पासमें पैसा था, अनेक आदमी उसकी तावेदारी किया करते थे। लेकिन इस समय उसका कारबार चौपट हो गया है; घर-द्वार हाथसे निकल गये हैं; जो कुछ पल्ले था, वह सब ख़र्च हो गया है; नेही-नातेदार, यार-दोस्त, सब उससे किनारा कर गये हैं। एक दयालु कायस्थने उसे रोगसे पीड़ित और दुर्दशामें पड़ा हुआ देख, उसे अपना यह मकान रहनेके लिये दे दिया है। पहले तो उन्होंने उसे ब्राह्मण जान, अपनी सामर्थ्य-भर आर्थिक सहायता भी दी थी; पर अब कई कारणोंसे वह सहायता भी उसे नहीं मिलती।

कालिदासकी दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं है। वह पड़ा-पड़ा सोच रहा है,—"अब मैं न बचूँगा। जीकरही क्या होगा? मेरी दुर्दशाकी सीमा नहीं है—ऐसी अवस्थामें तो मर जानाही अच्छा है। मेरे पास क्या-क्या नहीं था? घर-द्वार, रुपया-पैसा, माल-असबाब, सब कुछ था, पर आज कुछ भी नहीं है। क्यों ऐसा हुआ? जो हुआ, वह उचितही हुआ।

मैंने एक कुलटा, अविश्वासिनीकी बातोंमें आकर अपनी लक्ष्मी-सरीखी पत्नीको खाना-कपड़ा और रहनेका स्थानतक नहीं दिया—लात मारकर घरसे बाहर निकाल दिया। आज तरङ्गिणी मेरा सब कुछ छीन-झपटकर सुखके समुद्रमें डुबकियाँ लगा रही है और मेरी स्त्रीने मेरे पैरोंकी धूल भी माँगनेपर नहीं पायी—प्यारकी एक बात भी मेरे मुँहसे नहीं सुनी। आज यदि वह रहती, तो क्या मेरी ऐसी दशा होने पाती ? वह भीख माँगकर लाती और मेरी सेवा-शुश्रूषा करती। पर आज वह कहाँ है ? मैंने अज्ञानमें पड़कर सब कुछ खो दिया। अपने पापका मैंने हाथों-हाथ फल पा लिया। अगले जन्ममें भी पाऊँगा।"

यही सोचते-सोचते रोगीकी आँखें भर आयीं। उसने फिर आपही आप कहा,—"अगर दो-चार बताशे या एक टुकड़ा मिश्रीका पा जाता, तो उसेही मुँहमें डालकर पानी पीता। खाली-खाली पानी तो अब नहीं पिया जाता। पर पैसा कहाँ पाऊँ ? पैसा भी रहता, तो कौन ला देता ?"

अछता-पछताकर उसने ग्लास उठाकर पानी पी लिया। फिर कहने लगा,—"इस संसारमें जिसके स्त्री नहीं, उसके कोई नहीं। मेरे लक्ष्मी सरीखी पत्नी थी—पर उसे खोकर मैंने सब कुछ खो दिया।"

इसी समय सहसा उस घरका द्वार खुल गया और एक स्त्री तथा एक पुरुषने उसमें प्रवेश किया। आतेही स्त्रीने कहा,—"आपका कुछ भी नहीं गया। आप हताश न हों।"

अहा, कैसा मधुर स्वर—कैसी ढाँढ़स बँधनेवाली बात है! उस स्त्रीके आतेही सारा घर मानों जगमगा उठा। रोगीके मनमें आशा और उत्साह भर गया। स्त्रीके हाथमें एक छोटीसी पोटली थी, उसे खाटके पासही रखकर वह उस रोगीका चेहरा भली भाँति देखने लगी। उसके साथवाले पुरुषने कहा,—"चक्रवर्त्ती बाबू! क्या आप मुझे पहचानते हैं? मैं कृष्णनगरका रहनेवाला, यदु हालदार हूँ।"

चक्रवर्त्तीने कहा,—"हाँ पहचानता हूँ। आपके साथ ये कौन हैं?"

यदुने कहा,—"क्या आप इन्हें नहीं पहचानते? इधरका कौन आदमी इन्हें नहीं पहचानता? इनका नाम मा-लक्ष्मी है।"

कालिदासने कहा,—"सुना था, कि वे कोई देवी हैं। इन्हें देखकर सचमुच मालूम होता है, कि ये देवी ही हैं। पर मेरे जैसे पापी नराधमपर देवीकी क्योंकर दया हुई?"

यदुने कहा,—"ऐसी बात न कहिये। मा-लक्ष्मी सबपर बराबर दया रखती हैं। आप तो ब्राह्मण हैं, शिरोमणिही ठहरे, ये चाण्डालपर भी ऐसीही अपार दया रखती हैं।"

कालिदास,—"तो मैं देवीको प्रणाम करनेके लिये उठूँ?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"मैं आपसे उमरमें बहुत छोटी हूँ। आप मेरे गुरु-तुल्य हैं। प्रणाम करनेकी बात कहकर मुझे पाप-भागिनी न बनाइये। मैं आपके चरणोंकी धूल अपने सिर-माथेपर चढ़ाती हूँ।"

यह कह मा-लक्ष्मीने कालिदासके चरणोंपर सिर रख दिया। इसके बाद अपनी पोटलीमेंसे मिश्री, बताशे, बेदाना और सिंघाड़े आदि चीज़ें निकालीं। उन्होंने सबसे पहले रोगीको एक सिंघाड़ा खानेके लिये दिया। इसके बाद थोड़ासा बेदाना दिया। खातेही रोगीका जी हरा हो आया, वह बोल उठा,—"अहा! प्राण शीतल हो गये! आप साक्षात् स्वर्गकी देवी हैं। मैं अबसे आपको देवीही कहकर पुकारा करूँगा।"

इसके बाद मा-लक्ष्मी तो रोगीकी शुश्रूषा करने लगीं और यदु घरकी सफ़ाई करने लगा। तदन्तर यदु बाज़ारसे मिट्टीका एक नया घड़ा ले आया और उसमें पीनेके लिये अच्छा पानी भर दिया। इसके बाद वह वहाँसे चला गया। उसके लौट आनेमें बड़ी देर हुई। वह एकबारगी दिनके तीसरे पहर लौटा। उसके साथ दो मज़दूर भी थे। उनके ऊपर लदवाकर वह बहुतसे सामान ले आया था। रज़ाई, चादर, तकिया, चटाई, कम्बल, दूध, कढ़ाई, लकड़ी, हुक्का, चिलम, टिकिया, तम्बाकू, लालटेन, दियासलाई, घड़ा, लोटा, थाली, झारी, तश्तरी, ग्लास, कटोरे, आदि सभी आवश्यक सामान वह अपने साथ लेता आया था। चीज़-वस्तुओंसे सारा घर भर गया।

तुरतही कालिदासको उठाकर उस तख़्तेपर अच्छासा साफ़-सुथरा बिछावन बिछा दिया गया। सिरके पास तकिया रख दिया गया। इसके बाद कालिदासको उसपर सुला दिया गया। उसने सोनेके बदले थोड़ी देर बैठे रहनेकी इच्छा की।

तुरतही उसे तकियेके सहारे बैठा दिया गया। इसके बाद यदुने उसे हुक्केपर चिलम-तमाखू रख, तम्बाकू पीनेके लिये दी। इस भाग्य-परिवर्त्तनको देख कालिदास आश्चर्यमें पड़ गया।

मा-लक्ष्मी झटपट जाकर दूध गरम कर लायीं। धीरे-धीरे उसे पीकर कालिदासका जी और भी हरा हो गया। इसके बाद उन्होंने कालिदासको ख़ूब अच्छे-भले कपड़े पहना दिये। सन्ध्या हुई। लालटेन जला ली गयी। एक चिराग़ भी जला दिया गया। यदुने ज़मीनपर कम्बल बिछाकर आसन जमाया। जहाँका दृश्य कुछही पहले बड़ाही घृणा-व्यञ्जक और विषाद-पूर्ण था, वहाँ थोड़ीही देरमें प्रीति और आनन्दसे भरे हुए दृश्य दिखाई देने लगे।

मा-लक्ष्मीके आँचलमें एक औषध बँधी थी। उसे उन्होंने कालिदासको खिला दिया। अभागा कालिदास यह सब साज-सामान, सेवा-शुश्रूषा और सबसे बढ़कर उस देवीका परिचय पा अवाक् हो रहा। उसने कहा,—"देवी! मैं बड़ा भारी पापी हूँ। आप लोगोंने जो मेरे लिये इतना परिश्रम उठाया, इतना ख़र्च-वर्च किया, वह बिल्कुलही व्यर्थका काम किया है।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"आप पापी हों, चाहे पुण्यात्मा, इससे हमें कुछ मतलब नहीं। हम सिर्फ़ यही चाहते हैं, कि आप अच्छे हो जायें। ख़र्च-वर्चकी तो बात ही दूर-किनार है, हमलोग इसके लिये प्राणतक देनेको तैयार हैं। आप किसी तरहकी चिन्ता न करें।"

कालिदासने कहा,—"अब मेरा जी बहुत अच्छा मालूम

होता है। सिवा थोड़ी-बहुत दुर्बलताके और कोई रोग नहीं मालूम पड़ता। अब रात हुई। आप लोगोंको यहाँ कष्ट होगा, अतएव अपने घर चले जाइये। कल किसी समय आकर मेरी खोज-खबर ले जाइयेगा, तो मैं अपनेको धन्य मानूँगा।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"हम लोग कहीं न जायेंगे। आपके बिलकुल भले-चङ्गे हो जानेपर अलबत्ता चले जायेंगे। आप थोड़ासा और दूध पीलें—ज़रा-मरा बेदाना भी खा लें, तब सोइयेगा। हम लोगोंके लिये आप कुछ चिन्ता न करें।"

रात बीती, प्रभात हुआ। सवेरा होते ही एक नाईको बुलाकर कालिदासकी हजामत बनवा दी गयी। फिर औषध और पथ्यकी व्यवस्था की गयी। तीन दिन बाद कालिदास एकदम अच्छा हो गया।

चौथे दिनकी बात है। दिनके दस बजे हैं। कालिदास भोजनकर शय्यापर बैठा हुआ तमाखू पी रहा है। उसे एकदम अच्छा होगया देख, यदु हालदार आज सवेरे ही किसी कामसे बाहर चला गया है। सम्भव है, कि दोपहरमें चला आये। साँझतक आजानेमें तो कोई सन्देहही नहीं है।

मा-लक्ष्मी, घरके सब काम-धन्धे पूरे कर, चक्रवर्त्तीकी खाटके पास आकर बोलीं,—"क्या एक बीड़ा पान ले आऊँ?"

कालिदासने कहा,—"नहीं! एक तो मैं वैसेही महापापी हूँ, दूसरे आप मुझपर इतना उपकार कर मुझे और भी पाप-भागी बना रही हैं। आप देवी हैं—आप मेरी इतनी सेवा कर

रही हैं, इससे क्या मेरे सिरपर पाप नहीं चढ़ता ? मैं अब भला-चङ्गा हो गया। अब आप मेरी सेवा-शुश्रूषा न करें। आपहीने मेरे प्राण बचाये !"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"स्त्रियोंकी तरह पुरुष कभी घरके काम-धन्धे नहीं कर सकते। आप अभी हालमेंही बीमारीसे उठे हैं। इस समय बिना किसी स्त्रीकी सहायताके आपका काम नहीं चल सकता। आप एकदम अच्छे होकर किसी अच्छीसी जगहमें चले जायें, तभी मैं कहीं जाऊँगी।"

कालिदासने कहा,—"यह मैं मानता हूँ, कि घरके काम पुरुषोंसे नहीं हो सकते, स्त्रियाँही कर सकती हैं; पर बीमारी दूर हो जानेपर भी एक देवीसे सेवा कराकर मैं क्यों पाप सञ्चय करूँ ? जन्म-भरके लिये मैं किसीकी सेवाका अधिकारी था, पर अब जब वह व्यक्ति नहीं है, तब मुझे सुख कहाँ ? आप कै घड़ी मेरी सेवामें रहेंगी ?"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"आप यह कैसी बात कह रहे हैं ?"

कालिदासने कहा,—"आपसे झूठ क्यों बोलूँ ? मैं एक चतुरा वार-नारीके प्रेममें डूबकर अपनी विवाहिता पत्नीको भूल गया था। वह बेचारी सती-साध्वी स्त्री, जब दाने-दानेको तरसने लगी, तब मेरे पास आयी। पर मैंने उसी कुलटाके बहकावेमें आ अपनी उस धर्म्म-शीला पत्नीको लात मारकर घरसे निकाल दिया। पर अब मेरी आँखोंकी पट्टी दूर हो गयी है। इस समय सिवा रोनेके और कोई उपाय नहीं है।"

कहते-कहते कालिदासकी आँखें भर आयीं। मा-लक्ष्मीने पूछा,—"आपकी स्त्री कहाँ गयी?"

कालिदासने कहा,—"फिर मैंने उसकी कोई खोज-ख़बर नहीं ली। शायद वह गङ्गामें डूब मरी।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"तब तो बखेड़ाही दूर हुआ। अब उसके लिये रो-कलपकर क्या होगा?"

कालिदासने कहा,—"ऐसी बात न कहें। मैं जबतक जीऊँगा, तबतक उसीकी याद करता रहूँगा। मैंने अच्छी तरह दुनिया देख ली। यहाँ सभी कुछ असार है—सभी लोग स्वार्थी हैं—सब चीज़ें चार दिनकी चाँदनी हैं। प्यार करने योग्य सामग्री केवल अपनी धर्म-पत्नीही है। अगर वह मिल जाती, तो मैं उसे लेकर भीख माँग खाता, तोभी सुखी रहता। ओह, बेचारी मेरे पैरोंकी धूल लेने आयी, पर मैंने उसका कितना अपमान किया! यदि आज मैं उसे देख पाता, तो उसके पैरों पड़कर अपने अपराधकी क्षमा-प्रार्थना करता।"

अबके फिर कालिदासकी आँखोंमें आँसू आ गये। मा-लक्ष्मीने कहा,—"जब उसके लिये आप इतना कष्ट पा रहे हैं, तब आपको उसका पता लगाना चाहिये। वह कैसी थी, कुछ याद है?"

कालिदासने कहा,—"नहीं! मैंने विवाहके बाद उसे अच्छी तरह देखाही नहीं। सिर्फ़ एक दिन देखा था—वह चेहरा मुझे अबतक नहीं भूलता। उस दिन मैंने उसकी जो बोली सुनी थी, वह आजतक मेरे कानोंमें गूँज रही है।"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"आप यदि मुझे उसकी हुलिया बता दें, तो मैं ढूँढ़कर ला दूँगी।"

कालिदासने कहा,—"क्या कहूँ? मुझसे तो कुछ कहाही नहीं जाता। कहनेका साहस नहीं होता। यदि उसकी देहका रङ्ग कुछ और उज्ज्वल तथा ज्योतिर्मय होता, यदि उसकी आँखोंमें और भी थोड़ासा दया-भरा कोमलभाव होता, तो—क्या कहूँ? कहनेका साहस नहीं होता—तो वह आपकीही तरह होती। उसका कण्ठस्वर यदि और थोड़ा गम्भीर होता, तो आपकासाही मालूम पड़ता। कहते हुए भय होता है, पर आपसे क्या छिपाऊँ, मुझे कितनीही दफ़े आपका स्वर सुनकर चौंकना पड़ा है।"

धीरे-धीरे मा-लक्ष्मी उस शय्याके एक कोनेमें आ बैठीं। कालिदास कहता गया,—"वह मानवी थी, आप देवी हैं। मेरी यह तुलना अनुचित है। तोभी उसके कार्य्यों और व्यवहारोंपर इस समय विचार करता हूँ, तो मालूम होता है, कि उसमें भी देवत्व भरा हुआ था।"

मा-लक्ष्मी और भी पास चली आयीं। उनका जी भर आया। उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेरे हुए कहा,—"यदि उसका पता मिल जाये, तो क्या आप उसे अपने चरणोंमें स्थान देंगे?"

कालिदासने चौंककर कहा,—"बस, ठीक यही स्वर है! मेरी विराजमोहिनीका ऐसाही स्वर था। चरणोंमें स्थान

देनेकी बात क्यों कहती हैं ? मैं तो उसे एक बार देखकर ही अपनेको धन्य मानूँगा। हाय, वह कहाँ गयी ?"

यह कह कालिदास रोने लगा। मा-लक्ष्मीका भी रोते-रोते बुरा हाल हो रहा था। वे आँखोंसे बेरोक आँसू गिराती हुई बोलीं,—"प्राणेश्वर ! यह लो, तुम्हारी दासी विराजमोहिनी तुम्हारे चरणोंमें उपस्थित है।"

यह कह, वे कालिदासके पैरोंपर गिर पड़ीं और फूट-फूटकर रोने लगीं।

छठवाँ परिच्छेद।

मा-लक्ष्मीकी उदारता।

एक दिन, गम्भीर रात्रिके समय, बहुतेरे डाकू तरङ्गिणीके घरमें घुस पड़े और उसे छुरेसे घायलकर उसके शरीरपर जो कुछ गहने थे और घरमें जो कुछ क़ीमती माल-असबाब थे, सब ले-देकर चम्पत हो गये। उसी समय उसके दरबानने थानेमें जाकर रिपोर्ट लिखवायी। सवेरा होतेही उसके घरके बाहर-भीतर और आस-पास सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लग गयी।

थानेदार आदि भी आ पहुँचे। सबका इज़हार ले, पुलिस-वालोंने यही निश्चय किया, कि या तो इसे धन्नूतेलीने लूटा-मारा है या कालिदास चक्रवर्त्ती अथवा राजा अरविन्द रायने। सम्भव है, कि तीनोंने मिलकरही यह काम किया हो। इन्हींमेंसे किसी एकने यह काम किया है—इसमें तो कोई सन्देहही नहीं।

तरङ्गिणीने अपनी ओरसे कुछ नहीं कहा। वह यही कहती रही, कि मैंने उन डाकुओंको अच्छी तरह देखा है और अब भी देखनेसे पहचान सकती हूँ। उसने यह बात बड़े बल-पूर्वक पुलिससे कही, कि जिन तीन आदमियोंपर शक किया जाता है, उनमेंसे कोई उस गिरोहमें नहीं था; पर थानेदारने यह कहकर उसकी बात उड़ा दी, कि वे आप भलेही न आये हों, पर यह काम उन्हींमेंसे किसी एकका है। ज़रूर उन्होंनेही अपने आदमियों द्वारा यह काम कराया है।

तरङ्गिणी बड़ी बेतरह घायल हुई है। उसके हाथ और शरीरपर कई छुरे लगे हैं, जिससे उसके शरीरका बहुतसा रक्त निकल गया है; किन्तु मरनेका भय नहीं है। हाँ, पेटमें जो घाव लगा है, उसीमें कुछ-कुछ पीड़ा है। रातको तो वह घायल होतेही बेहोश हो गयी थी; पर सवेरे पीड़ा कुछ कम होनेपर होशमें आकर बातें करने लगी। जो हो, यद्यपि वह कई दिनोंकी बीमारकी तरह मालूम पड़ती है, तोभी किसीको यह शङ्का नहीं होती, कि वह शीघ्र ही मर जायेगी।

दारोग़ाजीने सबका इज़हार ले, लिख-पढ़कर रख लिया और तरङ्गिणीको असपताल भेजनेका उद्योग करने लगे। उसे असपताल भेजकर वे उन तीनों व्यक्तियोंको पकड़ेंगे और असली अपराधीका पता लगायेंगे, यही उनलोगोंने निश्चय किया। यही सब सोच-विचारकर उनलोगोंने तरङ्गिणीसे असपताल चलनेके लिये कहा।

यह सुन, तरङ्गिणी बड़े कातरस्वरसे बोली,—"अब मैं कुछही घड़ियोंकी मिहमान हूँ। यदि आप लोग मुझे अभी असपताल भेजेंगे, तो मैं या तो घरसे बाहर होतेही मर जाऊँगी अथवा रास्तेमें ही। इस लिये अच्छा हो, यदि आप लोग उन तीनों आदमियोंको, जिनपर आप लोगोंका सन्देह है, मेरे पास ले आयें। मैं एकबार उनसे मिलना चाहती हूँ।"

दारोग़ाने कहा,—"वे अबतक न मालूम कहाँ भग गये होंगे। उनसे भेंट होनेकी आशा छोड़ दो। मैंने उनलोगोंपर नज़र रखनेके लिये आदमी छोड़े हैं। तुम्हारे कहे अनुसार उन्हें हमलोग अभी पकड़ ला सकते थे; पर उनको पाना असम्भव है।"

इसी समय उस घरमें चार पुरुषोंके साथ एक नारीने प्रवेश किया। तरङ्गिणी देखतेही पहचान गयी, कि उनमेंसे एक राजा अरविन्द राय, दूसरा कालिदास चक्रवर्त्ती और तीसरा धनुआ तेली है। चौथा आदमी और वह स्त्री कौन है, यह वह न जान सकी। हम अपने पाठकोंको बतलाये देते हैं, कि वह पुरुष यदु हालदार और वह नारी, जो आनन्दकी प्रतिमासी दिखाई दे रही है, मा-लक्ष्मी हैं।

दारोग़ाकी ओर देखकर तरङ्गिणीने कहा,—"लीजिये आप जिन्हें फ़रारी असामी समझ रहे थे,—वे सब यहीं आ पहुँचे।"

उनलोगोंकी बातें सुननेके इरादेसे दारोग़ा ज़रा दूर खिसककर खड़े हो रहे।

और किसीके कुछ कहनेके पहलेही मा-लक्ष्मी, तरङ्गिणीके सिरके पास जा बैठीं और बहुत दुःखित हो, प्यारसे उसके माथेपर हाथ फेर, बोलीं,—"बहन! क्या तुम्हें बहुत चोट आयी है? बड़ी तकलीफ़ मालूम हो रही है?"

देवीका कर-स्पर्श होतेही तरङ्गिणीको बड़ी शान्ति मिली। उसने कहा,—"हाँ, बहुत बड़ी चोट आयी है। अब मैं कुछही क्षणोंमें यह शरीर छोड़ दूँगी। आप कौन है? मैं आपको नहीं पहचानती।"

धन्नूने आगे बढ़कर कहा,—"क्या तुमने मा-लक्ष्मीका नाम कभी नहीं सुना? येही मा-लक्ष्मी हैं।"

तरङ्गिणीने हाथ जोड़कर मा-लक्ष्मीको प्रणाम किया। कालिदासने कहा,—"इन्हें तो तुम ख़ूब पहचानती हो। येही मेरी स्त्री, विराजमोहिनी, हैं।"

तरङ्गिणीने आँखें फाड़कर एकबार मा-लक्ष्मीकी ओर देखा। इसके बाद बोली,—"हो सकता है। अहा, उसी समय इस मूर्त्तिपर कैसा देवत्व बरस रहा था! इस समय दर्शन देकर इन्होंने मेरे ऊपर बड़ी दया की है। मैंने बड़े पाप किये हैं। मैंने इन सती-लक्ष्मीपर झूठा कलङ्क लगाकर इन्हें मुफ़्तमें मार खिलवायी थी—इन्हें घरसे निकलवा दिया था। स्वामीके घरका अन्न-वस्त्र छुड़वा दिया था। इससे बढ़कर पाप और क्या होगा? यही एक क्यों? मेरे पापोंकी कोई गिनती नहीं है। उनकी सूची सुनाकर क्या होगा?

जबतक प्राण नहीं निकलते, तबतक दो-चार ज़रूरी बातें कह देना चाहती हूँ।"

धन्नू, कालिदास, अरविन्द और यदु—सब तरङ्गिणीको घेरकर बैठ गये। धन्नूने कहा,—"धीरे-धीरे बातें करो। जो कुछ कहना हो, उसे थोड़ेमेंही ख़तम कर डालो। यदि कुछ कष्ट होता हो, तो कुछ कहने-सुननेका काम नहीं है।"

तरङ्गिणीने कहा,—"कहना तो होगा ही। राजा साहब! यह मकान आपके नाम बय कर दिया गया है। यहाँसे आप बहुतसी चीज़ें अपने घर ले गये हैं, पर यह मकान और इसकी चीज़ें चक्रवर्त्ती महाशयकी हैं।"

राजाने कहा,—"तुम्हें अधिक कुछ कहने-सुननेका काम नहीं है। मैं जानता हूँ, कि यह सब चक्रवर्त्तीजीका है। पर कहीं तुम किसी धोखेबाज़के फन्देमें पड़कर सब कुछ नष्ट न कर दो, इसीलिये मैंने सब अपने हाथमें कर रखा है। मैंने इससे पहलेही चक्रवर्त्तीजीको सब बातें बतला दी हैं—चक्रवर्त्तीके नाम मकान लिख दिया है और उनकी चीज़ोंकी फ़िहरिस्त उन्हें दे दी है। और क्या कहना चाहती हो, कहो?"

तरङ्गिणीने कहा,—"आपने गिरिबालाके हाथसे जो गहने वग़ैरह पाये थे, उन्हें आप धन्नूको दे दीजिये।"

राजाने कहा,—"मैंने वे सब चीज़ें धन्नूके द्वारा सुरेन्द्र बाबूके पास भिजवा दी हैं।"

तरङ्गिणीने कहा,—"मेरेही कुचक्रमें पड़कर गिरिबालाने

इतने दुःख उठाये और कष्टही सहते-सहते मर भी गयी। मैंने सुना है, कि उसका बच्चा जीता है। उस लड़के और धन्नूका कोई अच्छा प्रबन्ध हो जाता, तो बड़ी अच्छी बात होती।"

राजा बोले,—"इसके लिये कुछ चिन्ता न करो। सुरेन्द्र-बाबूने उस लड़केको अपना लिया है और वे उसेही अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे। धन्नूका भी उन्होंने बन्दोबस्त कर दिया है।"

तरङ्गिणी कहने लगी,—"मेरा दम निकलनेमें अब देर नहीं है। चक्रवर्त्ती महाशय! मैंने आपके साथ बड़ी दग़ा की है। सदा आपको धोखाही देती रही हूँ। अब उन सब बातोंको छेड़कर क्या होगा? मैं नहीं कह सकती, कि मुझे इन पापोंका कैसा फल भोगना पड़ेगा।"

कालिदासने कहा,—"मैं निष्कपट चित्तसे तुम्हारे सारे अपराध क्षमा करता हूँ। ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ, कि तुम परकालमें सुखी हो।"

तरङ्गिणीने कहा,—"अब बातें कण्ठसे नहीं निकलतीं। मालूम होता है, कि मेरा अन्तकाल आ पहुँचा है। धन्नू! मैंने ही तुम्हारी गिरिबालाकी जान ले ली। तुम्हें अधमरा देखकर भी मैं तुम्हें छोड़कर भाग आयी थी!"

धन्नूने कहा,—"अच्छाही किया था। तुम ऐसा न करतीं, तो मैं इन महात्माको कैसे पाता? मैं उससे बड़ाही सुखी हुआ हूँ। मेरी तुमने कुछ भी बुराई नहीं की।"

तरङ्गिणी बेचैनसी हो गयी। उसकी सारी देह काँप उठी। मा-लक्ष्मीने उसे अपनी गोदमें बैठा लिया। तरङ्गिणीने कहा,—"ओह! तुम मुझे बहन कहकर पुकारती हो, तो मैं लाजसे मर जाती हूँ। मैंने तुम्हें कितना दुःख दिया है!"

मा-लक्ष्मीने कहा,—"कुछ भी नहीं। तुम्हारी कृपासे मेरा परम मङ्गल हुआ है। मैं दाऊजीसे प्रार्थना करती हूँ, कि वे तुम्हें शान्ति दें।"

मा-लक्ष्मीकी गोदमें तरङ्गिणीका सिर इधरसे उधर घूमने लगा। सब लोग समझ गये, कि अब अधिक विलम्ब नहीं है। वह बोली,—"अहा, कैसी अच्छी बात है। दाऊजी! क्या दाऊजीको गुहराऊँ?"

राजाने कहा,—"ज़रूर गुहराओ। मुँहसे बोली न निकले, तो मन-ही-मन उनका ध्यान करो। निश्चयही तुम्हारा मङ्गल होगा।"

तरङ्गिणीने कहा,—"राजा साहब! आप कौन हैं? आप तो मनुष्य नहीं मालूम होते। क्या आप कोई देवता हैं?"

राजाने कहा,—"मैं न तो राजा हूँ, न देवता—मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरा नाम सनातन मुखोपाध्याय है। जहाँतक बन पड़े, वहाँतक दूसरोंकी भलाई करनाही मेरा व्रत है। मैं अकेलेही यह काम नहीं करता। मेरे और भी बहुतसे सहायक हैं। कार्य-सिद्धिके लिये ही मैं कभी राजा, कभी ब्राह्मण, कभी वृद्ध, कभी संन्यासी और कभी दण्डी बन जाता हूँ।"

तरङ्गिणीने कहा,—"तो क्या उस दिन आपनेही मुझे चक्रवर्त्ती महाशयकी लाठीसे बचाया था?"

सनातनने कहा,—"हाँ। मैंने उसी समय राजा बनकर तुम लोगोंसे सुरेन्द्रबाबूका धन हस्तगत कर लिया और तुरतही ब्राह्मण बनकर तुम्हारी रक्षा की।"

तरङ्गिणीने कहा,—"आपके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम। आप देवता हैं।—यह क्या? एकाएक अँधेरासा क्यों मालूम होने लगा? दाऊजी! दर्शन दो—चिराज! पैरोंकी धूल दो—देवता! कहाँ गये?"

सनातनने कहा,—"तुम हमलोगोंकी बात एकदम भूल जाओ—केवल भगवान् दाऊजीको ही याद करती रहो।"

तरङ्गिणीका मुँह बिगड़ गया—उसका सिर मा-लक्ष्मीको गोद में लुढ़क पड़ा। उसका प्राण-पक्षी देह-पिञ्जर छोड़ उड़ गया!

